ब्रजभाषा

कृष्ण-भक्ति काव्य

(15 वीं, 16 वीं, 17 वीं शती में रचित)

लेखक
डॉ.जगदीशगुप्त
एम0ए0, डी0 फिल0
हिंदी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रकाशक: वसुमति,

38,जीरो रोड, इलाहाबाद,

वर्ष : 1968 ईसवी

लेखकीय

हिंदी साहित्य के मध्यकाल की प्रथम तीन शताब्दियाँ नवोन्मेषपूर्ण रचनाशीलता, भावात्मक सम्पन्नता और सांस्कृतिक गरिमा की दृष्टि से बाद की दो शताब्दियों से कहीं अधिक महत्व रखती है | भक्ति आंदोलन, जिसने उस काल में समस्त उत्तर भारत को आप्लावित कर दिया था, साहित्य के क्षेत्रों में जितनी उर्वरता ला सका, जैसे व्यक्तित्यों को जन्म दे सका वह नये मूल्य-बोध के कारण अप्रतिम है |बंगाल से लेकर गुजरात तक एक ओर और पंजाब से लेकर महाराष्ट्र तक दूसरी ओर भक्ति सिद्धांत की यह दिग्विजय जिन साम्प्रदायिक आचार्यों के बुद्धि बल द्वारा एक अभियान के रूप में सम्पन्न हुई वे सभी दक्षिणी थे और वहाँ की भक्ति भावना ने उन्हें ऐसी दार्शनिकता एवं तत्व-दृष्टि प्रदान की जो देश की सांस्कृतिक एकता तथा मानसिक अखण्डता को अकाट्य रूप से प्रमाणित करती है | इधर मेरे 'गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य' विषयक शोध-कार्य के अनंतर जो अनेकानेक तुलनात्मक अध्ययन किये गये हैं तथा प्रकाश में भी आये हैं उनसे प्रचुरता से ऐसे तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है जो भाषा-भेद के कारण अब तक अज्ञात और अलक्षित थे कतिपय स्वतंत्र अध्ययन भी हिंदी साहित्य के इतिहास को पूर्णता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुए हैं | राजस्थानी ब्रजभाषा के साहित्य के अनुशीलन से एक 'विष्णोई सम्प्रदाय' के अस्तित्व पर प्रकाश पड़ा है जो निर्गुण और सगुण धाराओं का मिलन-बिंदु प्रतीत होता है क्योंकि उसमें दशावतार मान्य थे किंतु मूर्ति पूजा अमान्य | आगे भी अनुसंधान-कार्य होता रहेगा |

पुस्तक मेरे पूर्वोक्त शोध-प्रबंध से सम्बद्ध हिंदी साहित्य का पक्ष स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत करती है | गुजराती के साथ किये गये तुलनात्मक अध्ययन का अंग होने के कारण उसका उपयोग उतना नहीं हो सका जितना

सामान्यतया अपेक्षित था | स्वतंत्र रूप में इस तरह प्रकाशित होकर वह पक्ष अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकेगा मुझे ऐसी आशा है |

इसके प्रूफ देखने में डॉ.प्रमोद सिन्हा ने विशेष सहयोग दिया है | उसके बिना निर्धारित समय में इसका छपना संभव नहीं था | लेखक और प्रकाशक के बीच सम्पर्क स्थापित करने का सद्भावपूर्ण कार्य श्री बद्री नाथ तिवारी ने किया अतः उनका स्मरण भी आना स्वाभाविक ही है | वसुमति प्रकाशन ने इसी से अपनी प्रकाशन-योजना का आरम्भ किया यह मेरे लिए एक सुखद संयोग है |

- जगदीश गुप्त

14-12-67

मोती महल, दारागंज,

प्रयाग

अनुक्रम

- **कवि और काव्य**

ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवि

15वीं शती , 16 वीं शती , 17वीं शती |

- **वर्ण्य वस्तु**

कृष्ण काव्य में ब्रजलीला

अलौकिक गोकुल लीलाएँ : कृष्ण जन्म, पूतनाबध, सिद्धर ब्राह्मण, कागासुर-वध, शकट-भंजन अथवा शकटा सुर-वध, तृणावर्त-वध, मृत्तिका-भक्षण एवं यशोदा द्वारा विश्व-दर्शन, महराने के पाँडे का भोग और नंद का देवार्चन , उलूखन बंधन और यमलार्जुन मोक्ष |

लौकिक गोकुल लीलाएँ : कृष्ण के संस्कार, नामकरण, अन्नप्राशन, वर्षगाँठ,कर्णछेदन,रक्षाबंधन, बाल-लीला, चंद-खिलौना, प्रभाती, माखन चोरी, गोदोहन |

अलौकिक वृन्दावन-लीलाएँ— वृन्दावन गमन, वत्सासुर, वकासुर तथा अधासुर-वध, विधि मोह, धेनुकासुरवध, कालीय-दमन, प्रलम्बासुर-वध, दावानल पान, गोवर्धन-धारण, वरुण गृह से नंदा का उद्धार, सर्प,शंख चूड, अरिष्ट, केशी और व्योम-वध |

लौकिक वृन्दावन-लीलाएँ : गोचारण, कात्यायनि-व्रत और चीर हरण, ब्राह्मण पत्नियों पर अनुग्रह |

राधा-प्रधान कृष्ण लीलाएँ : राधा जन्म, प्रथम मिलन, स्त्री रूपधारण, गारुड़ी बनना, वैदिक लीला, पनघट की लीलाएँ, संभोग वर्णन, जल-क्रीड़, वसंत-क्रीड़, वृन्दावन-वर्णन, बारहमासा और षडऋतुवर्णन, दानलीला, मानलीला, रासलीला, रास के विविध प्रकार, भागवत के रास की मूल वस्तु के आधार पर रास-वर्णन के विभिन्न अंशों का अध्ययन, वाद्य संगीत का आयोजन |

कृष्ण काव्य में मथुरा और द्वारका लीला

मथुरा लीला : मथुरा गमन, कंस-वध, भ्रमरगीत, उद्धव के ब्रज-गमन का हेतु, नंद यशोदा से भेंट, कृष्ण-संदेश, गोपी-उद्धव-संवाद, कुब्जा रमण, जरासंध विजय, कालयपन और मुचकुंद वध, द्वारका-प्रस्थान |

द्वारका लीला : रुक्मणी-हरण, सुदामा-दारिद्रय भंजन, स्यमंतक मणि की कथा तथा कृष्ण के अन्य विवाह, सत्य भामा का मान तथा नरकासुर-वध, पुनर्मिलन, सिद्धांत विषयक काव्य |

सिद्धांत-पक्ष

कृष्ण काव्य में ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष

ब्रह्म, विरुद्ध धर्मश्रयता, अविकृत परिणामवाद, ब्रह्म का आनंद एवं रस स्वरूप, अवतार, विराट रूप, जीव, जीव की ब्रह्म से विमुखता, जगत, माया, मोक्ष |

कृष्ण-भक्ति का स्वरूप

भक्ति की महिमा, भक्ति के प्रकार, भक्ति के मुख्य भाव, भक्ति और कर्मकांड, भक्ति पथ में सत्संग और नाम कीर्तन की विशेष महत्त, भक्ति और वैराग्य, भक्ति-मार्ग में गुरु का स्थान, भक्ति की सार्वजनीनता, भक्तों की प्रशंसा तथा उनके लक्षण, भक्ति रस |

कृष्ण-काव्य में आत्मपरक भावाभिव्यक्ति

वाह्य विषयात्मक भावाभिव्यक्ति, भावमय स्थल, आत्मनिवेदन, कृष्ण लीलाओं से आत्म सम्बंध |

कृष्ण की बाल लीलाएँ

मानवीय भावों के साथ कृष्ण के लोकोत्तर रूप का मिश्रण, कृष्ण जन्म, बालस्वभाव, वय विकास, बाल छवि, माखन चोरी, गोचारण, नंद,वसुदेव, यशोदा और देवकी के उद्गार |

रास, दान,मान और पनघट लीलाएँ

रास लीला, दान लीला, मान लीला,पनघट लीला

कृष्ण-काव्य में संयोग वर्णन

कृष्ण-काव्य में विप्रलम्भ तथा भ्रमरगीत

खंडित गोपियों के भाव, कृष्ण का मथुरा-गमन, भ्रमरगीत, संदेश पाने से पूर्व ब्रजवाशियों की मनोदशा, संदेश की प्रतिक्रिया, कृष्ण के प्रति गोपियों का उपालंभ,व्यंग्य और अनन्य प्रेम, पुनर्मिलन |

- **कला पक्ष**

  कृष्ण-काव्य में दृश्य, स्वभाव एवं प्रकृति-चित्रण

  दृश्य-चित्रण, स्वभाव चित्रण,प्रकृति-चित्रण

  कृष्ण-काव्य में उक्तिवैचित्र्य, अलंकार विधान एवं प्रबंध निर्वाह

  उक्ति-वैचित्र्य, अलंकार-विधान

  ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में छंद विधान

  आख्यान-शैली, आख्यान-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उनका स्वरूप,पद-शैली, पदों की रूपरेखा, ध्रुवा और ध्रुवा-सहित पद, पद-शैली में प्रयुक्त छंद और उनका स्वरूप, मुक्तक-शैली, आन्तर-प्रास, रागों का निर्देश

  ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का भाषा विन्यास

  शब्द-भांडार, तत्सम शब्द, तद् भव शब्द, लोक-प्रचलित तथा देशज शब्द, विदेशी शब्द, पर्याय शब्द|

  लोकोक्तियाँ और मुहावरे,भाषा शैली की विशेषताएँ, विविध भाषाओं का मिश्रण, पंजाबी का मिश्रण, ब्रजभाषा के कवियों द्वारा प्रयुक्त कतिपय गुजराती शब्द, मीराँ के पदों की भाषा |
- **तुलनात्मक अध्ययन**

  ब्रजभाषा और गुजराती कृष्ण-काव्य : तुलनात्मक संदर्भ
- **सहायक ग्रंथों की सूची**

संकेताक्षर

अ : अध्याय

अ.व. : अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय

उत्त. : उत्तरार्ध

उप : उपनिषद

क.च. : कवि चरित

कृ.ख. : कृष्ण जन्म खंड

कृ. गी : कृष्णगीतावली

गु.व.सो. : गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी

गु.सा. : गुजराती साहित्य

गू. हा.संकलित यादी : गूजराती हाथप्रतोनी संकलित यादी

छं. सं. : छंद संख्या

झावेरी : कृष्णलाल मोहनलाल झावेरी

तारापोरवाला : इरच जहाँगीर सोराबजी तारापोरवाला

त्रिपाठी : गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी

थूथी : एन.ए. थूथ

द. स्कं. : दशम स्कंद

दिवेटिया : नरसिंहराव भोमानाथ दिवेटिया

ध्रुव : आनंदशंकर ध्रुव

न.कृ.का. : नरसिंह महेता कृत काव्य-संग्रह

नि.मा. :निम्बार्क माधुरी

नं. : नंबर

नंद : नंददास

पु. : पुराण

प्रा.का.मा. : प्राचीन काव्य माला

प्रा. गु. छंद : प्राचीन गुजराती छंद

पृ. : पृष्ठ

फा. गु.स. : फार्ब्स गुजराती सभा

ब्र.वै. : ब्रह्म वैवर्त

बृ.का.दो. : बृहद काव्य दोहन

भा. : भागवत

मा. वा. : माधुरी वाणी

मीतल : प्रभुदयाल मीतल

मी.प. : मीरां पदावली

मुंशी : कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

ले. : लेखक

सू.सा. : सूरसागर

सं. संवत तथा संपादक (प्रसंगानुसार)

श्लो. : श्लोक

शास्त्री. : केशवराम काशीराम शास्त्री

श्रीकृ. ली.का. : श्रीकृष्ण लीला काव्य

श्रीकृ.वृ.रास. : श्रीकृष्ण वृन्दावन रास

श्रीगदा.वा. : श्रीगदाधर भट्ट की वाणी

श्रीम.भा. : श्रीमद्भागवत (प्रेमानंद कृत)

श्रीव.र.वा. : श्रीवल्लभ रसिक की वाणी

वा. :वाणी

व्या. वा. : व्यास वाणी(हरिरामव्यास कृत)

ह.प्र. : हस्त प्रति

हरि.षो.: हरिलीला षोडशकला

हि.चौ.: हित चौरासी

A.G.: Archaeology of Gujarat

Chap.: Sankalia. Chapter

G.L.: Gujarat and Its Literature, Munshi

G.L.L.: Gujarat Language and Literature, N.B.
Divetia.

J.O.I.B.: Journal of Oriental Institute, Baroda

J.I.S.O.A.: Jouranl of The Indian Society of
Orientral Art

Vol.: Volume

V.G.: Vaishnavas of Gujarat, Thoothi.

ब्रजभाषा के कृष्णभक्त कवि

15वीं शती

पिछले दशक में ब्रजभाषा और उसके साहित्य के संदर्भ में जो अनेक मुखी शोध-कार्य हिंदी में हुआ है उससे सोलहवीं शताब्दी से पूर्व की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है और अब वह इतनी अंधकारमय या अविज्ञात नहीं रह गयी है जितनी कि कुछ समय पूर्व थी | इस प्रसंग में यद्यपि उल्लेखनीय तो अनेक नाम हैं पर यहाँ दिशा निर्देश के लिए केवल एक इतिहास और एक शोध-प्रबंध की चर्चा पर्याप्त समझता हूँ | यह सध प्रकाशित इतिहास है डॉ.सत्येंद्र कृत 'ब्रजसाहित्य का इतिहास' और शोध-प्रबंध है डॉ. शिवप्रसाद सिंह का लिखा हुआ 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' जो पूर्वोक्त इतिहास से पहले और मेरे शोध-ग्रंथ गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन के बाद सामने आया | इन दोनों ग्रंथों में 15वीं शती और उससे पूर्व के ब्रजभाषा साहित्य के विषय में पर्याप्त विचार-विमर्श किया गया है तथा अनेक अज्ञात कवियों और उनके ग्रंथों का नामोल्लेख एवं संक्षिप्त परिचय ऐतिहासिक विकास-क्रम के परिप्रेक्ष में कदाचित पहली बार प्रस्तुत किया गया है |

जहाँ तक कृष्ण-काव्य का सम्बंध है 14वीं शती ई. में सधारू अग्रवाल रचित प्रधुम्नचरित (सं. 1411) तथा 15वीं शती ई. में गोस्वामी विष्णुदास विरचित 'महाभारत' (सं. 1492) 'रुक्मणि-मंगल' और 'सनेहलीला' नामक काव्य ही सामने आते हैं अतः इन्हीं से छिन्न-सूत्रता कुछ दूर होती है | प्रधुम्मन चरित जैन परम्परा का चरित काव्य है | महाभारत और सनेह लीला में आख्यान-शैली के दर्शन होते हैं | रुकमणि मंगल पद-शैली की रचना है | इस प्रकार परवर्ती शताब्दियों में विकसित होने वाली प्रायः सभी प्रमुख शैलियाँ प्रकाश में आयीं हैं, क्योंकि मुक्तक शैली का व्यवहार तो प्रायः अविच्छिन्न रूप से मिलता है | इन काव्यों में भक्ति का यत्किंचित जो भी समावेश मिलता है वह साम्प्रदायिक न होकर पौराणिक ही दिखायी देता है | जैन परम्परा के कृष्ण-काव्य में तो वह भी नहीं मिलता | साहित्यिक दृष्टि से इनमें ऐसा महत्वपूर्ण कोई काव्य नहीं है जिससे 16वीं-17वीं शती के काव्यों के मूल्यांकन में कोई अंतर पड़ता हो | इनसे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि अब तक 16वीं शती का ब्रजभाषा काव्य जितनी आकस्मिकता से आरम्भ होता दिखायी देता था | उतना वास्तव में सत्य है नहीं |

डॉ.धीरेंद्र वर्मा और डॉ. दीनदयालु गुप्त ने जो मत अपने ग्रंथों में व्यक्त किये हैं वे अब उस रूप में सर्वथा मान्य नहीं कहे जा सकते तथापि उनकी ओर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है |

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा से सम्बंध रखने वाली 15वीं शताब्दी तक की प्रकाशित प्रामाणिक सामग्री अभी शून्य के बराबर है | (ब्रजभाषा व्याकरण,पृ.39)

सोलहवीं शताब्दी से पहले भी कृष्ण-काव्य लिखा गया था लेकिन वह सबका सब या तो संस्कृत में है जैसे जयदेव कृत गीतगोविंद या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में जैसे मैथिलकोकिल कृत पदावली | ब्रजभाषा में लिखी हुई सोलहवीं शताब्दी से पहले की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं | (नाम माहात्म्य,श्री ब्रजांक, अगस्त 1940, ब्रजभाषा नामक लेख से)

भाषा की दृष्टि से सूर और परमानंददास के पहले ब्रजभाषा में रचना करने वाले किसी भी कवि का परिचय इतिहास नहीं देता | नामदेव की ब्रजभाषा भी परिवर्तित रूप में हमारे सामने आती है | इस प्रकार अष्टछाप का प्रथम वर्ग ही ब्रजभाषा का आदि कवि वर्ग है और उसमें भी सबसे अधिक श्रेय सूर को है | (अष्टचाछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग 1,पृ.26)

हिंदी साहित्य की 15वीं शती में मुख्यतया कबीर,विद्यापति, लालचदास तथा बैजूबावरा आदि के नाम आते हैं | निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट तथा हरिव्यास को साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार 14वीं शताब्दी में स्वीकार किया जाता है | (निम्बार्क माधुरी,पृ.9 तथा 23) कबीर ने कृष्ण-काव्य की रचना नहीं की | विद्यापति मैथिली के तथा दशमस्कंध के अनुवादक लालचदास अवधी के कवि होने से प्रस्तुत विषय की सीमा में नहीं आते | विचारणीय केवल बैजूबावरा, श्रीभट्ट,और हरिव्यास ही रह जाते हैं | बैजूबावरा के कुछ पदों के प्राप्त होने का उल्लेख प्रभुदयाल मीतल ने किया है **|("सूरदास के पूर्ववर्ती बैजूबावरा के कुछ श्रृंगार गीत प्राप्त हुए हैं जिनसे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि इस प्रकार की रचना पहले से ही होती आ रही थी |"—ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद, नवीन संस्करण,पृ.42**) किंतु ऐसी स्वल्प सामग्री से प्रस्तुत अध्ययन में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती | जहाँ तक श्रीभट्ट का प्रश्न है उनके विषय में प्राप्त एक दोहे के 'नैनवान पुनि राम ससि' को आधार मानकर उनका समय सं. 1352 के आस-पास निश्चित करना उचित प्रतीत नहीं होता |(नैन बान,पुनि राम, ससि गिनो अंक गति वाम |श्रीभट प्रगट जु जुगलसत यह संवत अभिराम || —निम्बर्कमाधुरी,पृ. 9) समय निर्णय में प्राप्त ग्रंथ की भाषा, भाव तथा वस्तु और तत्सम्बंधी बहिस्साक्ष्य पर भी विचार करने की आवश्यकता होती है | और इस दृष्टि से श्रीभट्ट का समय 16वीं शती के पहले नहीं आता| दोहे में दिये गये संवत के साथ तिथि, वार, मास आदि का निर्देश न होने से ज्योतिष-गणना द्वारा उसकी प्रामाणिकता भी सिद्ध नहीं की जा सकती | निम्बार्क-माधुरी के रचयिता विहारीशरण के अतिरिक्त कदचित हिंदी के अन्य विद्वान ने श्रीभट्ट को 16 वीं शती के पहले का कवि नहीं माना |(**क.** रामचंद्र शुक्ल ने इनका जन्म सं.1595, कविता-काल सं. 1625 के लगभग दिया है —हिंदी साहित्य का इतिहास,पृ.188) **ख.** वियोगीहरि ने भी लिखा है कि श्रीभट्ट का जन्मकाल अनुमानतः 1595 के लगभग जान पड़ता है और इनका कविता-काल संवत 1625 सिद्ध हुआ |—ब्रजमाधुरीसारपृ.148) यही दशा हरिव्यास की है | श्रीभट्ट के शिष्य होने से वे श्रीभट्ट के परवर्ती ठहरते हैं | डॉ. रामकुमार वर्मा हरिव्यास को चैतन्य और वल्लभाचार्य का समकालीन मानते हैं तथा उन पर चैतन्य का प्रभाव भी स्वीकार करते हैं | (हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ.740) ऐसी स्थिति में पूर्वोक्त मतों के अनुसार यही सिद्ध होता है कि 15वीं शती में ब्रजभाषा का कोई महत्वपूर्ण कवि नहीं हुआ तथा किसी की कोई भी प्रमाणिक रचना उपलब्ध नहीं होती |

16वीं शती—ब्रजभाषा

ब्रजभाषा में कृष्ण सम्बंधी अधिकांश काव्य-रचना सम्प्रदायों के अंतर्गत हुई | इन सम्प्रदायों में वल्लभ, राधावल्लभ, गौड़ीय, निम्बार्क तथा हरिदासी सम्प्रदाय प्रमुख हैं | 16वीं शती के कवियों तथा उनके काव्य का परिचय स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने के लिये प्रत्येक सम्प्रदाय के साहित्य का पृथक-पृथक निरूपण हुआ है | इसके अतिरिक्त जो कृष्णपरक काव्य इन सम्प्रदायों से स्वतंत्र होकर रचा गया उसका वर्णन एक भिन्न वर्ग में किया गया है |

वल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के अंतर्गत अष्टछाप के आठों कवि सूर, कुम्भनदास, परमांनदास,कृष्णदास, गोविंद स्वामी, नंददास, छीत स्वामी तथा चतुर्भुज दास आते हैं | इनमें से पहले चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे और अंतिम चार गो. विट्ठलनाथ के | डॉ. दीनदयालु गुप्त तथा प्रभुदयाल मीतल द्वारा दिये गये इन कवियों के जीवन-काल में कुछ विभिन्नता है किंतु उसे नगण्य माना जा सकता है क्योंकि सभी कवि अंततः 16वीं शती की सीमा में ही आते हैं | इन कवियों की रचनाओं पर हिंदी साहित्य के कई विद्वानों द्वारा स्वतंत्र रूप से विचार किया जा चुका है अतएव आवश्यक मतभेद का निर्देश मात्र करते हुए यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय देना पर्याप्त होगा |

सूरदास की रचनाएँ (सं.1535—1638—39)— सूरदास की रचनाएँ आज भी विवाद का विषय हैं | डॉ. व्रजेश्वर वर्मा एकमात्र सूरसागर को प्रामाणिक मानते हैं पर डॉ. दीनदयालु गुप्त, मुंशीराम शर्मा, प्रभुदयाल मीतल तथा द्वारिकादास परीख आदि विद्वान साहित्यलहरी और सूरसारावली को भी प्रामाणिक सिद्ध करते हैं | (क.सूरदास,पृ.97, ख. अष्टचाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग 1,पृ.298,ग. सूरसौरभ,प्रथम भाग, पृ.3, घ. अष्टछाप परिचय,पृ.96, ङ. सूरनिर्णय,पृ.169

सूरपचीसी, सेवाफल आदि की स्थिति भी विवादास्पद है | एक ओर 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' में उन्हें सूरसागर के अंतर्गत ही स्वीकार किया गया है | (अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग 1, पृ.298) दूसरी ओर सूरनिर्णय में स्वतंत्र रचना माना गया है | (सूरनिर्णय,पृ.169) वस्तुतः इन्हें स्वतंत्र रचनाएँ मानना उचित नहीं है क्योंकि सूरसागर से भिन्न इनके अस्तित्व के विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं होते | जहाँ तक सूरसारावली और साहित्यलहरी का प्रश्न है हिंदी के विद्वानों का बहुमत उन्हें सूरदास की रचनाएँ मानने के पक्ष में है| इस सम्बंध में और भी गहन अनुसंधान की आवश्यकता है | तब तक उन्हें सूरदास की पूर्णतया प्रामाणिक रचनाएँ मानने की अपेक्षा विवादास्पद एवं संदिग्ध रचनाएँ कहना अधिक उचित प्रतीत होता है | इन शब्दों के साथ बहुमत की उपेक्षा न करते हुए इन दोनों रचनाओं को प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकार किया गया है |

सूरसागर—यह सूरदास की एकमात्र पूर्णतया प्रामाणिक रचना है किंतु इसका रूप और विस्तार बहुत अंशों में अनिश्चित है | सूरदास के नाम से प्रचलित अनेक रचनाएँ वास्तव में इसी का अंश मात्र हैं | दूसरी ओर इसके अनेक अंश हैं जो स्वतंत्र रचनाओं जैसे लगते हैं | यों इसे 'श्रीमद्भागवत, बारहों स्कंधों का ललित रागरागिनियों में अनुवाद' माना जाता रहा परन्तु वस्तुतः अनुवाद की अपेक्षा इसे मौलिक रचना मानना अधिक उपयुक्त होगा | इसके अंतर्गत कई कथओं का एक से अधिक बार वर्णन हुआ है | एक प्रकार से यह सूर की कृष्ण विषयक लगभग समस्त रचनाओं का संकलन है | जिसका मुख्य आधार भागवत पुराण है | किंतु भागवतेतर कथाओं का भी इसमें स्पष्ट समावेश है | अनेक कथाएँ तथा वर्णन पूर्णतया मौलिक है | डॉ.दीनदयालु गुप्त ने सूरसागर के अंतर्गत निम्नलिखित 16 प्रामाणिक रचनाओं को समाविष्ट माना है |(अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग 1,पृ.298)

1. भागवत भाषा
2. सूरदास के पद
3. गोवर्धन लीला
4. ब्याहलो
5. सूर रामायण
6. सूर साठी
7. राधारस कौतुहल

8. सूरसागर सार
9. दशमस्कंध भाषा
10. नागलीला
11. सूरपचीसी
12. भँवरगीत
13. दानलीला
14. मानलीला
15. सेवाफल
16. सूर शतक

उपलब्ध सूरसागर भागवत की तरह ही 'द्वादश स्कंद' में विभाजित है | कदाचित स्वयं सूरदास ने ही इसे स्कंधबद्ध रूप में रचा है |(व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादशस्कंद्ध बनाइ | सूरसागर सोई कहे पद भाषा करि गाइ || सू.सा. स्कंध 1) सूरसागर में प्रथम नवम तथा दशम पूर्वार्ध और उत्तरार्ध सबसे अधिक विशाल एवं महत्वपूर्ण हैं | शेष इनकी तुलना में अत्यंत अल्प और नगण्य से हैं | सम्पूर्ण पद-संख्या 4578 है और स्कंधवार पद-संख्या निम्नांकित रूप में प्राप्त होती है |

(1) 219, (2) 38, (3) 18, (4) 12, (5) 4, (6) 4, (7) 8, (8) 14, (9) 72, (10) पूर्वार्ध 3936, (10) उत्तरार्ध 142, (11) 6, (12) 5

प्रथम स्कंध में प्रारम्भिक 112 पद विनय के हैं | स्कंधवार पद-संख्या से नितांत स्पष्ट है कि सूरसागर का मुख्य भाग दशमस्कंध के आधार पर ही निर्मित हुआ है | सूरसागर और भागवत में समानता से अधिक भिन्नता प्राप्त होने के कारण दो एक विद्वानों का अनुमान है कि 'वल्लभाचार्य जी ने व्यासजी की जिस समाधिभाषा को प्रमाण रूप माना है उसी का सूरदास ने गायन किया' |(सूरनिर्णय,पृ.161) विचार करने पर यह अधिक यथार्थ प्रतीत नहीं होता | यह भी अनुमान किया जाने लगा है कि सूरसागर के इस द्वादशस्कंधी रूप में भिन्न विषय-क्रमानुसारी जो एक अन्य रूप मिलता है वह कदाचित मूल के अधिक निकट रहा होगा | वस्तुतः यह प्रश्न अभी प्रमाण-सापेक्ष है | सूरसागर की एक विशेषता यह भी है कि भागवत के प्रथम स्कंध से द्वादश स्कंध पर्यंत की प्रत्येक प्रमुख कथा को वर्णनात्मक रीति से बड़े पदों में भी गाया गया है | इनकी शैली पद शैली से भिन्न है |

सूरसागर का प्रकाशन वेंक्टेश्वर प्रेस बम्बई, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ तथा नागरीप्रचारिणी सभा काशी से हुआ है | वेंक्टेश्वर प्रेस वाले सूरसागर के सब पदों को अष्टछापी सूर कृत मानने में डॉ.दीनदयालु गुप्त को कुछ संदेह है |(अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग 1,पृ.280) | नवलकिशोर प्रेस की प्रति के दो भाग हैं | एक में भिन्न-भिन्न रागों के अनुसार नित्य कीर्तन के पद हैं और दूसरे में कृष्णकथानुसार लीला के पद | इसमें सूर के अतिरिक्त अन्य अष्टछापी कवियों के पद भी मिश्रित हैं |

सूरसारावली—1107 द्विपद छंदों में निर्मित इस रचना को सूरसागर का सार नहीं 'सूचीपत्र' तक माना गया परंतु वस्तुतः यह एक स्वतंत्र रचना है जिसमें सूरसागर तथा भागवत कथा का सम्मिश्रण भी प्राप्त है | कथाओं का प्रवाह अविच्छिन्न है किंतु स्कंधक्रम में विभाजित नहीं | इसकी कथावस्तु का आरम्भ प्रकृति पुरुष रूप पारब्रह्म के सृष्टि-विस्तार को होली और-फाग का रूपक देकर होता है और इस रूपक का निर्वाह अंत तक किया

गया है | अवतारों के वर्णन में भागवत का अनुकरण है | रामावतार की कथा सांगोपांग रूप में विस्तार से दी गई है तथा कृष्णावतार की कथा में मथुरालीला की प्रमुखता है | अनेक नवीन कल्पनाएँ हैं | अंतिम भाग में रुक्मिणी के प्रश्न के उत्तर के रूप में ब्रज,वृन्दावन,राधा, यशोदा तथा रास आदि लीलाओं का समावेश है | यह रचना सूरसागर के बम्बई और लखनऊ वाले संस्करणों के आरम्भ में प्रकाशित हुई है |

साहित्यलहरी—यह कृष्ण राधा के नायक-नायिका-भेद के रूप में प्रस्तुत करने वाले 118 दृष्टिकूट पदों का संग्रह है | उपसंहारों के रूप में 53 पद और संग्रहीत हैं जो सूरसागर में भी प्राप्त होते हैं | इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस बांकीपुर से हो चुका है |

कुम्भनदास की रचनाएँ(सं.1525—1639)— दानलीला के एक 31 छंद के विस्तृत पद, जो स्वतंत्र रूप से प्रकाशित हो चुका है, के अतिरिक्त कुम्भनदास का समस्त काव्य स्फुट पदों के ही रूप में प्राप्त है |

नाथद्वार के निजी पुस्तकालय में 367 पदों का एक संग्रह प्राप्त होता है और विद्याविभाग काँकरौली में 186 पदों का जिसका डॉ. दीनदयालु गुप्त ने उल्लेख किया है |(वही,पृ.314-315) किंतु काँकरौली में अब हजारीलाल शर्मा द्वारा कुम्भनदास के 232 पद संग्रहीत हो चुके हैं |

कुम्भनदास के इन पदों में राधाकृष्ण से सम्बंधित विविध लीलाओं का वर्णन मिल जाता है |दान प्रसंग, युगलरूप, मिलन,विरह,मान,खंडिता,गोदोहन तथा रास आदि सभी विषयों के पद प्राप्त होते हैं |

परमानंददास की रचनएँ (सं.1550-1640) यद्यपि खोज रिपोर्ट में 'ध्रुव चरित्र' तथा 'दानलीला' नामक रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है किंतु प्रामाणिकता की दृष्टि से एकमात्र 'परमानंदसागर' ही परमानंद की असंदिग्ध रचना सिद्ध होती है |(वही-पृ.311) मीतल ने इन रचनाओं के अतिरिक्त 'उद्धवलीला' परमानंददास के पद तथा संस्कृत रत्नमाला का भी उल्लेख किया है किंतु न तो इनका कोई परिचय ही दिया है न इनकी प्रामाणिकता पर ही विचार किया गया है |(अष्टछाप परिचय,पृ.135) परमानंदसागर का विस्तार लगभग 2000 पदों तक जाता है | यह संख्या नाथद्वार तथा काँकरौली में प्राप्त इस ग्रंथ की अनेक हस्तलिखित प्रतियों पर आधारित है |

परमानंदसागर में सूरसागर की तरह सम्पूर्ण भागवत की कथा का समावेश न होकर दशमस्कंध तक के प्रसंगों का वर्णन है | भँवरगीत को छोड़कर अन्य विषयों पर इसमें कथात्मक लम्बे पद भी नहीं हैं | पदों का वर्गीकरण विषयानुसार है | कृष्ण की बाललीला,गोपी प्रेम, गोपी विरह तथा भ्रमर गीत पर अधिक संख्या में पद उपलब्ध होते हैं | इसके अतिरिक्त राधा को लेकर मान, खंडिता, युगल लीला,रास आदि पर तथा अन्य स्फुट विषयों पर भी पद प्राप्त होते हैं |

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन संग्रह के तीन भागों में 500 से अधिक पद ऐसे प्रकाशित हैं जिनके रचयिता परमानंददास हैं | इनके अतिरिक्त अन्य पद संग्रहों में भी यत्रतत्र परमानंददास रचित पद उपलब्ध हो जाते हैं |

कृष्णदास की रचनाएँ (सं.1552-1638)— कृष्णदास की प्रामाणिक रचना केवल उनके पद ही सिद्ध होते हैं | कीर्तन संग्रह के तीन भागों में प्रकाशित 248 पदों के अतिरिक्त इनके 676 पदों के हस्तलिखित संग्रह की दो प्रतियाँ एक काँकरौली तथा नाथद्वार में उपलब्ध है | इन स्थानों में प्राप्त अन्य संग्रहों में भी 'कृष्णदास के पद' मिलते हैं | (अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग2,पृ.315-323)

कृष्णदास की संदिग्ध रचनाओं के रूप में डॉ.दीनदयालु गुप्त ने भ्रमरगीत,प्रेमसत्व निरूपिता तथा वैष्णवंदना को स्वीकार किया है, साथ साथ रासपंचाध्ययी विषयक 31 छंद के एक लम्बे पद प्रेमरसरास तथा पद संग्रह को 'कृष्णदास की बानी' नाम दिये जाने की सम्भावना व्यक्त की है |(वही,पृ.324)

मीतल ने कृष्णदास की रचनाओं का नामोल्लेख मात्र किया है यथा—

"भ्रमरगीत,प्रेमतत्व निरूपण, भक्तमाल की टीका, वैष्णव वंदन, बानी, प्रेम रसराशि, हिंडोरा लीला आदि |"(अष्टछाप परिचय,पृ.166) इनमें कुछ नाम अशुद्ध प्रतीत होते हैं |

गोविंदस्वामी की रचनाएँ (सं.1562-1642) —गोविंदस्वामी की प्रामाणिक रचना के रूप में उनका 252 पदों का संग्रह ही स्वीकार किया गया है | जिसकी अनेक हस्तप्रतियाँ काँकरौली तथा नाथद्वार के पुस्तकालयों से उपलब्ध हुई हैं | (अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग21,पृ.388-389) इन प्रतियों में नाथद्वार की सं.1733 की प्रति सब से पुरानी है | इधर काँकरौली में विभिन्न पद-संग्रहों के आधार पर गोविंदस्वामी के पदों का जो संग्रह किया गया है उसकी पद- संख्या 760 है | इस प्रकार 252 पदों के अतिरिक्त इतनी संख्या में प्राप्त सभी पदों को संदिग्ध नहीं माना जा सकता | गोविंदस्वामी के पद यद्यपि कृष्ण की अनेक लीलाओं से सम्बद्ध हैं फिर भी कुंज लीला और किशोर लीला के पद विशेष रूप से प्राप्त होते हैं |

नंददास की रचनाएँ (सं.1570-1640)— नंददास की रचनाओं के विषय में पर्याप्त शोधन हो चुका है | उनके नाम से प्राप्त 28-30 रचनाओं में से अधिकतर अप्रामाणिक सिद्ध हुई हैं | डॉ.दीनदयालु गुप्त के अनुसार प्रामाणिकता का श्रेय निम्नलिखित 14 रचनाओं को प्राप्त हुआ है |

1. रसमंजरी
2. अनेकार्थमंजरी
3. मानमंजरी
4. दशमस्कंध
5. श्यामसगाई
6. गोवर्धनलीला
7. सुदामाचरित
8. विरहमंजरी
9. रूपमंजरी
10. रुक्मिणीमंगल
11. रासपंचाध्यायी
12. भँवरगीत
13. सिद्धांतपंचाध्यायी
14. पदावली

किंतु इनमें से दो एक रचनाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद है | उमाशंकर शुक्ल गोवर्धनलीला को स्वतंत्र रचना के रूप में स्वीकार नहीं करते और सुदमाचरित को संदिग्ध मानते हैं |(नन्ददास, भाग1, भूमिका,पृ 20-21) प्रभुदयाल मीतल ने गोवर्धनलीला का उल्लेख ही नहीं किया है | सुदामाचरित को स्वीकार करने के साथ-साथ उस पर संदेह किये जाने का संकेत कर के भी स्थिति स्पष्ट नहीं

की |(अष्टछाप परिचय,पृ.198,200) गोवर्धनलीला को स्वतंत्र रचना मानना अनुचित नहीं क्योंकि दशमस्कंध की लीला से कुछ सम्य होते हुए भी आद्यंत युक्त यह रचना सर्वथा वही नहीं है | जहाँ तक पदावली का प्रश्न है उसकी प्रामाणिकता तो सिद्ध है किंतु पद-संख्या के विषय में उक्त तीनों विद्वानों के मत में पर्याप्त भिन्नता है | मीतल के अनुसार 'नंददास कृत लगभग 400 पद उपलब्ध हैं' (वही,पृ.198) | उमाशंकर शुक्ल ने मूलपाठ में 35 और परिशिष्ट में 248, इस प्रकार पदावली के अंतर्गत कुल 283 पद प्रकाशित किये हैं |(नंददास,भग1,भूमिका,पृ 86) | जवाहरलाल चतुर्वेदी के पास 'नंददास पदावली' के नाम से लगभग 700 पदों का संग्रहहै इसका उल्लेख कई विद्वानों ने किया है |(क.वही) काँकरौली के विद्या-विभाग की ओर से नंददास से स्फुट पदों का जो संकलन हुआ है | उसमें 762 पद हैं ऐसी स्थिति में चतुर्वेदी जी के संग्रह में 700 के लगभग पदों का उपलब्ध होना अविश्वसनीय नहीं |

विषय की दृष्टि से नंददास की उक्त प्रामाणिक रचनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि अंततः कृष्ण से सम्बद्ध होते हुए भी यह सभी रचनाएँ पूर्णतया कृष्णपरक नहीं कही जा सकतीं | डॉ. दीनदयालु गुप्त ने विषयानुसार चार वर्गों में विभाजित करके वस्तु स्थिति को अधिक स्पष्ट कर दिया है |(अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग1,पृ.374)

मानमंजरी, अनेकार्थमंजरी तथा रसमंजरी कवि की इन तीनों प्रारंभिक रचनाओं का उद्देश्य मूलतः कृष्णलीला-वर्णन नहीं है | यद्यपि प्रारम्भ में कृष्ण वंदना मिलती है और यत्रतत्र उनकी प्रेम लीलाओं का संकेत भी, तथापि वस्तु की दृष्टि से यह प्रस्तुत अध्ययन में किसी प्रकार उपयोगी नहीं है | रसमंजरी के नायिका-भेद के उदाहरणों का अवश्य रीतिकाल अन्य कृतियों की तरह महत्व हो सकता है किंतु शेष दो केवल कोश-काव्य हैं | इनके अतिरिक्त शेष सभी रचनाएँ विषय की दृष्टि से उपयोगी हैं और उनका परिचय नीचे दिया जाता है |

दशमस्कंध—दोहा चौपाई की शैली में लिखित नंददास की यह अपूर्ण रचना है | भागवत दशमस्कंध के उन्तीस अध्ययों को इसमें एक प्रकार से अनूदित किया गया है | वार्ता-साहित्य में इस रचना का अपूर्ण रहने के कारण कथावाचक ब्राह्मणों का विरोध कहा गया है तथा उससे यह भी ज्ञात होता है कि इसके निर्माण की प्रेरणा कवि को तुलसीदास की रामायण से मिली थी | इस दृष्टि से इसका रचना-काल सं.1631 के बाद ही संभव है |(वही,पृ.338,339)

श्यामसगाई—यद्यपि इसकी कुछ प्रतियों में 'तारपाणि' की छाप भी प्राप्त होती है तथापि अनेक हस्तप्रतियों, रचनाशैली एवं वस्तु के आधार पर यह रचना नंददास की ही सिद्ध होती है | डॉ.दीनदयालु गुप्त ने इसे स्वतंत्र ग्रंथ न मान कर 'एक लम्बा पद मात्र' माना है | वंदना और अंत के अभाव से यह उचित ही है | 28 छंदों के इस वर्णात्मक पद में राधाकृष्ण की सगाई का वर्णन है | कृष्ण गारुड़ी बनकर छल से राधा का काल्पनिक विष उतरते हैं और इस प्रकार अंत में सगाई स्वीकृत करने में सफल होते हैं |

गोवर्धनलीला—नंददास के दशमस्कंध में तथा इस रचना में कुछ पंक्तियों एवं भावों की समानता होते हुए भी प्रारम्भ में गुरु-वंदना तथा अंत में कवि की छाप से युक्त यह काव्य भी स्वतंत्र कृति ही ज्ञात होता है | नाथद्वार की प्रति में इसको 'गोवर्धनपूजा' और 'गोवर्धनलीला' दोनों संज्ञाएँ दी गयी हैं | विषय शीर्षक से स्पष्ट है | रचना वर्णानात्मक होते हुए भी संक्षिप्त है |

सुदामाचरित—इस रचना के विषय में डॉ.दीनदयालु गुप्त का यह अनुमान कि 'यह रचना नंददास कृत सम्पूर्ण भागवत भाषा का, जो अब अप्राप्य है, अंश है'(वही,पृ.341) उचित ही प्रतीत होता है | इसकी रचना-

शैली ठीक वैसी ही है जैसी दशमस्कंध की | कवि ने 'दशमस्कंध विमल सुख बानी, सुनत परीछित अतिरति मानी' लिखकर स्वयं इसी तथ्य को स्वीकार किया है | रचना का विषय नाम से स्वतः प्रकट है |

विरहमंजरी—इस छोटी सी कृति में नंददास ने 'द्वादश मास विरह की कथा' का चित्रण किया है | प्रारंभ में चार प्रकार के विरह का उल्लेख करके फिर क्रम से चैत से लेकर फागुन मास तक नाना प्रकार से उद्दीपन-सामग्री प्रस्तुत करते हुए ब्रजवासिनियों की विरह-व्यथा का वर्णन किया गया है | प्रत्येक मास के वर्णन का आदि अंत दोहे में तथा मध्य आठ दस चौपाइयों में विरचित है |

रूपमंजरी—580 पंक्तियों की यह प्रेम-कथा रूपमंजरी नामक निर्भयपुरी के राजा की कन्या को नायिका रूप में प्रस्तुत करती है | गिरिगोवर्धन पर कृष्ण की प्रतिमा देखकर तथा स्वप्न में दर्शन पाकर वह उनकी ओर आकृष्ट होती है और अंत में अपनी सखी इंदुमती की सहयता से कुञ्ज में उनसे मिलकर कृतार्थ भी होती है | दोहा चौपाई की शैली में विस्तार से इसी कथा का वर्णन किया गया है | कथा-वस्तु का आधार भागवत से नहीं लिया गया है |

रुक्मिणीमंगल—133 रोला छंदों में कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह की भागवततोक्त कथा को मूलाधार मानकर इसकी रचना की गई है | 'विधिवत कियो विवाह तिहूँ पुर मंगल गावै' में प्रयुक्त मंगल शब्द इसके नामकरण की व्याख्या करता है | कथा-कथन में कल्पना का भी पर्याप्त आश्रय लिया गया है |

रासपंचाध्यायी—यह नंददास की सर्वमान्य एवं सर्वप्रसिद्ध कृति है | 29 से 33 तक भागवत दशमस्कंध पूर्वार्ध के पाँच अध्यायों में वर्णित रासलीला का उसी क्रम से 301 रोला छंदों में वर्णन किया गया है | कवि ने भाव युक्त होकर रास का आलेखन किया है अतएव इसे अनुवद नहीं कहा जा सकता | उमाशंकर शुक्ल ने इसके 83 संदिग्ध छंद 'नंददास' की परिशिष्ट में दे दिये हैं |

भंवरगीत—75 छंदों में विरचित गोपी-उद्धव-संवाद विषयक इस रचना की अनेक हस्तप्रतियों में 'जनमुकुंद' नामक कवि की भी छाप प्राप्त होती है |(अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग1,पृ.349) परंतु रचना-शैली और वस्तु की दृष्टि से यह नंददास की रचना सिद्ध होती है | इसके प्रारम्भ में न वंदना है और न कथा की भूमिका, जिससे ज्ञात होता है कि कदाचित यह रचना किसी अन्य विशाल रचना का अंश हो | यह भी संभव है कि सूरदास के भ्रमरगीत से प्रभावित होने के कारण इसका ऐसा रूप हो |(अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग1,पृ.349)

सिद्धांतपंचाध्यायी—नंददास की यह रचना रासपंचाध्यायी में वर्णित रास-क्रीड़ा की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करती है| रासप्रसंग के श्रृंगारिक वर्णनों की आलोचना का तथा तद्विषयक अलौकिकता पर की गयी शंकाओं का शास्त्रीय उत्तर एवं समाधान उपस्थित करना ही इस रचना के निर्माण की मूल प्रेरणा प्रतीत होती है जो निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है |

जे पंडित सिंगार ग्रन्थ मत यामैं सानैं |

ते कछु भेद न जानैं हरि की विषई मानैं||49||

138 रोला छंदो में रास का यह सैद्धांतिक विवेचन समाप्त हुआ है | रास पंचाध्यायी की कुछ प्रतियों में इसकी पंक्तियाँ भी प्रक्षिप्त मिलती हैं |(नंनदास,भाग1,पृ82)

पदावली—पदावली के पदों की संख्या 700 तथा 800 के बीच में है, इसका निर्देश किया जा चुका है | विषय की दृष्टि से इन पदों में पुष्टिमार्गीय वर्षोत्सव सम्बंधी लगभग सभी प्रसंगों का वर्णन मिल जाता है | यों नंददास ने बाललीला पर कोई स्वतंत्र रचना नहीं की किंतु पदों में इस विषय का भी समावेश है | हिंडोला, बसंत, खंडिता,मान आदि प्रसंगों पर भी पर्याप्त पद प्राप्त होते हैं |

छीतस्वामी की रचनाएँ(सं 1567-1642)— स्फुट पदों के अतिरिक्त छीतस्वामी की कोई सम्बद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती | इन पदों की संख्या के विषय में मतैक्य नहीं है | डॉ. दीनदयालु गुप्त ने वल्लभ सम्प्रदायी छपे कीर्तन संग्रहों में से 64पदों की, जो छीतस्वामी विरचित हैं , सूची दी है और मिश्र बंधुओं के 34 पदों के अप्राप्य संग्रह तथा जवाहरलाल चतुर्वेदी के निजी संग्रह का उल्लेख किया है |(अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग1,पृ.390:391) प्रभुदयाल मीतल के अनुसार,उनके रचे हुए अधिक से अधिक 200 पद प्राप्त हो सके हैं , जिनमें से अधिकांश कीर्तन संग्रहों में दिये हुए हैं |(अष्टछाप परिचय,पृ 212) विद्याविभाग काँकरौली में हजारीलाल शर्मा द्वारा जो संग्रह किया गया है उसमें 232 पद हैं | इस संग्रह का आधार विभिन्न हस्तलिखित पद-संग्रह हैं | विषय की दृष्टि से इन पदों की स्थिति अष्टछाप के अन्य कवियों की पदावली के ही समान है | कृष्णलीला से सम्बंधित लगभग सभी विषयों पर पद प्राप्त होते हैं | इनमें दान, मान,संभोग,बाल-लीला तथा यमुना-प्रसंशा प्रमुख हैं |

चतुर्भुजदासकी रचनाएँ (सं1597-1642)— अन्य अष्टछापी कवियों की तरह चतुर्रभुजदास के पदों का संग्रह भी विद्यविभाग काँकरौली की ओर से उक्त शर्मा द्वारा किया गया है जिसमें 436 पद संग्रहित हैं | डॉ.दीनदयालु गुप्त ने चतुर्भुजदास के अनेक हस्तलिखित पदसंग्रहों का उल्लेख किया है जिनकी पदसंख्या 300 के लगभग हैं | (अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग1,पृ.381:384) कवि की प्रामाणिक रचना के रूप में उन्होंने इन्हीं को स्वीकार किया है | इनके अतिरिक्त 'दानलीला' को भी प्रामाणिक माना है , जो वास्तव में कवि का एक लम्बा पद है | ना.प्र. सभा की खोज रिपोर्ट में उल्लिखित 'मधुमालती', 'भक्तिप्रताप', 'द्वादशयश',तथा 'हितजू को मंगल' अष्टछापी चतुर्भुजदास की रचनाएँ नहीं हैं | इनमें से अंतिम तीन राधावल्लभीय चतुर्भुजदास द्वारा रचित हैं |

राधावल्लभीय सम्प्रदाय

वृन्दावन में गोस्वामी हितहरिवंश(सम्प्रदाय में प्रचलित हिताब्द के आधार पर इनका जन्म सं.1530 सिद्ध होता है और जीवनकाल सं.1530:1609 तक परंतु भागवतमुदित नमक कवि के 'हितहरिवंशचरित्र' में जन्म का 'पंद्रह सौ उनसठ सम्वत्सर' दिया है) द्वारा संस्थापित युगल रूप राधावल्लभ के उपासक इस सम्प्रदाय के कवियों ने भी पर्याप्त कृष्ण-काव्य का सृजन किया | 16वीं शताब्दी में हितहरिवंश के अतिरिक्त उनके अनुयायी सेवक जी,व्यासजी, भगवतहित, परमानंददास, चतुर्भुजदास तथा झूँठास्वामी के नाम प्रमुख हैं | इनमें से भगवतहित,परमानंददास तथा झूँठास्वामी की कोई सुसम्बद्ध रचना प्राप्त नहीं होती | केवल स्फुट पद यत्रतत्र प्राचीन प्रतियों में मिलते हैं | हितहरिवंश के पुत्र वनचंद आदि ने भी कविता की किंतु उनके भी कतिपय स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं |शेष कवियों की कृतियों का परिचय नीचे दिया जा रहा है |

हितहरिवंश की वाणी—ब्रजभाषा में हितहरिवंश की दो रचनएँ प्राप्त होती हैं |

1. श्रीहितचौरासी 2. श्रीहित स्फुटवाणीजी

ये दोनों ही प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं|हितचौरासी में 84 पद संग्रहित हैं जिनमें राधाकृष्ण के अनुराग, संभोग,कुञ्जक्रीड़ा, रास, मान, नखशिख,आदि का वर्णन है|सभी पद रागबद्ध हैं | यह रचना हित सम्प्रदाय में गीता भागवत की तरह पूज्य मानी जाती है और सभी साम्प्रदायिक कवियों द्वारा आदर्श रूप में ग्रहण की गई है |

स्फुटवाणी में 15 पद, 3 सवैये, 2 कुंडलियाँ, 2 छप्पय तथा 1 अरिल्ल, इस प्रकार कुल 23 मुक्तक संग्रहीत हैं | यह कवि की प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है | विषय की दृष्टि से अधिकांश पद हितचौरासी के पदों के समान हैं | कुछ पदों में(11,16) नंद और वृषभानु के द्वार का आनंदोत्सव वर्णित है | स्फुटवाणी के शेष अंशों में कृष्ण-भक्ति की महत्ता का गायन किया गया है|

सेवक जी की वाणी—हितहरिवंश के शिष्य सेवक जी (जन्म सं.1570) की वाणी 'श्री हितचौरासी सेवकवाणी' के नाम से गुरु की रचना के साथ ही प्रकाशित हो चुकी है |

(इस विषय में साम्प्रादायिक मान्यता है—

रीझे श्री वनचन्द्र जू,बोले सबन उमंग |

सेवकवाणी कूं पढ़ों, श्री चतुराशी संग ||)

इस वाणी का विषय यद्यपि प्रधान रूप से हितहरिवंश की प्रशंसा है तथापि 'श्री हितरसरीतिप्रकर' और 'श्री हितभक्तभजन प्रकरण' आदि कुछ प्रकरणों में राधाकृष्ण की कुँज-क्रीड़ा का वर्णन भी मिलता है| मिश्र-बंधुओं ने वाणी के अतिरिक्त इनके 'भक्ति परचावली मंगल' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है |(मिश्रबंधु विनोद, भाग1,पृ.332) पर वह उपलब्ध नहीं है | सेवकवाणी के पदों तथा छंदों की संख्या सीमित ही है किंतु समस्त वाणी का विस्तार लगभग 200 मुक्तकों तक है जिसमें दोहा,छप्पय,सवैया आदि अनेक छंद प्रयुक्त हैं |

व्यास जी की वाणी—ओड़छा नरेश मधुकरशाह के गुरु हरिराम व्यास ने(जन्म सं.1567) जो हितहरिवंश के सर्वप्रधान शिष्य थे, विस्तृत रूप में काव्य रचना की | उनकी समस्त रचनाएँ 'श्रीव्यासवाणी' नाम से दो भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं | इस प्रकाशन का आधार तीन विभिन्न हस्तप्रतियाँ हैं | पहली में 627 पद, दूसरी में 690 पद तथाअ तीसरी में, जो सं.1890 की है, 722 पद मिले किंतु प्रस्तुत प्रकाशित वाणी में पद-संख्या 756 है और साथ में 146 साखियाँ और दोहे भी हैं |

(सुभ सत पंद्रह जान, सरसठ ता ऊपर अधिक |

ता संबत मे आन, प्रकट भये श्री व्यास जी || श्री व्यासवाणी, पूर्वार्ध वक्तव्य पृ.व.)

यह 756 पद दो भागों में विभाजित हैं | पहले भाग में 'सिद्धांत रस' के 301 पद हैं तथा दूसरे में रसविहार के 455 पद हैं |

सिद्धांतरस के पद—इस शीर्षक के अंतर्गत आने वाले सभी पद सिद्धांत परक नहीं हैं | प्रारम्भ में वृन्दावन, मधुपुरी,यमुना, महाप्रसाद तथा नाम रूप की स्तुति तथा गुरु-महिमा का वर्णन है | इसके उपरांत 'श्री साधुन की स्तुति' के रूप समस्त प्रसिद्ध भक्तों का यश-वर्णन है जो एक प्रकार से कृष्णकाव्य की

सीमा से बाहर की वस्तु है | शाक्त-निंदा, कलिकाल-प्रवाह आदि प्रकरण भी इसी कोटी में आते हैं | किंतु शेष अंश किसी न किसी तरह कृष्ण-भक्ति से सम्बद्ध हैं | विनय, विरह, मनोपदेश, भक्ति-ज्ञान आदि विभिन्न विषयों के व्याज से युगलरूप की उपासना ही व्यंजित होती है |

रस-विहार के पद— इन पदों में राधाकृष्ण का कुंजविहार, शय्याविहार,जलक्रीड़ा, षड्ऋतुरास, षोडशश्रृंगार, नखशिख, मान, भोजनविलास, होली, हिंडोला, विवाह आदि अनेक-अनेक प्रकार वर्णित हैं | **'रासपंचाध्यायी'** पृथक रूप से पद्यपबद्ध की गई है जिसमें राधारास को छोड़कर शेष अंश भागवत के आधार पर लिखित है | राधा और कृष्ण के जन्मोत्सव से सम्बंधित पद भी प्राप्त होते हैं और कुछ में गोपाल-मंडली का भी चित्रण है | कतिपय पदों में खंडिता के भाव भी व्यक्त हैं | इन थोड़े से अपवादों के अतिरिक्त सभी पदों में राधा कृष्ण के युगलरूप का ही आलेखन हुआ है |

गौड़ीय सम्प्रदाय

ब्रज प्रदेश चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रधान केंद्र रहा है किंतु जहाँ तक ब्रजभाषा कृष्ण-कव्य का प्रश्न है 16वीं शती में केवल दो कवियों की कृतियाँ ही उपलब्ध होती हैं | ये कवि हैं गदाधर भट्ट तथा सूरदास मदनमोहन | गदाधर भट्ट जीव गोस्वामी के शिष्य थे और सूरदास मदनमोहन सनातन गोस्वामी के | ये चैतन्य के समकालीन थे |(ब्रजमाधुरीसार,पृ97) रामचंद्र शुक्ल के अनुसार गदाधर भट्ट का कविताकाल सं.1580-1600 के बाद तथा सूरदास मदनमोहनका सं.1590-1600 के लगभग(हिंदी सहित्य का इतिहास पृ183,187) है | स्फुट पदों के अतिरिक्त दोनों कवियों का कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता |

गदाधर भट्ट की वाणी—'मोहनी वाणी' श्रीगदाधर भट्ट जी की' के नाम से प्रकाशित इनकी संग्रहीत वाणी में पदों के अतिरिक्त कतिपय संस्कृत के गीत तथा वृन्दावन की प्रशंसा में लिखित 54रोला छंदों का 'योगपीठ' भी सम्मिलित है| संग्रह में छोटे बड़े सभी प्रकार के पद हैं जिनकी संख्या 80 के लगभग है |

यशोदा, नंद, बधाई, वंदना, यमुना, वंशी, वर्षा, वसंत, होली, हिंडोला आदि पर अनेक तो पद हैं ही किंतु राधा कृष्ण के श्रृंगार, रास, विलास,विवाह तथा मान का विशेष विस्तार से वर्णन गया है | एक दो स्थल पर श्रीकृष्ण की ब्रज-गोकुल लीलाओं का भी संदर्भ प्राप्त हो जाता है | कुछ पदों में नाम-माहात्म्य तथा दैन्य-भाव भी व्यक्त है | पदों का वर्गीकरण एवं क्रम-निर्धारण उचित रूप से नहीं हुआ है |

सूरदास मदन मोहन की वाणी— 'सुहृत वाणी श्री श्री सूरदास मदनमोहन की' नामक प्रकाशित संग्रह में इनके 105 स्फुट पद उपलब्ध होते हैं| इनके काव्य प्रधान विषय बाल रूप, मुरली रास, विवाह, खंडिता, होली धमार, फाग तथा हिंडोला आदि हैं | यों प्रारम्भ के उपदेश तथा राधा-कृष्ण-जन्म की बधाई के पद भी हैं | नखशिख, कुञ्ज-विलास तथा दान, मान का भी वर्णन प्राप्त हो जाता है | वर्णानात्मक शैली में लिखा हुआ धमार का विस्तृत वर्णन(पद नं.82,रागगौरी) एक स्वतंत्र रचना प्रतीत होता है |

निम्बार्क सम्प्रदाय

यह सम्प्रदाय ब्रज के उक्त अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की अपेक्षा प्राचीनतर है किंतु 16वीं शती से पहले इसमें भी कोई काव्य-रचना उपलब्ध नहीं होती | 15वीं शती के प्रसंग में श्रीभट्ट और हरिव्यास को 16वीं शती का

निर्णित किया जा चुका है | इन दो कवियों के अतिरिक्त एक कवि परशुरामदेव भी इसी शती में प्राप्त होते है|(निम्बार्कमाधुरी पृ.69)

श्रीभट्ट की रचना : जुगलसत—किवदन्ती के अनुसार तो यह एक सहस्त्र पद के रचयिता हैं किंतु इनकी उपलब्ध रचना एकमात्र 'जुगलसत' ही है |(वही,पृ9,48) श्रीभट्ट की इस कृति में राधा कृष्ण के युगलरूप को आलम्बन मन कर 100 पदों का निर्माण किया गया है शीर्षक से व्यंजित है | पद विभिन्न प्रकार के हैं और उनके साथ एक-एक दोहा भी समाविष्ट है जो पद का संक्षेप मात्र होता है | इन सौ पदों का विषयानुसार वर्गीकरण प्रस्तुत करने के लिये निम्नलिखित उद्धरण दे देना पर्याप्त होगा |

दस पद हैं सिद्धान्त,बीस षट ब्रजलीला पद |

सेना सुख सोलहौ, सहज सुख एक बीस हद |

आठे सख, अरु उनत बीस उच्छव सुख लहिए |

श्री जुत श्रीभट्टदेव रच्यो 'सतजुगल' जो कहिए |

(ब्रजमाधुरीसार,पृ.156)

हरिव्यास की रचना : महावाणी—श्रीभट्ट के शिष्य इन हरिव्यास देव की ब्रजभाषा की केवल एकमात्र रचना महावाणी ही प्राप्त होती है जो गुरू के 'जुगलशत' का भाष्य कहा जाता है |(निम्बार्क माधुरी,पृ27) इस महावाणी के पाँच सुख हैं :—

1. सेवा 2. उत्साह 3. सुरत 4. सहज 5. सिद्धांत

सेवा-सुख में अष्टयाम सेवा वर्णन है | उत्साह-सुख और सहज-सुख में संभोग-श्रृंगार का उदय, विकास एवं पर्यवसान वर्णित है | सिद्धांत-सुख के अंतर्गत उपास्य तत्व, सखीनामावली तथा महावाणी के गूढ़ विषयों की तालिका प्रस्तुत की गयी है | अनेक स्त्रोत भी इस रचना में समाविष्ट हैं | हरिव्यास ने अपने समस्त पदों में 'श्रीहरिप्रिया' की छाप दी है | 'जुगलसत' के आधार पर निर्मित होने के कारण 'महावाणी' का विस्तार भी उसी प्रकार निश्चित है |

परशुराम देव की रचना: परशुरामसागर—श्रीहरिव्यास देव के शिष्य परशुराम देव की एकमात्र रचना परशुरामसागर ही उपलब्ध होती है | इस अप्रकाशित वृहत् काव्य के कतिपय अंश 'निम्बार्क माधुरी' में उद्धृत हैं |(वही,पृ.74:75) उसमें इस रचना का जो विवरण दिया है उससे ज्ञात होता है कि इसमें 'बाइस सौ दोहा छप्पै' छंद और हज़ारों पद हैं जो भक्ति,ज्ञान,वैराग्य,गुरु-निष्ठा ,प्रेम-सम्बंधी तथा उपदेशात्मक हैं | (वही,पृ.74:75) जो अंश प्रकाशित हैं उनमें श्रृंगार विषयक पदों का नितांत अभाव है, केवल भक्त, विनय, आत्मनिवेदन तथा ज्ञान वैराग्य की चर्चा है | निम्बार्क माधुरी में परशुरामसागर से 100 दोहे तथा 33 पद उद्धृत हैं |

हरिदासी सम्प्रदाय

16वीं शती में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक तथा तानसेन के गुरु स्वामी हरिदास के अतिरिक्त उनके शिष्य विट्ठल विपुलदेव और प्रशिष्य विहारिनदेव के द्वारा काव्य-रचना हुई | स्वामी हरिदास का कविता-काल सम्वत 1600-1617 के लगभग माना जाता है |

स्वामी हरिदास की रचना—इनकी रचनाओं के विषय में हिंदी के इतिहासकार एकमत नहीं हैं | डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार इनके अनेक संग्रह प्राप्त हुए हैं जिनमें 'हरिदास जी की बानी' और 'हरिदास जी के पद' प्रमुख हैं |(हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,पृ714) रामचंद्र शुक्ल ने तीन निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है : (हिंदीसाहित्य का इतिहास,पृ 186)

1. हरिदास जी को ग्रंथ
2. स्वामी हरिदास जी के पद
3. हरिदास जी की बानी

मिश्र बंधुओं ने 'भरथरी वैराग्य' नामक रचना को हरिदास-कृत माना है| (निम्बार्कमाधुरी,पृ.202) उक्त सभी रचनाओं का इतिहसकारों द्वारा केवल उल्लेख मात्र प्राप्त होता है | किसी ने उनकी रूपरेखा तथा परिचय प्रस्तुत नहीं किया | वास्तव में इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध होती हैं जो पदावली के रूप में हैं | पहली रचना में 18 'सिद्धांत के पद' हैं तथा दूसरी 'केलिमाल' नामक रचना में युगल रूप राधाकृष्ण के नित्यविहार, नखशिख, मान, दान, होरी तथा रास आदि विषयों के 108 पद हैं| (ब्रजमाधुरी,पृ.124) ये दोनों रचनाएँ 'निम्बार्क माधुरी' में प्रकाशित हैं | वियोगीहरि ने भी इन्हीं दोनों रचनाओं की चर्चा की है किंतु पद-संख्या क्रमशः 19 तथा 110 दी है और नाम 'केलिमाल' के स्थान पर 'केलिमाला'| डॉ.दीनदयालु गुप्त ने कदाचित इन्हीं का 'साधारण सिद्धांत' तथा 'रास के पद' नाम से उल्लेख किया है |(अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग 1,पृ.69)

इन रचनाओं में सर्वत्र 'श्री हरिदास' अथवा 'हरिदास' की छाप मिलती है अतः नाभा जी के कथन 'रसिक छाप हरिदास की' की सार्थकता सिद्ध नहीं होती | उनके 'अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी' से केलिमाल नाम की व्यंजना होती है जिसमें सखी-भाव स्पष्ट है |

विट्ठल विपुलदेव की रचनाएँ—इनकी कोई सम्बद्ध रचना प्राप्त नहीं होती | केवल चालीस स्फुट पद उपलब्ध होते हैं | इन पदों में श्री राधाकृष्ण के नित्य विहार सम्बंधी विषयों का वर्णन है |(निम्बार्क माधुरी,पृ224) 39 पद निम्बार्क-माधुरी में प्रकाशित है |

विहारिनदेव की रचनाएँ—इनके द्वारा निर्मित 700 दोहे और 300 के लगभग पद प्राप्त होते हैं | जिनकी रचना भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नीति, उपदेश, आचार्य-निष्ठा, श्रृंगार आदि विविध विषयों पर हुई है | जहाँ तक दोहों का प्रश्न है वे प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं होते किंतु पदों में से 90 पद संकलित करके निम्बार्क-माधुरी में प्रकाशित कर दिये गये हैं |

सम्प्रदाय-मुक्त कवि

इस वर्ग में 16वीं शती के वे सभी कवि आ जाते हैं जिन्होंने उक्त किसी सम्प्रदाय की सीमा में रह कर कृष्ण-काव्य की रचना नहीं की | ऐसे कवियों के भी दो वर्ग हैं | प्रथम वर्ग के कवियों की रचनाएँ स्वतंत्र रूप में प्रेरणा पाकर कृष्ण-भक्ति अथवा कृष्ण-यशगान के उद्देश्य से लिखी गई हैं किंतु द्वितीय वर्ग के कवियों ने रीति

अथवा नायिका-भेद के ग्रंथों के उदाहरण प्रस्तुत करने की दृष्टि से कृष्ण-काव्य की रचना की | प्रथम श्रेणी में मीरां, तुलसी, रहीम और नरोत्तमदास प्रमुख हैं तथा द्वितीय में कृपाराम, केशवदास, गंग और आलम | नीचे इन समस्त कवियों की रचनाओं का परिचय दिया जाता है |

मीरां

प्रथम वर्ग के कवियों की रचनाएँ— ब्रजभाषा में मीरां के स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं | इन पदों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं (मीरां स्मृति ग्रंथ,परिशिष्ट 'ख' मीरां परिचय,पृ.58) जिनमें परशुराम चतुर्वेदी का 'मीरांबाई की पदावली' तथा महाबीरसिंह गहलौत का 'मीरां जीवनी और काव्य' विशेष महत्वपूर्ण हैं | चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत संग्रह में शताधिक पद सुसंपादित एवं वर्गीकृत रूप में प्राप्त होते हैं तथा गहलौत के संग्रह का महत्व 108 पदों में 40 अप्रकाशित पदों को पहली बार प्रकाश में लाने के कारण है | प्रस्तुत लेखक को भी मीरां के कतिपय अप्रकाशित पद प्राप्त हुए जो मीरांस्मृतिग्रंथ में प्रकाशित हो चुके हैं |(मीरां स्मृति ग्रंथ,परिशिष्ट 'ख' मीरां परिचय,पृ.141) इस ग्रंथ में ललिताप्रसाद शुक्ल ने डाकोर वाली सं.1642 की हस्तप्रति से 69 तथा काशीवाली हस्तप्रति से 34 पदों को मुद्रित कराया है जिनकी भाषा प्राचीन राजस्थानी है | इसके विषय में विशेष विचार भाषा के प्रसंग में किया जायेगा |

विषय की दृष्टि से मीरां के उपलब्ध पद मुख्यतया तीन निम्नलिखित भागों में विभाजित किये जा सकते हैं :

1. स्वरचित सम्बंधी पद
2. निर्गुण भक्ति परक पद
3. सगुण भक्तिपरक पद

अंतिम भाग के अंतर्गत मीरां का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, विरह, मिलन, आत्मनिवेदन आदि भावों से प्रेरित होकर लिखे गये तथा 'रूपवर्णन', होली, वसंत दान, मान, कुञ्ज क्रीड़ा, पनघट आदि विषयों पर लिखित सभी पद आ जाते हैं |

तुलसी दास

तुलसीदास की समस्त रचनाओं में कृष्णविषयक केवल एक रचना कृष्ण-गीतावाली ही उपलब्ध होती है | यह रचना 'तुलसी ग्रंथावली' तथा 'तुलसी रचनावली' दोनों में प्रकाशित है | कवि की गीतावली में जिस प्रकार राम सम्बंधी पद संग्रहीत हैं उसी प्रकार इस श्रीकृष्णागीतावली में कृष्ण सम्बंधी 61 पद संग्रहीत हैं | इन पदों में कृष्ण के बाल रूप तथा भ्रमरगीत का विशेष रूप से वर्णन मिलता है | कुछ पदों में ब्रजलीला,रास तथा नखशिख का भी वर्णन है |

रहीम

अब्दुर्रहीम खानखाना की रचनाओं में से केवल दो रचनाएँ,1. मदनाष्टक तथा 2. रासपंचाध्यायी कृष्ण-काव्य के अंतर्गत आती हैं किंतु इनमें से पहली रचना में मात्र आठ चौपदे हैं तथा दूसरी के केवल दो पद ही उपलब्ध होते हैं |(रहीम रत्नावली, मायाशंकर याज्ञिक द्वारा सम्पादित,पृ 32)

नरोत्तमदास

इनकी कृष्ण सम्बंधी एकमात्र रचना 'सुदामाचरित' है जो अनेक स्थलों से प्रकाशित हो चुकी है | रचना का विषय शीर्षक से प्रकट है | यह एक सुप्रसिद्ध खण्डकाव्य है जिसमें दोहा, कवित्त, सवैया, छंद में सम्बद्ध रूप से कृष्ण-सुदामा-मिलन की सारी कथा वर्णित है |

द्वितीय वर्ग के कवियों की रचनाएँ—इस वर्ग में कृपाराम की 'हिततरंगिनी', केशवदास की 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' और आलम शेख की 'आलमकेलि' जैसी रचनाएँ आती हैं | इन रचनाओं में लक्षणों के उदाहरण रूप में प्रस्तुत मुक्तकों में राधाकृष्ण की विविध श्रृंगार-लीलाओं का वर्णन प्राप्त होता है | गंग के नाम से उपलब्ध कृष्ण सम्बंधी कतिपय कवित्त भी इसी श्रेणी में आते हैं |

ये सभी रचनाएँ प्रकाशित हैं |

17वीं शती—ब्रजभाषा

इस शती में भी ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य के सृजन की परिस्थिति लगभग 16वीं शती के समानांतर ही रही | उक्त वल्लभीय,राधावल्लभीय, गौडीय,निम्बार्क तहा हरिदासी में से प्रत्येक के अंतर्गत कुछ न कुछ काव्य रचना उपलब्ध होती है | रीति-काव्य-धारा में अपेक्षाकृत अधिक काव्य-निर्माण हुआ | नीचे पूर्वनिर्धारित क्रम के अनुसार ही 17वीं शती के कृष्ण-काव्य का परिचय दिया गया है |

वल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में इस में जिन कवि का नाम प्रमुख रूप से सामने आता है वह हैं रसखान | रसखान विट्ठलनाथ के शिष्य थे और उनका काव्य काल सं.1670 के लगभग है | इनके अतिरिक्त हरिरायजी (सं1647-1772) तथा विट्ठलनाथ के अन्य शिष्य शोभाचंद द्वारा भी काव्य-रचना के प्रमाण मिलते हैं |

रसखान की रचनाएँ—रसख़ान की दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं जो प्रकाशित हैं |

1. प्रेमवाटिका
2. सुजाना रसखान

प्रेमवाटिका में 52 दोहे हैं जिनमें प्रेम की महिमा का वर्णन किया गया है | सुजान रसखान में विभिन्न प्रकार के कुल 129 पद्य हैं | रागरत्नाकर में भी रसखान के 130 पद्य संग्रहीत हैं |(ब्रज माधुरी सार,पृ 209) इन पद्यों में कवि ने मुख्यतया राधा-कृष्ण की प्रीति तथा प्रणयलीलाओं का ही विशेष वर्णन किया है | कुछ छंदों में बालरूप का भी चित्रण मिलता है |

हरिरायजी की रचनाएँ—इन्होंने रसिक, रसिकराय, हरिधन, हरिदास आदि कई नामों से काव्य रचना की|(अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग 1,पृ 80) संस्कृत में तो इनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं परंतु ब्रजभाषा में कुछ स्फुट पद, कवित्त और धोल आदि ही उपलब्ध होते हैं जिनमें दैन्यभाव तथा वल्लभ-यश-वर्णन की प्रधानता है |(राधावल्लभ भक्तमाल,पृ322,325,326) इन स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त एक छोटी-सी प्रबंधात्मक रचना 'दानलीला' भी प्राप्त होती है | इसकी हस्तप्रति काँकरौली में है | दानलीला में 36 दोहे हैं और प्रत्येक के अंत में 'नागरि दान दै' जोड़ दिया गया है |

शोभाचंद की रचना : भक्तिविधान—भक्तिविधान का रचनाकाल सं.1681 दिया हुआ है | सारा ग्रंथ प्रश्नोत्तर के रूप में है | कुल 931 दोहे हैं | श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व,उनके अनेक नाम रूप, तंत्रमंत्र आदि से भक्ति की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है | उपासना-विधान, पूजा-प्रकार, भोग इत्यादि का भी विस्तार से निरुपण मिलता है साथ ही व्रत-उपवास के नियम तथा प्रत्येक मास की साधना का पुष्टिमार्ग के अनुसार प्रतिपादन भी किया गया है | रचना अप्रकाशित है हस्तप्रति विद्या-विभाग काँकरौली में है |

राधावल्लभीय सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में, 17वीं शती में यद्यपि अनेक कवियों कान्हर, स्वामी, लालस्वामी, दामोदरदास, ध्रुवदास तथा हितविट्ठल आदि की गणना की जाती है तथापि ध्रुवदास सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं | अन्य कवियों में कान्हर स्वामी तथा हितविट्ठल के स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं जिनकी प्रामाणिकता के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता | लालस्वामी तथा दामोदरदास के नाम से अनेक ग्रंथों का उल्लेख मिलता है परंतु उपलब्ध उनमें से एक भी नहीं होते |(राधावल्लभ भक्तमाल,पृ330) अतएव केवल ध्रुवदास की रचनाओं का परिचय यहाँ दिया गया है |

ध्रुवदास की रचनाएँ—'राधावल्लभ-भक्तमाल' में ध्रुवदास के नाम से निम्नलिखित पाँच रचनाएँ उल्लिखित हैं | (वही,पृ329— इस प्रकार आपने ब्यालीसलीला एक ग्रंथ बनाया यह ध्रुवदास जी की ब्यालीसलीला के नाम से विख्यात है |')

1. ब्यालीस लीला
2. पदावली
3. खिचरी उत्सव
4. सिद्धांत पद मांझ
5. श्रृंगाररहस्यमुक्तावली

ब्यालीस लीला वस्तुतः ब्यालीस रचनाओं का संकलन है किंतु उसे एक ग्रंथ माना गया है |(हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ 724) डॉ.रामकुमार वर्मा ने ब्यालीस लीला 'ध्रुवदास की बानी' के नाम से उल्लेख किया है तथा उसके अंतर्गत आने वाली अनेक रचनाओं को अनेक 'विषय' समझा है | यही नहीं 'सिद्धान्तविचार' तथा 'भक्तनामावली' का जो ब्यालीस लीला में ही सम्मिलित हैं पृथक रूप से उल्लेख किया है |(बंध संख्या,214,पुस्तक नं.16:30)

राधावल्लभ-भक्तमाल में जिन पाँच रचनाओं का उल्लेख मिलता है उनमें से पहली को छोड़कर शेष चार के विषय में नाम के अतिरिक्त और कुछ भी सूचना प्राप्त नहीं है | पहली रचना ब्यालीस लीला की सं.1825 की एक हस्तप्रति प्रयाग म्युनिसिपल संग्रहालय में मिलती है |(सोलह से ध्रुव छासिया पून्यो अगहन मास) काँकरौली में भी एक प्रति है(बं.नं.83-9) किंतु उसमें केवल 24 लीलाएँ ही हैं | ध्रुवसर्वस्व नाम से ब्यालीस लीला में से निम्नलिखित 23 रचनाएँ रामकृष्ण वर्मा द्वारा प्रकाशित की जा चुकीं हैं :

1. वृन्दावन सत
2. सिंगार सत
3. रसरत्नावली
4. नेहमंजरी
5. रहस्यमंजरी
13. नृत्यविलास
14. रंगहुलास
15. मानरसलीला
16. रहसिलता
17. प्रेमलता

6. सुखमंजरी
7. रतिमंजरी
8. वनविहार
9. रंगविहार
10. रसविहार
11. आनंददशाविनोद
12. रंगविनोद
18. प्रेमावली
19. भजन कुण्डली
20. बृहद्वामनपुराण की भाषा
21. भक्तनावली
22. मनसिंगार
23. भजनसंत

इन 23 रचनाओं के अतिरिक्त ब्यालीस लीला की शेष 19 अप्रकाशित रचनाओं के नाम नीचे दिये जाते हैं :

1. हितसिंगार
2. रसानंद
3. ब्रजलीला
4. दानविनोद
5. रसहीरावली
6. अनुरागलता
7. आनंदलता
8. भजनाष्टक
9. आनन्दाष्टक
10. वैदकलीला
11. सिद्धांतविचार
12. जुगलध्यान
13. ख्यालहुलास
14. प्रिया जु की नामावली
15. सुखमंजरी
16. मनसिक्षा
17. प्रीतिचौवँनी
18. रसमुक्तावली
19. मंडलसभासिंगार

नामकरण की दृष्टि से वर्गीकृत करने पर इन रचनाओं में 6 अवली रसमुक्ता, रसहीरा, रसरत्न, प्रेम, प्रियाजु की नाम, भक्तनाम, 5 लीला रसानंद, मान, दान, ब्रज, वैद्यकज्ञान, 4 मंजरी नेह, रति, रहस्य, सुख, 4लतारहस्य, आनंद,प्रेम, अनुराग 3विहार वन,रंग, रस, 3सिंगार मनि, हित, मंडलसभा, 3 सत वृन्दावन, भजन, सिंगार, 2 विनोद रंग, अनंददसा, 2 हुलास रंग, ख्याल तथा 2 अष्टक भजन, आनंद मिलते हैं | शेष 8 रचनाएँ निर्तविलास, प्रीति चौंवनी, मनसिक्षा, वृहद्वामन पुराणभाषा, सिद्धांत विचार, जीवदशा, जुगलध्यान तथा भजन कुण्डली एकाकी हैं |

प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं की इस समस्त सूची में कई ऐसी रचनाएँ सम्मिलित हैं जो प्रस्तुत निबंध की सीमा में नहीं आतीं | 'प्रियाजु की नामावली' काव्य-कृति न होकर साधारण नामावली मात्र है | 'सिद्धांत विचार' भी गद्य-ग्रंथ है | इसी प्रकार भक्तनामावली में भी भक्तमाल की तरह भक्तों का परिचय दिया गया है | 'वैदकलीला' कृष्ण-काव्य से सीधे सम्बद्ध नहीं है | 'वृहद्वामनपुराण की भाषा' का शीर्षक से ही अनुवाद-ग्रंथ होना सिद्ध है | अतएव इनकी अतिरिक्त शेष कृतियों का परिचय संक्षेप में आगे दिया जाता है |

रसमुक्तावली—आदि में गुरुवंदना से युक्त 190 दोहा चौपाइयों की इस रचना का मुख्य विषय 'सखीभाव'का प्रदर्शन है | स्नानकुञ्ज, सिंगारकुञ्ज, भोजनकुञ्ज आदि विविध कुञ्ज-भवनों में ललितादिक सखियाँ राधाकृष्ण की सेवा में रह कर उनका विहार देखती हैं |

रसहीरावली—इस रचना की विशेषता इसका षड्ऋतु-वर्णन है | प्रत्येक ऋतु में राधाकृष्ण का विलास अंकित किया गया है | रचना 163 दोहा चौपाइयों में समाप्त हुई है |

रसरत्नावली—50 दोहों की इस कृति की मूल वर्ण्यवस्तु कवि के अनुसार 'रसिकरसिकनी केलि' ही है | प्रसंगान्तर से नखशिख आदि का भी वर्णन मिल जाता है |

प्रेमावली—इसके अन्तर्गत राधाकृष्ण का "प्रेमरस" विपरीत वेश-धारण तथा संभोग-श्रृंगार का वर्णन है | एक कुण्डलिया को छोड़कर शेष सारी रचना दोहों में है | कुल छंद-संख्या 127 है |

रसानंद लीला—कवि ने इस ग्रंथ का रचनाकाल 'संवत सौषोडस पंचासी' सं1685 दिया है | प्रारम्भ में की गई श्री हितहरिवंश की वंदना तथा 'मोपै है अबही मति थोरी' से व्यंजित होता है कि कदाचित यह कवि की प्रारम्भिक काल की रचना है| वस्तु के रूप में वृन्दावन, नखशिख, रतिविलास, विविध व्यंजन तथा पुष्प-श्रृंगार का वर्णन है | सारी रचना में 186 दोहा चौपाइयाँ हैं |

मानलीला—काँकरौली की प्रति में इसकी पुष्पिका में इसका नाम 'मान विनोदलीला' दिया है किंतु प्रयागवाली प्रति में 'मानलीला' ही लिखा है | ध्रुवसर्वस्व में इसका प्रकाशन 'मानरसलीला' के नाम से हुआ है | इसमें अपने ही प्रतिबिम्ब में अन्य स्त्री की धारणा हो जाने से राधा मान करती है | बाद में सखी की मध्यस्थता द्वारा उसका परिहार हो जाता है |छंद-संख्या 38 है जिसमें दोहा सोरठा अरिल्ल तीनों प्रयुक्त हैं |

दानविनोदलीला—इस नाम का संकेत स्वयं कवि ने पहले ही दोहे में 'देखें लाड़िली लाल की **लीला दान विनोद'** लिखकर कर दिया है | विषय शीर्षक से ही स्पष्ट है यद्यपि सारी घटना एक नवीन रूप से कल्पित की गई है | रचना छोटी है और केवल 22 दोहों में ही समाप्त है |

ब्रजलीला—इसमें राधाकृष्ण के प्रथम परिचय,तज्जन्य प्रीति तथा उसके विकास की विविध स्थितियाँ,विछोह,मूर्छ तथा ललिता की सहायता से स्त्रीवेष धारण करके मिलन,प्राप्ति आदि का वर्णन है | समस्त रचना दोहा चौपाइयों में है जिनकी संख्या 192 है |

नेहमंजरी—170 दोहा चौपाइयों में लिखित प्रारम्भिक अप्रौढ़कृति जैसी इस रचना में वृन्दावन, कुसुमश्रृंगार, राधाकृष्ण, रति तथा उसके दर्शन से गोपियों के उल्लस का वर्णन है |

रतिमंजरी—इस रचना में अमर्यादित रूप से संभोग-श्रृंगारक का वर्णन प्राप्त होता है | शैली की दृष्टि से नेहमंजरी के ही समान है और छंद-संख्या 82 है |

रहस्यमंजरी—यह विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से नेहमंजरी के समान है और छंद-संख्या 104 है |

सुखमंजरी— 'अद्भुत वैदक मधुररस दोहा भये पचीस' से प्रकट है कि 25 दोहों की इस रचना का विषय वैद्यक-लीला है | कामज्वर से पीड़ित कृष्ण को राधा व्याधिमुक्त करती है |

रहसिलता—ध्रुवसर्वस्व में इसको 'रहसिलीला' संज्ञा दी गई है | इसमें मुख्यतया रासक्रीड़ा का वर्णन है | यद्यपि कवि ने रचना की सीमा 'दोहा रहसिलतानि के अष्ट उपर पंचास' लिखकर निर्धारित की है

तथापि यह कथन यथार्थ नहीं है | रचना में दोहे के अतिरिक्त चंद्रायण छंद भी प्रयुक्त हैं तथा अंत में कवि की 'भजन कुण्डली' नामक रचना की 19वीं कुण्डली भी सम्मिलित कर ली गई है |

आनंदलता—इसमें राधाकृष्ण की केलि, क्रीड़ा, यमुना, कुञ्ज, आदि भाव तथा स्थल सभी में आनंद का अस्तित्व प्रदर्शित किया गया है | 'दोहा तीसरु बीस कहे आनंदलता अनंग' से स्पष्ट है कि इस रचना में 50 दोहे हैं | काँकरौली की प्रति में भी यह उपलब्ध नहीं है |

प्रेमलता—इस रचना में 68 दोहा चौपाइयों में प्रेम की प्रशंसा की गई है तथा उसके सूक्ष्म स्थूल भेद का भी वर्णन है | बीच बीच में कुञ्जविहार, सखी-संग और लाल-लाड़िली की प्रीति का दिग्दर्शन भी है |

अनुरागलता—इस रचना में भी प्रेमलता की तरह राधाकृष्ण के अनुराग का वर्णन है | शैली की दृष्टि से भी कोई नवीनता नहीं है |

वनविहार—इसमें 55 दोहे में वन का, बसंत का तथा दूलह-दुलहिनी राधाकृष्ण के विवाह एवं विलास का वर्णन है |

रंगविहार—सखी द्वारा आरसी में राधा का रूप दिखाये जाने पर कृष्ण का विकल हो जाना,तदुपरांत मिलन,संभोग और नखशिख आदि इसमें 56 दोहों में वर्णित हैं |

रसविहार—22 दोहों की इस संक्षिप्त रचना का विषय राधाकृष्ण का सखियों समेत यमुनाजल-विहार है |

मनसिंगार—इस रचना की सीमा 'दोहा कहि सिंगार मनि साठ सु चौंतिस आठ' कह कर कवि द्वारा निर्धारित की गई है | जिसके अनुसार इसमें 102 दोहे होना चाहिये परंतु वस्तुतः 92 दोहे ही उपलब्ध हैं | इस दृष्टि चौंतिस के स्थान पर 'चौबिस' पाठ की संभावना अधिक प्रतीत होती है | यही नहीं दोहे के अतिरिक्त अरिल्ल छंद भी इसमें प्रयुक्त हैं जिसकी कवि ने दोहों में ही गणना कर ली है | वर्ण्य वस्तु में राधाकृष्ण को नायक नयिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा उनके श्रृंगार एवं नखशिख का प्रचुर वर्णन है |

हितसिंगार—निकुञ्ज-विलास, शतरंज खेल,नखशिख तथा कोककला का वर्णन कवि ने इस रचना के 'अस्सी दोइ दोहा कवित' में प्रस्तुत किया है |

मंडलसभासिंगार—ध्रुवदास की यह रचना अन्य रचनाओं की अपेक्षा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर राधा की अगणित सखियों के नाम गिनाने का प्रयास किया है | मंडलाकार कुञ्जों की पंक्ति में बने चौसठ द्वारों वाले सभा-मंडप के मध्य स्थित युगल रूप का विशद वर्णन किया गया है | प्रत्येक कुञ्ज का भिन्न नाम है और उसका भिन्न प्रयोजन | इन सबमें विहार करने के उपरांत समस्त सखी-समूह के साथ राधाकृष्ण का रास होता है तदुपरांत जलक्रीड़ा | इसका रचना-काल सं.1681 दिया हुआ है और इसमें दोहा,सवैया,कवित्त आदि कुल 221 छंद हैं |

वृन्दावन सत—रचना का विषय शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह रचना सं.1686 में पूर्ण हुई |(वाणी वल्लभ रसिक जी की, पृ.1,भूमिका)| 'यह प्रबंध पूरन भयो' लिख कर कवि इसे प्रबंध कहना चाहता है परंतु

122 दोहों की इस रचना में वस्तुतः प्रबंधात्मकता का अभाव है | केवल वृन्दावन के लता कुञ्जों तथा उसकी महिमा का वर्णन किया गया है |

भजनसत—भजनसत में ध्रुवदास ने भक्ति के स्वरूप की व्याख्या,विषयों की निंदा,ज्ञान के पंथ का तिरस्कार तथा युगलरूप के प्रेम की चर्चा की है | वस्तु की दृष्टि से अन्य रचनाओं से पृथक होने के कारण इसका स्वतंत्र महत्व है | दोहों की संख्या 113 है |

सिंगारसत—भजनसत की तरह यह भी महत्वपूर्ण रचना है यद्यपि इसका महत्व दूसरी दिशा में है | रचना के स्वरूप को स्पष्टतया व्यक्त करने के लिये कवि के शब्द ही उद्धृत कर देना उपयुक्त होगा :

बांधी ध्रुव गुन श्रृंखला प्रथम चालीस रु तीन |

दुतिया चालीसरु तीसरी दूवे पर चालीस कीन ||3||

प्रथम श्रृंखला मांहि कछु कह्यो लाडिली रूप |

निरखिलाल सखि रहे छवि सो छवि अतिहि अनूप ||4||

दुतिय श्रृंखला सुनतही श्रवननि अति सुख होइ |

प्रेम रतन गुन रूप सों मानों राखे गोइ ||5||

अब सुनि तीजी श्रृंखला रति विलास आनन्द |

तिहि रसमादक मत रहें श्री वृन्दावन चन्द ||97||

भये कवित सिंगार के इकसत अरु पच्चीस |

दोहनि मिलि सब ठीक ही इकसत दस चालीस ||150||

इस प्रकार इसका निर्माण विशेष रूप से कवित सवैयों में हुआ है | विषय को दृष्टि से विशेष नवीनता नहीं है |

रंगविनोद—'दोहा रंगविनोद के रचि कीन्हें चालीस' के अंतर्गत ध्रुवदास ने अपनी धारणा के अनुसार नवरस, ज्योनार तथा राधा-कृष्ण-विहार का वर्णन किया है |

आनन्दास विनोद—इस रचना में नायिका-भेद के साथ स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के 'मदनरस' का चित्रण है | छंद-संख्या 57 है जिसमें दोनों के अतिरिक्त 3 कवित्त भी सम्मिलित हैं |

रंगहुलास—52 दोहों की इस कृति का विषय वही नखशिख, वनविहार तथा रति-वर्णन है | आदि-अंतहीन इस रचना का नाम पुष्पिका से ही ज्ञात होता है |

ख्यालहुलास—यह प्रयागवाली 'ब्यालीसलीला' की हस्तप्रति की अंतिम 'लीला' है और काँकरौली वाली प्रति में अप्राप्य है | इसकी रचना किसी निश्चित क्रम के अनुसार नहीं हुई है | इसे कवि 'दोहा ख्याल हुलास के तहाँ प्रबंध कछु नाहिं | आगे पीछे हैं भये जो आए उर मांहि |' लिखकर स्वीकार करता है | विषय की दृष्टि से इसमें युगलप्रीति, उपदेश, चेतावनी आदि की प्रधानता है | समस्त दोहों की संख्या 60 है |

भजनाष्टक—नाम से ही आकार प्रकार-स्पष्ट है | फलश्रुति के नवें दोहे में इस अष्टक को 'हृद् रोग' का नाशक कहा गया है क्योंकि वर्ण्यवस्तु के अनुसार पंचवाण के वाण फिर कर उसी को लगे हैं जिससे वह जर्जर होकर नतशीश हो चुका है |

आनंदाष्टक—यह भी भजनाष्टक की तरह ध्रुवदास की लघुतम रचना है | जिसमें वृन्दावनरस तथा राधाकृष्ण की प्रीति का बखान है | इसमें भी फलश्रुति के दोहे समेत 9 दोहे हैं | इसके पाठ का फल त्रिगुण अंधकार का नाश कहा गया है |

निर्तविलास—नृत्य का वतावरण उपस्थित करके कवि ने रचना के अंतर्गत विभिन्न गतियों में होने वाले राधा-रास का चित्रण कियाहै | दोहा चौपाई के साथ कुण्डलिया का भी प्रयोग है | सारी रचना 46 छंदों में समाप्त है |

प्रीतिचौंवनी—इस कृति के निर्माण का उद्देश्य 'वृन्दावन रसरीति' समझाने के निमित्त पाठक के हृदय में 'प्रीति' प्रस्फुटित करना है जिसके लिए प्रेम का सोदाहरण सैद्धांतिक निरूपण 54 दोहों में किया गया है | अंत के दो अतिरिक्त दोहों में फलश्रुति का कथन है |

मनसिक्षा—ध्रुवदास ने इस रचना के 64 दोहों में मन को नाना रूप से विषय-वासना की निंदा करते हुए वृन्दावनरस में रमण तथा राधा-वल्लभलाल के भजन करने का उपदेश दिया है |

जिवदिसा—'दिशा' से कदाचित यहाँ 'दशा' का तात्पर्य है | 39 दोहा चौपाई कवित्त में कवि ने कृष्ण-भक्ति तथा नामस्मरण की महिमा का गान किया है और योग तथा मोक्ष को अनावश्यक ठहराया है | यह रचना प्रयागवाली प्रति में ही है |

जुगलध्यान—जुगलध्यान काँकरौली की प्रति में अनुपलब्ध है | जीवदिसा की तरह यह भी प्रयाग की हस्तप्रति में ही प्राप्त होती है | इसमें राधाकृष्ण की युगल मूर्ति का रूप-वर्णन है | मेंहदी, आभूषण, नखशिख तहा श्रृंगार आदि विषयों पर 'अष्टदस दोहा' 'वरने' गए हैं |

भजन कुण्डली—इस रचना में 12 दोहे तथा 10 कुण्डलियाँ संकलित हैं | सारी कृति में प्रेमभक्ति का महत्व, वृन्दावन की प्रशंसा और युगलरूप का यश वर्णित है | प्रेमभक्ति के आगे नवधाभक्ति को भी अरुचिकर माना गया है |

इस शती में इस सम्प्रदाय के दो प्रमुख कवि उपलब्ध होते है |

1. वल्लभ रसिक
2. माधवदास

गौड़ीय सम्प्रदाय

वल्लभरसिक षडगोस्वामियों में से गोस्वामी रघुनाथ भट्ट के शिष्य गदाधर भट्ट के पुत्र थे |(वाणी वल्लभ रसिक जी की,पृ 2, भूमिका) गदाधर भट्ट का समय नाभाजी के प्रमाण से 16वीं शती के अंतर्गत आ जाता है |

माधवदास इस सम्प्रदाय में 'माधुरी जी' के नाम से विख्यात हैं | उनके वास्तविक नाम का ज्ञान विद्या-विभाग काँकरौली में उपलब्ध उनकी 'माधुरियों' की हस्तप्रति (बंध सं.74) से होता है | इनकी पुष्पिकाओं में

'श्री माधवदास विरचिता' अभिन्न रूप से प्राप्त होता है | वंशीवट माधुरी में 'माधवदास कपुर श्री वृन्दावनवासी रचित' दिया है जिससे ज्ञात होता है कि यह जाति के कपूर खत्री थे |

आगे इन दोनों कवियों की रचनाओं का परिचय दिया जाता है |

वल्लभरसिक की वाणी—वल्लभरसिक का संग्रहित-काव्य बाबा कृष्णदास द्वारा 'वाणी वल्लभरसिक जी की' के नाम से प्रकाशित किया जा चुका है | इसकी भूमिका में इसे 'पद संग्रह' कहा गया है |(श्री माधुरी वाणी पृ.4,भूमिका) परंतु वस्तुतः यह एक काव्य संग्रह है क्योंकि पदों के अतिरिक्त इसमें कई प्रबंधात्मक ऐसे अंश भी उपलब्ध होते हैं जो पदों से भिन्न शैली में लिखित हैं | इन्हें पदों के अंतर्गत परिगणित कर लेना उचित नहीं | ऐसी छोटी- छोटी रचनाओं का शीर्षक सहित संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है :

सांझी रागगोरी—218 पंक्तियों की इस महत्वपूर्ण रचना में ललित विशाखादि सखियों से सेवित राधाकृष्ण के महल-निवास, भोग-विलास, नखशिख, कुसुम-श्रृंगार, नृत्य-गान तथा रति-रमण का विशेष रूप से वर्णन किया गया है |

होरी खेल—इस रचना के 59 दोहों में कवि ने साजबाज से होली का वर्णन किया है | राधाकृष्ण आपस में तथा उनकी 'जोरी' के साथ सखियाँ फाग खेलती हैं |

उक्त दोनों रचनाओं के अतिरिक्त निम्नांकित कई रचनाएँ मांझ शीर्षक से दी गई है जिनका विषय नाम से विदित हो जाता है |

1. रास की मांझ
2. दिवारी का मांझ
3. गुलाबकुञ्ज की मांझ
4. जलक्रीड़ा की मांझ
5. वर्षा की मांझ
6. वर्षा के बंगला पर की मांझ
7. सदां की मांझ

सातवीं रचना इन सब में बड़ी है और भाषा पंजाबी मिश्रित ब्रजभाषा है |

इनके बाद 67 दोहे एक स्थल पर संकलित हैं जिनके विषय विभिन्न हैं | इन्हीं के साथ 22 कवित्त सवैये भी हैं जिनमें युगल मूर्ति की विविध श्रृंगार चेष्टाओं का वर्णन है |

'सुरतोल्लास' नाम से 27 दोहा चौपाइयों की कुञ्ज-रति विषयक रचना स्वतंत्र कृति जैसी लगती है | इसमें आदि अंत तथा नाम का संकेत नहीं मिलता |

'बारह बाट अठारह पैंडे' में अवश्य कवि ने नाम का उल्लेख स्पष्टया कर दिया है | यथा—

जब अँखियन अँखियाँ लखितौं तौ बरह बाट अठारह पैंडे |
पैरी करी एक सै आठ | वल्लभरसिकन को जब पाठे ||108||

शीर्षक से रचना का विषय स्पष्ट नहीं होता | इस रचना में नेत्रों की विशेष महत्ता वर्णित है |

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त 50 पद प्राप्त होते हैं जिनमें लगभग इन्हीं रचनाओं के विषयों का पुनरावर्तन है |

माधवदास की रचनाएँ— इनके द्वारा विरचित 'ग्रंथ समूह' में निम्नलिखित आठ रचनाएँ मिलती हैं |(श्री माधुरी वाणी,पृ.5,भूमिका)

1. उत्कण्ठामाधुरी
2. वंशीवटमाधुरी
3. केलिमाधुरी
4. वृन्दावन विहारमाधुरी
5. दानमाधुरी
6. मानमाधुरी
7. होरीमाधुरी
8. प्रिया जू की बधाई

ये सभी 'श्री माधुरी वाणी' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं | काँकरौली में जो प्रति है उसमें तीसरी,सातवीं और आठवीं रचना उपलब्ध नहीं है | 'होरी माधुरी' नाम कल्पित प्रतीत होता है क्योंकि होली विषयक इन छे पदों के अंतःसाक्ष्य से यह प्रमाणित नहीं होता | सम्भवतया सम्पादक ने अन्य रचनाओं के सादृश्य के आधार पर इसकी कल्पना कर ली हो | 'प्रिया जू की बधाई' में राधा जन्म से सम्बंधित केवल दो पद प्राप्त होते हैं अतएव इसे भी स्वतंत्र रचना मानना भ्रामक है | पहली छे रचनाओं का परिचय क्रम से संक्षेप में आगे दिया जाता है इन सभी रचनाओं के आदि में कृष्ण रूप चैतन्य महाप्रभु की वंदना की गई है |

उत्कंठामाधुरी— आरम्भिक अंश में 'मिलन उत्कंठा' तथा विरह-वेदना पर विशेष बल देते हुए इसमें राधाकृष्ण की कुञ्जकेलि, होरी-खेलि,तथा उनके रूप-श्रृंगार का वर्णन किया गया है |

वंशीवटमाधुरी— इस 'माधुरी' के अंतर्गत वृन्दावनकी निकुञ्ज-शोभा, विविध वर्ण की वनस्पतियाँ, जलक्रीड़ा, भोजन, सेजसुख, नौकाविहार तथा रास आदि का विशद आलेखन है | रचना-काल काँकरौली की प्रति के अनुसार सं.1699 है |

केलिमाधुरी— कवि ने इसका रचनकाल सं.1687 अंतिम दोहे

संवत सोलह सै असी सात अधिक हियधार |

केलिमाधुरी छवि लिखी श्रावण वदि बुधवार ||129||

में लिख दिया है | रचना का विषय राधाकृष्ण का केलि-विलास है |

वृन्दावनमाधुरी— इस रचना में वृन्दावन के विशाल कुञ्ज, उनकी प्राकृतिक शोभा तथा उनमें राधाकृष्ण की कामक्रीड़ा का चित्रण है | काँकरौली की प्रति में इसका निर्माण-काल सं.1699 दिया हुआ है |

दानमाधुरी— इसमें कृष्ण राधा ललितादि सखियों से दान माँगते हैं | वदविवाद की चरम परिणति 'दम्पति सुख' में होती है |

मानमाधुरी— इस रचना का विषय कृष्ण के शरीर में आत्मप्रतिबिम्ब देखकर राधा का मान करना, तदुपरांत ललिता की सहायता से उसका परिहार होना है | इन सारी रचनाओं की छंद-संख्या का परिचय श्री माधुरी वाणी की भूमिका में दिया हुआ है जो यहाँ उद्धृत किया जाता है | (निम्बार्कमाधुरी पृ.93,129)

उत्कंठा माधुरी में 3 कवित्त 203 दोहा | वंशीवटमाधुरी में 36 कवित्त 5 सवैया 14 रोला 32 चौपाई 1 सोरठा 220 दोहा | वृन्दावन माधुरी में 12 कवित्त 2 सवैया 31 चौपई 3 सोरठा 45 दोहा | केलिमाधुरी में 6 कवित्त 92 चौपाई 1 छंद 1 सवैया 11 सोरठा 1 छप्पै 15 दोहा 6 रोला | दानमाधुरी में 17 कवित्त 3 सोरठा 16 दोहा | मानमाधुरी में 16 कवित्त 15 सवैया 6 सोरठा 9 दोहा |

निम्बार्क सम्प्रदाय

निश्चित रूप से इस शती में निम्बार्क सम्प्रदाय के दो कवि 'रूपरसिक देव जी' तथा 'तत्ववेत्ता जी' ही प्राप्त होते हैं | ये दोनों ही 16वीं शती के प्रसंग में उल्लिखित हरिव्यासदेव के शिष्य थे |(वही,पृ.143) इस दृष्टि से इनका अस्तित्व 17वीं शती में असंदिग्ध है | इनके अतिरिक्त वृन्दावंदेव जी तथा गोविंददेव जी के नाम भी विचारणीय हैं | एक ओर वृन्दावनदेव का अस्तित्व सं.1756 में माना गया है और उन्हें हरिव्यासदेव के शिष्य परशुरामदेव का प्रशिष्य कहा गया है |(वही,पृ.166) दूसरी ओर उनके शिष्य गोविंददेव के लिये लिखा गया है कि 'इनका कविता काल संवत्1670 के लगभग समझना चाहिये |'(वही,पृ.99) यह स्थिति स्पष्टतया असम्भव है | वास्तविक बात यह है कि इन दोनों में से किसी का भी समय निश्चित नहीं है अतएव ऐसी अनिश्चित दशा में से इनको 17वीं शती के अंतर्गत न स्वीकर करना ही समीचीन प्रतीत होता है | नीचे पहले दोनों कवियों की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है |

रूपरसिक देव जी की रचनाएँ— इनकी तीन रचनाओं का परिचय मिलता है |

1. वृहदोत्सव मणिमाल
2. हरिव्यासयशामृत
3. नित्यविहार पदावली

इनमें से पहली और तीसरी अभी अप्रकाशित हैं | निम्बार्कमाधुरी में केवल आरम्भ की दो रचनाओं से उद्धरण दिये गये हैं | उसमें नित्यविहार पदावली का कोई उद्धरण नहीं मिलता |

वृहदोत्सव मणिमाल— इसमें कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतारों का भी समावेश है किन्तु राधाकृष्ण के जन्म,मंगल बधाई, से लेकर नित्य बसन्त, होरी, झूला प्रभृति समस्त उत्सव व्यवस्थित एवं विस्तृत रूप से वर्णित हैं |इस विशाल रचना की पद संख्या 1994 है| (निम्बार्कमाधुरी,पृ.340-341)

हरिव्यासयशमृत—इसका प्रधान विषय स्वगुरु-महिमा है परंतु कृष्ण-भक्ति के स्वरूप पर भी पर्याप्त पद,दोहे तथा चौपाइयाँ मिलती हैं |

नित्यविहार पदावली— यह केवल 120पदों की संग्रहीत एक छोटी वाणी है| इसमें केवल शुद्ध नित्यविहर-रस के पद वर्णित हैं |गोकुल-लीला का सर्वथा अभाव है |(वही,पृ.94,100)

तत्ववेता जी की वाणी— इनकी कोई प्रबंधात्मक रचना तो उपलब्ध नहीं होती किन्तु हस्तलिखित रूप में छप्पय, छंदों का एक संग्रह अजमेर में महंत श्री हरिशरण जी के पास अवश्य प्राप्त हुआ है |(वही,पृ.94) इसमें से 52 छप्पय निम्बार्क माधुरी में उद्धृत हैं | ये सभी एक प्रकार की शैली में रचित हैं | 'कृष्ण वसुदेव कुमारा' को विराट रूप में प्रस्तुत किया गया है यही इनकी मुख्य विशेषता है |

हरिदासी सम्प्रदाय

हरिदासी सम्प्रदाय की शिष्य-परम्परा को देखने से स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि 17वीं शती में इस सम्प्रदाय के तीन कवि सरसदेव जी, नरहरिदेव जी तथा रसिकदेव जी आते हैं |(वही,पृ.131) इनके अतिरिक्त विहरिनिदेव के शिष्य नागरीदासजी भी गणनीय हैं | इन चारों कवियों की वाणी टट्टी सम्प्रदाय के अष्टाचार्यों की वाणी में गिनी जाती है | काल-क्रम की दृष्टि से इनका स्थान सरसदेवजी(सं.1611—83) से भी पहले आता है क्योंकि इनका समय सं.1600 से 1670 माना जाता है |(निम्बार्कमाधुरी,पृ. 269) एक प्रकार से इनका काव्यकाल 16वीं तथा 17वीं शती ईसवी का संधिकाल है | नरहरिदेव के शिष्य रसिकदेव भी इसी शती के अंतर्गत आ जाते हैं |उनका निकुञ्ज-प्रातिकाल सं.1758 दिया हुआ है |(वही,पृ.316) इसी क्रम से नीचे इन कवियों की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है |

नागरीदास की वाणी— 'इनकी सौ पदों की वाणी प्राप्त है'|((वही,पृ.269) यह अप्रकाशित है | इसमें से 50 पद तथा सवैये निम्बार्कमाधुरी में उद्धृत हैं | ये पद मुख्यतया राधाकृष्ण के वनविहार, जलविहार तथा हिंडोला आदि विषयों से सम्बद्ध है | 'नवल चौबोला', 'सरस चौबला' जैसे पदों में एक विशेषण का निर्वाह आदि से अंत तक किया गया है और सारी वस्तु उसी के अनुसार निरूपित है |

सरसदेव की वाणी— इनकी वाणी के 51 कवित्त तथा पद निम्बार्कमाधुरी में प्रकाशित रूप में प्राप्त होते हैं | कवित्तों का विषय उपदेश तथा पदों का युगल रूप राधकृष्ण की विविध श्रृंगार-क्रिड़ाएँ हैं | कुञ्जविलास,जलविहार तथा झूला आदि विषयों के भी पद हैं |

नरहरिदेव की वाणी— इनके फुटकर पद ही प्राप्त होते हैं जिनमें से 7 पद निम्बार्कमाधुरी में प्रकाशित हैं | इनका विषय राधाकृष्ण का श्रृंगार तथा सुरताविहार आदि है |

पीताम्बरदेव की रचनाएँ— इनके द्वारा निर्मित रचनाओं का नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया गया गया है |(वही,पृ.299)

1. रस के पद
2. सिंगार के पद
3. केलिमाल की टीका
4. सिद्धांत की साखी
5. सिंगार की साखी

इनमें स्पष्टतया पदों और दोहों की प्रधानता है | विषय की दृष्टि से पदों में गुरुवंदना, राधाकृष्ण-प्रीति-वर्णन तथा श्रृंगार एवं विहार का चित्रण है | गौड़ीय कवि वल्लभरसिक की शैली में लिखित एक 64 पंक्तियों की 'मांझ' भी मिलती है जिसमें पंजाबी का पुट है | इसका विषय भी श्रंगार,नखशिख तथा विहार-वर्णन है |

रसिकदेव की रचनाएँ— इनके द्वारा विरचित 11 ग्रंथों का उल्लेख मिलताहै |(निम्बार्कमाधुरी,पृ.316)

1. भक्त सिद्धांतमणि
2. पूजाविलास
3. सिद्धांत के पद
4. रस के पद
5. रस सिद्धांत के साखी
6. कुञ्जकौतुक
7. रससार
8. गुरुमंगल यश
9. बाललीला
10. ध्यानलीला
11. वाराहसंहिता

इन रचनाओं के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है | निम्बार्माधुरी में रसिक देव के 10 पद,4 साखी तथा 'युगलध्यान' के 83 दोहे उद्धृत हैं | 'वाराहसंहिता' नामक रचना प्रस्तुत विषय की सीमा से बाहर प्रतीत होती है |

स्वतंत्र वर्ग के कवि

ऐसे कवियों में इस शती में सेनापति,बिहारी,मतिराम तथा देव के नाम प्रमुख हैं | इनमें से बिहारी और देव को निश्चित रूप से सम्प्रदाय मुक्त-कवि नहीं कहा जा सकता |निम्बार्कमाधुरी में दोनों को निम्बार्क सम्प्रदाय के अंतर्गत माना गया है | (वही,पृ.479,500) सेनापति (जन्म सं.1646) को टट्टी सम्प्रदाय का वैष्णव कहा गया है | (वही,पृ. 577) यों सेनापति रामोपासक प्रतीत होते हैं जिसके प्रमाण उनकी रचना में ही उपलब्ध हो जाते हैं | ब्रजमाधुरीसार के अनुसार बिहारी और देव दोनों ही राधावल्लभीय अथवा 'हितकुल' के कवि ठहरते हैं |(ब्रजमाधुरीसार,पृ.445) डॉ. नगेंद्र देव के गुरु को विश्वसनीय रूप से राधावल्लभीय न मानकर उसकी सम्भावना मात्र स्वीकार करते हैं |(देव और उनकी कविता,पृ.27) ऐसी अनिश्चित स्थिति में इन कवियों की रचनाओं में साम्प्रदायिक तत्व के अभाव तथा रीति-परम्परा की प्रधानता के कारण इनको स्वतंत्र वर्ग में रखना ही अधिक उचित प्रतीत होता है |

सेनापति की रचना :कवित्तरत्नाकर— सेनापति की दो रचनाएँ 'कवित्तरत्नाकर' तथा 'काव्यकल्पद्रुम' कही जाती हैं जिनमें से दूसरी अप्राप्य है |(कवित्तरत्नाकर,भूमिका,पृ.6) कवित्तरत्नाकर की चतुर्थ तरंग प्रस्तुत विषय की सीमा के अंतर्गत नहीं आती | यह कृति प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है |

बिहारी की रचना : सतसई— सतसई के प्रधान आराध्य राधाकृष्ण हैं, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु उसमें अनेक दोहे ऐसे भी हैं जिनका कृष्ण से कोई सम्बंध नहीं है | बिहारी सतसई काव्य-कला की दृष्टि से ब्रजभाषा की अमूल्य निधि है |

मतिराम की रचनाएँ : रसराज, ललितललाम, सतसई— मतिराम के ग्रंथों में 'रसराज' और 'ललितललाम' प्रमुख हैं | रसराज में श्रृंगार रस को 'रसराज' मानकर शास्त्रीय पद्धति से रस एवं नायिका-भेद का निरूपण है

| ललितललाम अलंकार-ग्रंथ है | दोनों रचनाओं के अधिकतर उदाहरण कृष्ण-काव्य के अंतर्गत आते हैं | सतसई आद्योपंत दोहों में रची गयी एक श्रृंगारिक रचना है |

देव की रचनाएँ : भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास— देव के काव्य-काल का प्रारम्भिक अंश ही इस शती में आता है क्योंकि उनका जन्म सं.1730 में हुआ था | फिर भी 17वीं शती ई. के अंत(सं. 1757) के पहले उनकी तीन रचनाएँ भावविलास, अष्टयाम तथा भवानीविलास निर्मित हो चुकी थीं |(देव और उनकी कविता,पृ.36:43) अतएव प्रस्तुत अध्ययन में उनकी अन्य अनेक रचनाओं को छोड़कर केवल इन्हीं तीन को स्वीकर किया गया है | यह रचनाएँ पूर्णतया रीति-परम्परा के अनुकूल रची गयी हैं | उदाहरण प्रायः कृष्ण से सम्बद्ध हैं |

वर्ण्य-वस्तु

कृष्ण काव्य में ब्रजलीला

कृष्ण-लीलाएँ— लीलास्थल की दृष्टि से कृष्ण-चरित को त्रिधा विभाजित किया जाता है |

ब्रज-लीला

1. मथुरा-लीला
2. द्वारका-लीला

ब्रज-लीला पुनः दो भागों में विभाजित की जा सकती है जिनमें लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकार का चरित समाविष्ट है |

1. गोकुल-लीला		2. वृन्दावन-लीला	
|		|	
अलौकिक	लौकिक	अलौकिक	लौकिक

आगे लीलाओं के इसी विभाजन के अनुसार समस्त वर्ण्य-वस्तु का निरुपण किया गया है |

ब्रज-लीला

साधारणतया इन कृष्ण-लीलाओं का वर्णन भागवत के दशमस्कंध पर आधारित मौलिक तथा अनुदित रचनाओं में प्राप्त होता है|

पुराणोल्लिखित लीलाओं में से अनेक के वर्णन में कवियों ने पर्याप्त स्वातंत्रता तथा मौलिकता का प्रदर्शन किया है, कतिपय कवियों ने ब्रज-लीला के अंतर्गत कई नितांत नवीन प्रसंगों की उद्भावना की है, ऐसे कवियों में सूरदास का नाम सर्वोपरि है |

अलौकिक गोकुल लीलाएँ

कृष्ण-जन्म— ब्रजभाषा में अष्टछाप के समस्त कवियों द्वारा जन्म तथा बधाई के पद रचे गए | अन्य सम्प्रदायों के कुछ कवियों द्वारा भी बधाई के पदों का निर्माण हुआ | अष्टछाप के कवियों ने जन्मोत्सव के समय ढाढ़ी ढाढ़िन,के पद रचे हैं | गोकुल में कृष्ण-जन्म के समय उत्सव, उत्साह, बधाई आदि का जितना विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया उतना किसी भी कवि ने नहीं किया |

कृष्ण-जन्म से पूर्व पृथ्वी की प्रार्थना से द्रवित हो कर 'हरि' ने भूभार उतारने के निमित्त अवतार धारण करने का वचन दिया जिसका वर्णन अनेक कवियों ने किया है | भागवत में **'यर्ह्योवाजनजन्मर्क्ष'** तथा **'निशीथे'** के अतिरिक्त कृष्ण-जन्म की तिथि मास दिवस का कोई निर्देश नहीं किया है किन्तु लगभग सभी कवियों ने कदाचित ब्रह्मवैवर्त का आधार लेकर स्पष्टया इसका निर्देश किया है | ब्रह्मवैवर्त में जन्म के समय **'अर्धरात्रेसमुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ'** (कृ.पू.7:64) मास का उल्लेख व्रत प्रसंग में किया गया है पर वार वहाँ भी नहीं मिलता | **फलं भाद्रपदेऽष्टम्यां भवेत्कोटिगुणं द्विजः** (वही,8:6)| इस विषय में गुजराती तथा ब्रजभाषा में दी गई जन्म-तिथियों में मास और वार का अन्तर महत्वपूर्ण है | (1. क. सूरदास: डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा पृ.263,प्रथम संस्करण |

ख. गोकुले मथुरायां च द्वारावत्यां ततः क्रमात् |

कृष्ण लीला त्रिधा प्रोक्ता तत्तद्भेदैरनेकधा ||

—श्री कृष्ण लीला संग्रह : श्रीधर कारिका)

नरसी ने श्रावण मास, मंगलवार तथा लक्ष्मीदास और प्रेमानन्द ने 'श्रावण वदनी अष्टमी' दिन बुधवार दिया है | सूर ने केवल 'भादों की रात' और नन्ददास ने कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा रोहिणी नक्षत्र का भी उल्लेख किया है | (सूरदास : सू0 सा, पृ0126,130, नन्ददास : नंद) पृ0 209)

कारागृह में कृष्णजन्म के समय की परिस्थिति के चित्रण के बाद कृष्ण को चतुर्भुज रूप में चित्रित किया है जो भागवत के चतुर्भुज के अनुकूल है | किसी ने भी ब्रह्मवैवर्त के 'द्विभुजं मुरलिहस्तम्' का अनुसरण नहीं किया |

किन्तु कृष्ण को गोकुल ले जाते हुए वसुदेव को जहाँ यमुना मार्ग देती है वहाँ कई कवियों के वर्णन में भास के बालचरित की छाया प्रतीत होती है | बहम्वैवर्त में उसका वर्णन ही नहीं है | भागवत में यमुना के लिए 'मार्ग ददौ' मात्र लिखा है किन्तु बालचरित में 'द्विधा छिन्नं जलम्' मिलता है | भास की इस कल्पना का कारण रंगमंच की सुविधा कहा जा सकता है | नन्ददास ने बालचरित जैसा ही वर्णन किया है, सूरदास में इसका वर्णन ही नहीं मिलता | (नंददास: नंद0 पृ0213)

पूतना-वध

भागवत में पूतना के लिए 'कंसेन प्रतिहता घोरा पूतना बालघातिनी' कहा है और वध के उपरान्त उसके दाह-संस्कार का भी वर्णन है |(भा0 10:6:2) ब्रह्मवैवर्त में उसे कंस की भगिनी तथा हरिवंश में धात्री बताया गया है | (क.ब्र0 वै0,अ0 10, ख. हरिवंश: अ0 63) स्तन में विष लगाने तथा सुन्दरी स्त्री का वेश धारण करने का वर्णन सब में प्राप्त होता है | कवियों ने पूतना को 'बकी' के रूप में ग्रहण किया है जिसका आधार सम्भवतः भागवत का पूतना के लिए प्रयुक्त 'खेचरि' शब्द हो सकता है | सूर द्वारा भागवतोक्त पूतना के दानवी रूप और दाह-संस्कार संस्कार्का वर्णन नहीं किया गया है | ब्रजभाषा के कवियों द्वारा पूतना का कंस की भगिनी एवं कृष्ण की मासी के रूप में भी चित्रण नहीं हुआ है |

सिद्धर ब्राह्मण

सूरसागर में पूतना-वध के अनन्तर कंस द्वारा कृष्ण-वध के लिए भेजे हुए 'सिद्धर बांभन' का प्रसंग वर्णित है | इसका भागवत में अभाव है | किसी परवर्ती कवि द्वारा भी इसका अनुवर्णन नहीं किया गया |

सूरसागर के सिद्धर की कथा पूतना की कथा से पर्याप्त साम्य रखती है | पूतना की तरह ही वह भी नन्दभवन में कृष्ण को मारने पहुँचता है और जब यशोदा यमुना जाती है तो अपना मनोरथ पूर्ण करना चाहता है | भेद यह है कि कृष्ण पूतना की तरह सिद्धर का वध नहीं करते वरन् उसे ब्राह्मण समझ कर केवल भूमि पर गिराने के बाद उसकी जीभ मरोड़ देते हैं | अपना भोलापन दिखाने के लिए मटकियाँ फोड़ कर कुछ दधिमाखन उसके मुँह में लिपटा देते हैं | तब तक यशोदा पानी लेकर आ जाती है और ब्राह्मण को घर से बाहर कर देती है |(सू0सा0,पृ.135) सूरसागर में जिस स्थल पर यह पद है वहाँ पूर्वापर प्रसंग देखते हुए यह अप्रासंगिक है क्योंकि पदान्त के बाद पुनः 'सुन्यो कंस पूतना मारी' लिखकर पूतना के प्रसंग को ही उठा लिया जाता है | सिद्धर की असफलता का न तो कोई समाचार कंस तक पहुँचता है और न उसकी किसी प्रतिक्रिया का ही चित्रण मिलता है | सम्भव है इस कथा का मूल हरिवंश में पूतना वध के बाद वर्णित एक ब्राह्मण द्वारा रक्षा-कवच देने की कथा में निहित हो |

कागासुर-वध— 'सिद्धर बाभंन' की तरह कागासुर की कथा भी भागवत में नहीं मिलती किन्तु पद्मपुराण में काकरूपधारी एक राक्षस के द्वारा कृष्ण की हथेली पर प्रहार किये जाने का वर्णन है जिसका अनुमोदन ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण से भी होता है | (पद्म पु0, 272,82,85; ब्रह्म0 पु0,182,22,28; विष्णु पु0,7,1,7) सूरसागर में इसका वर्णन है किन्तु नन्ददास के दशमस्कंध में कागासुर की घटना का कोई संकेत नहीं है | सूरदास ने कागासुर की कथा सांगोपांग वर्णन किया है | उन्होंने कागा को भी अन्य असुरों की तरह कंस प्रेरित बताया है |

कागासुर को निकट बुलाओ तासों कहि सब वचन सुनायो |

—सू0 सा0 पृ0165

शकट-भंजन अथवा शकटासुर-वध— यह प्रसंग भागवत के दशमस्कंध के सातवें अध्याय में उपलब्ध होता है और पूतना-वध के ठीक बाद में वर्णित है | और वहाँ न इसमें असुर की कल्पना का मिश्रण है और न इससे कंस का कोई सम्बंध ही ज्ञात होता है | भास ने अवश्य शकट को 'दाणव' के रूप में प्रस्तुत किया है |

इस प्रकार कवियों में भी दो वर्ग हो गये हैं | भागवतानुयायी भीम, भालण तथा केशवदास नामक गुजराती कवियों ने शकट में असुरत्व नहीं देखा | (भीम : हरि0 षी0, पृ 148; भालण : दशमस्कंध पृ0 29; केशवदास : श्रीकृ0 ली0 का0,पृ 33,34) इसके प्रतिकूल गुजराती के नरसी, प्रेमानन्द और परमानन्द तथा ब्रजभाषा के सूरदास और नन्ददास ने असुरत्व की स्थापना की है | (सूरदास : सू0सा0,पृ0136, नन्ददास : नंद0,पृ0225,226; परमानंद : पृ0 122,वर्ग 6) सूरदास ने शकटासुर के मुख से कंस के सामने कृष्ण का नाश कर आने अथवा जीवित लाने की करबद्ध याचना कराई है जिसे सुनकर कंस उसे पीड़ा देता है—

दोउ कर जोरि भयो तब ठाढ़ो प्रभु आयसु मैं पाऊँ |

ह्यां ते जाइ तुरत ही मारों कहौ तो जीवित ल्याऊँ |

यह सुनि नृपति हर्ष मन कीनो तुरतहिं बीरा दीनो |

—सू0सा0,पृ0136

तदुपरांत सूर ने एक ही पद में शकट-संहार का वर्णन समाप्त कर दिया | सूरदास ने शकट के प्रसंग में तो नहीं किंतु तृणावर्त-वध के उपरांत 'हालरू' गाने का उल्लेख किया है :

जन बलि जाइ हालरू हालरो गोपाल |

—सू0सा0,पृ0139

तृणावर्त-वध

—तृणावर्त की स्थिति शकटासुर से भिन्न है | भागवत में ही इसके दैत्य होने तथा कंस द्वारा भेजे जाने का स्पष्ट उल्लेख है;

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः

—10:7:20

भागवत के अनुसार एक दिन अचानक गोद में कृष्ण का पर्वत तुल्य असह्य भर अनुभव करके यशोदा ने उन्हें पृथ्वी पर छोड़ दिया और गृह काज में लग गईं | समस्त ब्रज को त्रस्त करता हुआ तृणावर्त आया और कृष्ण को उठा ले गया किन्तु कृष्ण का भार न वहन करने के कारण और उनके द्वारा कंठ ग्रसे जाने से उसकी मृत्यु हो गई | ब्रज में एक शिला पर उसकी देह गिरी और उसके सारे अवयव विशीर्ण हो गए | गोपियों ने कृष्ण को राक्षस की छाती से उठाकर यशोदा को दिया जिसे देखकर नंदादि सभी प्रसन्न हुए |

इस मूल कथा-भाग में से कवियों द्वारा बहुत से अंश स्वीकृत किये गए और बहुत से नहीं भी | सूर और नंददास ने भार-वृद्धि का वर्णन किया है किन्तु भारी पड़ने का जो कारण दोनों ने दिया है वह एक दूसरे से भिन्न है, भागवत में इसका कोई कारण नहीं दिया है |(सूरदास:सू0 सा0,पृ0138; नंद0, पृ0226) | नंददास के अनुसार कृष्ण इसलिए भार-वृद्धि करते हैं कि वे यशोदा को तृणावर्त के आघात से दूर रखना चाहते हैं किन्तु सूर ने इसे स्पष्ट नहीं किया है | नंददास ने तृणावर्त के कंस द्वारा भेजे जाने का कथन नहीं किया है किन्तु सूर ने किया है |(सूरदास:सू0 सा0,पृ0138) कृष्ण द्वारा तृणावर्त के संहार का वर्णन सभी कवियों ने प्रायः भागवत के अनुसार किया है | सूरदास ने शकटासुर-वध तथा तृणावर्त-वध के बीच बाल-छवि वर्णन के कतिपय पद लिखे हैं |

कृष्ण का मृत्तिका-भक्षण एवं यशोदा द्वारा विश्व-दर्शन

भागवत में मृत्तिका-भक्षण के प्रसंग में यशोदा द्वारा कृष्ण के मुख में विश्वदर्शन का वर्णन तो है ही किन्तु इससे पूर्व भी एक स्थल पर जम्हाई लेते समय इसका उल्लेख है—

प्रीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् |

मुखं लालयती राजन् जूम्भतो ददृशे इदम् ||35||

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा...||37||

—स्कंद 10,अ0 7

मृत्तिका-भक्षण के समय भागवतकार ने पुनः इसी वर्णन का कुछ विस्तृत रूप में किया है :

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः |

—अ0 8, श्लो0 37

शांर्गधरपद्धति में इस विषय का श्लोक है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल से ही मृत्तिका-भक्षण काव्य का स्वतंत्र विषय बन चुका था |

कृष्णे नाम्ब गतेन रतुमधुना मृद्भक्षिता स्वेच्छया,

सत्यं कृष्ण, क आह ह्येष, मुसली मिथ्याम्बपश्याननम्

व्यादेहीति विदारित च वदेन दृष्ट्वा समस्तं जगत्

माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायत् स वः केशवः ||

जम्हाई लेते समय के विश्व-दर्शन का वर्णन ब्रजभाषा में नंददास के दशम स्कंध में मिलता है |(नंददास : नंद0,पृ0228) सूरदास ने इसका यमलार्जुन के प्रसंग में उल्लेखमात्र किया है |(सूरदास: सू0सा0,पृ0182) नन्ददास ने आगे चल कर इससे नामकरण का प्रसंग सम्बद्ध कर दिया |(नंददास : नंद0,पृ0228) जृम्भा के स्थान पर मृत्तिका-भक्षण के प्रसंग में विश्व-दर्शन का विषय अधिक परम्परासिद्ध प्रतीत होता है क्योंकि ब्रजभाषा के अतिरिक्त गुजराती के अनेक कवियों ने भी इसे इसी रूप में प्रस्तुत किया है |

भागवतकार ने कृष्ण में मिट्टी खाने का वर्णन स्वतंत्रतापूर्वक न करके बलदेव आदि अन्य गोप बालकों द्वारा की गयी शिकायत से उसकी व्यंजना की है किन्तुसूर ने स्पष्टतया उसका चित्रण किया है |(सूरदास: सू0सा0,पृ0165) | भागवत के 'हितैषिणी' शब्द को चरितार्थ करते हुए नंददास ने यशोदा द्वारा कृष्ण के साथी बालकों की देखभाल करने का आदेश दिलवाया है | जिसका वर्णन स्वयं भागवत में नहीं है | (सूरदास: सू0सा0,पृ0166) इसके अतिरिक्त विश्व-दर्शन में भागवत के 'व्रज सहात्यानमवाप' को अत्यधिक स्पष्ट करके प्रस्तुत किया है जो सूरसागर में भी नहीं मिलता |

महराने के पांडे का भोग और नंद का देवार्चन

ब्रजभाषा में प्राप्त महराने के पांडे की कथा गुजराती में उपलब्ध नंद के देवार्चन के प्रंग में पर्याप्त साम्य है | पांडे की कथा का वर्णन एकमात्र सूर के काव्य में मिलता है और नंद के देवार्चन का केशवदास के श्रीकृष्णक्रीड़ाकाव्य तथा परमानंद के हरिरस में | सूरसागरमें पांडे की कथा से सम्बंधित पाँच पद मिलते हैं |(सूरदास: सू0सा0,पृ0164,165,पद 21—25) | एक प्रकार से सारी कथा प्रथम पद में ही पूर्ण हो जाती है | (सूरदास: सू0सा0,पृ0164 पद 21) | कथा का मुख्य आधार यह है कि कृष्ण अपना ध्यान किये जाने पर स्वतः प्रकट होकर भोग लगाने लगते हैं और इस प्रकार अपना अवतरी होना चरितार्थ करते हैं | गुजरात के उक्त कवियों द्वारा वर्णित नंद के देवार्चन का प्रसंग भी इसी आधार पर निर्मित है, उसका लक्ष्य भी कृष्ण का ईश्वरत्व-प्रदर्शन है |(केशवदास : श्रीक0ली0का0,पृ 40,41; परमानंद : हरिदास,फा0 सभा0 ह0प्र0 पृ 325)

पांडे की कथा में कृष्ण स्वयं अपने मुख से अपना भोग लगाने का आदेश ब्राह्मण को नहीं देते किंतु नंद के देवार्चन में वे स्पष्टतया अपनी पूजा कराने की आज्ञा देते हैं |

उलूखल बंधन और यमलार्जुन मोक्ष

भागवत में दी हुई यह कथा हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त तथा पद्मपुराण की कथा से कुछ और अधिक परिवर्धित है ! कवियों ने इस विषय में भागवत का ही अनुकरण किया है | सूर ने इसका दो बार वर्णन किया है | पहले वर्णन में कई स्थलों पर मौलिकता का प्रदर्शन मिलता है | पर दूसरा वर्णन अनुवादात्मक अधिक है |

सूरदास की मौलिकता— भागवत के अनुसार यशोदा द्वारा कृष्ण के उलूखल बंधन का कारण उनका घर में माखन चुराना है किन्तु सूरदास ने इससे भिन्न कारण दिये हैं | सबेरे एक ग्वालिन शिकायत करती है और दूसरी कृष्ण की बाँह पकड़ कर यशोदा के सामने लाती है तथा उलाहना देती है |(सूरदास: सू0सा0,पृ0176-177) सूर ने इसी के साथ भागवत के 'ययावुत्सिच्यमाने पयसि' का भी संकेत 'उफनत क्षीर जनिन करि व्याकुल, इहि विधि भुजा छुड़यो' लिखकर कर दिया है, परन्तु यहाँ कृष्ण बँधी हुई भुजा को छुड़ाते हैं और फिर बाँधे जाते हैं, इसके अनंतर अन्य ग्वालिनें यशोदा को कृष्ण के बाँधने पर फिर उलाहना देती हैं |

दूसरा कारण नितान्त नवीन है | कृष्ण ने किसी ग्वालिन के लड़के को मारा है और वह इसकी सूचना बलराम को देती है | इसके अनन्तर बलराम का यशोदा के पास आकर कृष्ण को बाँधने पर रोष प्रकट करना और अपने को स्थानांतरित करने की याचना करना आदि सारा का सारा प्रसंग मौलिक है |(सूरदास: सू0सा0,पृ0181,182)

उलूखल-बंधन ही कृष्ण के 'दामोदर' नाम के मूल में माना जाता है | सूर तथा अन्य कई कवियों ने इसका स्पष्ट निर्देश किया है |(सूरदास: सू0सा0,पृ0180) भागवत में दामोदर शब्द के द्वारा इसका संकेत मात्र कर दिया गया है | (भागवत : 10:10:26)

तद्दामोदरेणतरसोत्कलितांघ्रिबन्धौ

भास ने अवश्य इसका उल्लेख किया है—

'दामोदलोणाम होदु त्ति'

—बालचरित,अं 3

परन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि सूर ने इस सत्य से अवगत होते हुए भी कृष्ण के उदर-बंधन के स्थान पर कर-बंधनका वर्णन किया है | (सूरदास: सू0सा0,पृ0181,183,185)

कृष्ण द्वारा यक्षों को चतुर्भुज रूप में दर्शन देने की बात भी सूर की अपनी कल्पना प्रतीत होती है |

दोउ कर जोरि करत दोउ अस्तुति चारि भुजा तिन्है प्रकट दिखाई |

—सू0 सा0, पृ0 183

इसके अतिरिक्त बंधन के प्रसंग में भागवत में तो यशोदा 'स्वगेहदामानि' अर्थात अपने घर की रस्सियों का ही प्रयोग करती हैं किन्तु ब्रजभाषा के कई कवियों ने इसे बढ़ा कर कई घरों की रस्सियों से बाँधने का वर्णन किया है |

लौकिक गोकुल लीलाएँ

कृष्ण के संस्कार

नामकरण— नामकरण का उल्लेख भागवत के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त,विष्णु तथा ब्रह्मपुराण में भी मिलता है | इसका वर्णन भी कवियों ने किया है | नंददास ने भागवत का ही आधार लेकर अनुवाद कर दिया है | सूर के वर्णन में अनुवादात्मकता तो नहीं परन्तु संक्षेप अधिक है |

भागवत में नामकरण के लिए वासुदेव द्वारा गर्ग के भेजे जाने का उल्लेख है | साथ ही भागवत आदि पुराणों में सम्पूर्ण नामकरण का एकांत में होना उल्लिखित है | सूरसागर में इस प्रसंग से सम्बंधित केवल दो ही पद मिलते हैं जिसमें न वसुदेव के द्वारा गर्ग के भेजे जाने की बात है और न नामकरण की ही | एकान्त की भी बात नहीं है क्योंकि बंदीजन चारण आदि सभी नन्द गृह में जा पहुँचते हैं | (सूरसागर :सू0सा0,पृ.139,140) नन्ददास ने नामकरण के प्रसंग को उसके पूर्व आने वाली जम्हाई के प्रसंग से सम्बद्ध कर दिया है जिसका उल्लेख उसके अंतर्गत किया जा चुका है | उनका वर्णन भागवत पर ही आधारित है |

अन्नप्राशन— भागवत में तो नहीं किन्तु ब्रह्मवैवर्त में इसका उल्लेख है 'अस्यान्नप्राशन्नायाहं नामनुकरणाय च' (कृ.ख.13,47) सूरदास तथा परमानंद दास आदि अष्टछापी कवियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी कवि ने इसका वर्णन नहीं है |(सूरसागर:सू0सा0,पृ.140) सूर ने इसका कई पदों में पूर्णता से वर्णन किया | मणि-कंचन के थालों में षटरस व्यंजन बनते हैं और नंद स्वयं जा कर सारी जाति को बुला लाते हैं |

वर्षगाँठ— वर्षगाँठ का प्रछन्न उल्लेख जन्मनक्षत्र के रूप में भागवत में दो स्थानों पर मिलता है | (भागवत:10:7:4:,10:11:16) प्रथम में स्त्रियों के एकत्र होकर विधिपूर्वक कार्य सम्पादित करने का वर्णन है | इसका सूर तथा वल्लभरसिक ने अनुसरण कियाहै | (सूरसागर:सू0सा0,पृ.141, वल्लभरसिक : श्रीव0 र0 पृ.7)

कर्णछेदन— कर्णछेदन का कोई पौराणिक उल्लेख नहीं मिलता और सूर ने ही इसका वर्णन किया है | (सूरसागर:सू0सा0,पृ.142)

रक्षाबन्धन— इसका भी पौराणिक आधार नहीं है , ब्रजभाषा के ही कुछ कवियों ने इसका भी वर्णन किया है |(नन्ददास: नंद0,पृ.389,वल्लभरसिक: श्रीव0 र0 वा0,पृ.7)

बाल-लीला

पुराणों में कृष्ण की बाल-लीलाओं को सर्वाधिक महत्व भागवत में प्राप्त हुआ | पूतना तृणावर्त आदि से सम्बंधित पूर्वोक्त अलौकिक लीलाओं के अतिरिक्त अनेक लौकिक लीलाओं का भी वर्णन उसमें मिलता है | भागवत की लौकिक लीलाओं को आधार मानकर तथा स्वतंत्र रूप से भी अनेक कवियों द्वारा कृष्ण के बाल-चरित का विशेष विस्तार किया गया | ऐसे कवियों में सूर का नाम अग्रगण्य है | सूर के अतिरिक्त अन्य अष्टछापी कवियों तथा रसखान, तुलसीदास आदि ने भी कृष्ण के बाल-विनोद का चित्रण किया है |

आगे कृष्ण के घुटनों चलने, तुतलाने, खेलने माखन चोरी करने आदि लौकिक बाल-लीलाओं का उनकी पौराणिक पृष्ठभूमि अथवा स्वतंत्र स्थिति को स्पष्ट करते हुए सक्रम तुलनात्मक निरूपण किया गया है |

घुटनों और पैरों चलना— इसका आधार भागवत ही है किन्तु एक तो उसमें बलराम और कृष्ण दोनों को समान महत्व दिया गया है दूसरे यशोदा, रोहिणी तथा नन्द किसी के द्वारा चलना सिखने का कोई संकेत नहीं मिलता |(भागवत:10:8: 21,26) सूर ने कृष्ण के उलटने,घुटनों चलने तथा पैरों चलना सीखने का अत्यंत सूक्ष्म रूप से वर्णन किया है | नन्ददास के नन्द भी कृष्ण को उँगली पकड़ा कर चलाते हैं |

हाथ में नवनीत लिए प्रतिबिम्बि दर्शन— इसका वर्णन सूर, नन्ददास आदि के द्वारा हुआ है |(सूरसागर:सू0सा0,पृ.142,143,144, नन्ददास : नंद0,पृ.230) सूर ने प्रतिबिम्बि सम्बंधी चित्रण अनेक रूप में किया है |

तोतली बोली— इसका वर्णन भागवत में नहीं मिलता किन्तु कवियों ने किया है |

आँगन में नृत्य— इस लीला का उल्लेख भागवत में नहीं है पर कई कवियों ने इसे चित्रित किया है |(सूरसागर:सू0सा0,पृ.147)

मुँह में अँगूठा डालना—भागवत में इसका वर्णन मार्कण्डेय ऋषि के प्रसंग में बारहवें स्कंध में मिलता है |

चार्वगुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम् |

मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयंतं वीक्ष्य विस्मितः ||25||

—अ.9

कवियों ने कदाचित् इसी को आधार मान कर ऐसा चित्रण किया है |(सूरसागर:सू0सा0,पृ.136; भालण : द0 स्क0,पृ.33)

मथानी पकड़ना— उलूखल-बंधन के प्रसंग में भागवत के एक श्लोक में इसका उल्लेख है |

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्यन्तीं जननीं हरिः |

गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ||4||

—स्कं 10, अ. 9

कवियों ने इसका वर्णन किया है | सूरा ने मथानी पकड़ने को लेकर पौराणिकता के आधार पर असाधारण परिस्थिति का चित्रण किया है जिसका संकेत भागवत में नहीं है |

चोटी बढ़ने की लालसा में दुग्धपान— यशोदा द्वारा चोटी बढ़ने का प्रलोभन देकर दूध पिलाने की बात भागवतकार ने नहीं लिखी है सूर ने उसका वर्णन किया है | (सूरसागर:सू0सा0,पृ.153)

जेवन— इसका भी भागवतकार द्वारा वर्णन नहीं मिलता है | सूर ने 'नन्द' और 'कान्ह' को एक साथ जीमते हुए चित्रित किया है |

'जेंवत कान्ह नन्द इक ठौरे' |

—सू0सा0,पृ.161

चन्दखिलौना— भागवत में इसका उल्लेख है ही नहीं, यह प्रसंग कदाचित किसी अपौराणिक लोक प्रचलित परम्परा के कारण कृष्णककी बाल-क्रीड़ा के साथ समाविष्ट हुआ है क्योंकि नवीं शती के मध्य की कृति तिरुमोली (दक्षिण के कवियों की कृष्ण लीला विषयक गीतियों का संग्रह) में पेरियालवार द्वारा लिखित चन्द्र और कृष्ण लीला विषयक एक गीत उपलब्ध होता है |(हिस्स ऑफ आलवार्स—जे.एस.एम.हूपर) पेरियालवार के इष्टदेव वटपत्रशायी बालमुकुंद बताए जाते हैं |(वही) गीत में यशोदा की भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई है किन्तु इसका कहीं भी वर्णन नहीं मिलता कि यशोदा चंद्रमा के प्रतिबिम्ब को दिखाकर कृष्ण का मन बहलाती है | गुजराती और ब्रज दोनों भाषाओं में उसका वर्णन मिलता है |(ब्रजभाषा—सूरदास:सू0सा0,पृ,155,56)

सूरदास के कृष्ण चंद्रमा को खेलने के लिये ही नहीं चाहते वरन् उससे क्षुधा शान्ति करने की इच्छा भी करते है और वे जलभाजन में प्रदर्शित चंद्रबिम्ब से संतुष्ट न होकर रोते रोते सो जाते हैं | सूरदास का यह वर्णन अधिक विस्तृत है और उसमें नन्द आदि का उल्लेख करके विविध प्रकार की परिस्थितियों का संकेत किया गया है |

कृष्ण का सोना और मीठी कथा— शकट-भंजन के प्रारम्भ में भागवत में कृष्ण के शयन का वर्णन है जिसकी ओर शकट के प्रसंग में संकेत कर दिया गया है | यहाँ तात्पर्य उन कवियों से है जिन्होंने कृष्ण के शयन को स्वतंत्र रूप से वर्णित किया है |

सूरदास ने यशोदा द्वारा कृष्ण के बहलाने सुलाने के निमित्त रामकथा कहलाई है जिसमें कृष्ण सीताहरण के प्रसंग को सुनाते ही चौंक कर लक्ष्मण से धनुष माँगते लगते हैं | इस प्रकार के वर्णन से उनका अवतारी रूप स्पष्ट किया गया है |

रावण हरण कर् यो सीता को सुनि करुणामय नींद बिसारी |

सूर श्याम कर उठे चाप को लछिमन देहु जननी भ्रम भारी |

—सू0 सा0,पृ0 157

इसके अतिरिक्त सूर ने कई अन्य प्रसंगों में तथा स्वतंत्र रूप से भी सोने का वर्णन किया है |(सू0 सा0,पृ0 157, 133,137) ब्रजभाषा के अन्य किसी कवि ने संभवतः उपर्युक्त प्रकार का वर्णन नहीं किया |

कृष्ण का जगाया जाना, प्रभाती— सूर ने कृष्ण के जगाये जाने का वर्णन किया है | प्रभात होने पर कृष्ण के साथी ग्वाल-बाल आ जाते हैं | यशोदा उन्हें इसकी सूचना दे कर जगाती हैं |—सू0 सा0,पृ0 162,188

खेल— सखाओं के साथ कृष्ण नाना प्रकार के खेल खेलते हैं | सूर ने भौंरा-चकडोरी, चौगान, चोरमिहीचिनी आदि खेलने का वर्णन किया है | (सू : वही,पृ0 163) भागवत में इन खेलों का वर्णन वृन्दावन जाने के बाद मिलता है |

हाऊ— कृष्ण को डराने के लिए हाऊ का वर्णन मिलता है | (सू : वही,पृ0 160) सूर ने इसे कृष्ण के ईश्वरत्व से समन्वित करके भी प्रस्तुत किया है |

माखनचोरी— कृष्ण की लौकिक बाललीलाओं में कदाचित सबसे प्रमुख स्थान माखनचोरी का ही है | यह कथा न तो विष्णु पुराण में है न महाभारत में, हरिवंश में प्रसंगवश आ गई है, भागवत में अवश्य इसकी बड़ी धूमधाम है | भागवत के अतिरिक्त यह ब्रह्मवैवर्त तथा भास के बालचरित में भी है | (ब्रह्मवैवर्त : अ014 श्लोक 2,4; बालचरित: तृतीय अंक

भागवत में यह एक प्रकार से यमलार्जुन-मोक्ष तथा उलूखल-बंधन की भूमिका स्वरूप भी आती है और उससे पहले भी इसका वर्णन है | कृष्ण चोरी से माखन स्वयं ही नहीं खाते वरन् बंदरों को भी खिलाते हैं, बर्तनों को तोड़ देते हैं, कभी कुछ न पाने पर चढ़ कर छेद कर देते हैं | छींके पर रक्खे हुए बर्तनों में उलूखल बर्तन आदि पर सोते हुए बालकों को रुला देते हैं और अँधेरे घर में अपनी मणियों के प्रकाश में चोरी करते हैं |(भागवत : 10 : 8 : 29,30; 10: 10:8)

कवियों ने भी इस लीला के वर्णन में उत्साह दिखाया है | सूरसागर में भागवत से इस विषय में निम्नलिखित भिन्नताएँ हैं |

1. माखनचोरी का वर्णन गोपियों के उपालंभ के माध्यम से ही न करके स्वतंत्र रूप से भी किया गया है |
2. स्वतंत्र रूप से किए गए वर्णनों में अनेक ऐसी बातें हैं जिनका भागवत में संकेत तक नहीं मिलता |
3. भागवतोक्त कई बातों का वर्णन या तो मिलता ही नहीं या परिवर्तित रूप में मिलता है | न मिलने वाली बातों में उदाहरणार्थ कृष्ण के द्वारा बंदरों को माखन खिलाना और परिवर्तित रूप में सोते हुए बालकों पर दही छिड़क देना | भागवत में उन्हें जगने का ही वर्णन है |

सूर द्वारा वर्णित माखनचोरी के विभिन्न रूप

अ. अंतर्यामी कृष्ण एक बृज युवती के मन की बात समझ कर उसकी इच्छापूर्ति के लिये अकेले माखनचोरी करते हैं और अपने प्रतिबिम्ब को अन्य बालक समझ कर उससे चोरी छिपाने का आग्रह करते हैं |

आ. ग्वाल-बालों के साथ चोरी करते हैं |

इ. अँधेरी साँझ में ग्वालिन के घर जाते हैं, छिपने के लिये चतुर्भुज रूप धारण कर लेते हैं| ग्वालिन उन्हें पकड़ कर यशोदा के पास ले जाती है |

ई. चींटी निकालने के बहाने चोरी करते हैं |

उ. अनेक ब्रज-बालाएँ कृष्ण को आलिंगन में भर कर सुख पातीं और चाहती थीं कि कृष्ण उनके घर चोरी करें| ऐसी एक विशिष्ट गोपी को कृष्ण पाँच वर्ष की अवस्था से बारह वर्ष के होकर रिझाते हैं| उपालंभ देते हुए वह अपनी फटी चोली यशोदा को दिखाती है|

ऊ. पकड़े जाने पर स्त्री का रूप धारण कर लेते हैं |

ऋ. कृष्ण रास्ते चलते गोपियों के पास से माखन लूट भी लेते हैं |

अन्य कवियों द्वारा माखनचोरी का वर्णन

(नन्ददास : नद0,पृ231,233,तुलसीदास : कृ0गी0,पद 9,4,)

नंददास ने भी उलूखल एवं सखाओं के सहारे ऊपर चढ़कर माखन चुराने तथा अपने प्रतिबिम्ब से भेद न बताने की बात कहने का वर्णन किया है | तुलसीदास ने कृष्ण गीतावली में भागवत की ही तरह गोपियों द्वारा 'गोरस हानि' के उलाहने देने का वर्णन किया है |

बाल कृष्ण के ब्याह की बात— तुलसीदास ने इसका भी उल्लेख किया है | तुलसी की यशोदा सास ससुर और दुलहिन का नम लेकर कृष्ण को माखन चोरी से रोकती हैं | (तुलसीदास:कृ0गी0पद13)

गोदोहन सीखना— भागवत में गोकुलवासी कृष्ण को गोदोहन में प्रवृत्त नहीं दिखाया गया है, किंतु सूरसागर में उनके द्वारा गोदोहन-कार्य सीखने का वर्णन प्राप्त होता है | (सूरदास:सू0सा0,पृ0188)

अलौकिक वृन्दावन-लीलाएँ

वृन्दावन-गमन— गोकुल से वृन्दावन गमन करने का निश्चय सूर के अनुसार यशोदा और नंद तथा नंददास, के अनुसार उपनंद की सम्मतेसे हुआ |(सूरदास : सू0 सा0,पृ0128,नंददास: नंद0पृ0245) नंददास के वर्णन भागवत के अधिक निकट हैं क्योंकि उसमें उपनंद का इसी प्रकार उल्लेख है |

तत्रोपनन्द नामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः

—10:11:20

इस घटना का अन्य पुराणों में कुछ भिन्न प्रकार से वर्णन है किंतु सभी कवियों ने भागवत का ही आधार लिया है | हरिवंश में भेड़ियों का आक्रमण भी गोकुल छोड़ने का कारण बनता है|(कृष्ण प्रोबलम :8, दि न्यू सेटलमेंट हरिवंशपुराण अध्याय 65, 66) किन्तु किसी भाषा के कवि ने ऐसा नहीं लिखा| हरिवंश में वृन्दावन-गमन के समय कृष्ण की आयु सात वर्ष की है पर सूर ने पाँच की मनी है|(देखिए उद्धरण86,सूरदास) सूरदास द्वारा इस प्रसंग का वर्णन संक्षिप्त है|

वत्सासुर तथा बकासुर— इनके सम्बंध में कवियों ने भागवत का ही अनुसरण किया है | सूर के वत्सासुर-वध में भी एक नवीनता है वह यह कि एक बार बलराम और दुबारा कृष्ण द्वारा उसे मृत्यु प्राप्त हुई| (सूरदास : सू0सा0,पृ0190) नन्ददास ने तो बक का कंस से स्पष्ट सम्बंध बताया है| जिसका आधर कदाचित् भागवत का 'वकं कंस सखं' है | इस स्थल पर बकी-बक का यह सम्बंध न भागवत में दिया है न ब्रह्मवैवर्त में |

अधासुर-वध— इस प्रसंग में आकर भागवत में भी बकी-बक के साथ अधासुर के भ्रातृ सम्बंध तथा कंस-प्रेरित होने की बात स्वीकार की गई है |(भागवत : 10:12:14) सम्भवतः इसी उल्लेख के कारण कवियों ने बकासुर को पूतना का भाई लिखा है | सूरदास ने अधासुर के वध का दो बार वर्णन किया है फिर भी उक्त दोनों बातों में से किसी का उल्लेख नहीं किया, नंददास में अवश्य यह बातें पाई जाती हैं |(सूरदास : सू0सा0,पृ0192, नन्ददास : नंद0 पृ0 250,251)

विधि मोह— इस कथा का भी आधार भागवत ही है | सूर ने इसका वर्णन चार पाँच बार किया है | (सूरदास : सू0 सा0,पृ0192,193,197,199,202) परंतु किसी भी स्थान पर भागवत की तरह बलराम की जिज्ञासा की बात 'सर्व पृथक्त्यं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृतं प्रभुणबलोऽवैत्' (10:13:39) का उल्लेख नहीं मिलता| फिर सूर ने भागवत के 'अन्यत्रे' को स्पष्टतया ब्रह्मलोक में बदल दिया |

'हरि लै बालक वत्स ब्रह्मलोकहिं पहुँचाये'

—सू0सा0,पृ 193

इसके अतिरिक्त एक स्थल पर क्षण में ब्रह्मा का भूतल और क्षण में ब्रह्मलोक आना जाना भी लिखा है | (सूरदास : वही0,पृ0 299) यह एक नवीनता है | नंददास ने भागवत का प्रायः अनुवाद ही किया है |

धेनुकासुर-वध— इस प्रसंग में पुराणों में महत्वपूर्ण मतभेद हैं | हरिवंश और भागवत के अनुसार तालवनवासी गर्दभों का स्वामी धेनुकासुर बलराम पर प्रहार करता है और वे ही उसका संहार करते हैं किंतु ब्रह्मवैवर्त में एक तो यह कथा कालीय-दमन और गोवर्धन-धारण आदि के पश्चात् दी गई है दूसरे उसमें धेनुक को दुर्वासा-शापित बालिपुत्र साहसिक बतलाते हुए उसके वध का श्रेय कृष्ण को दिया गया है |(कृष्ण प्राबलेम 8,क6, भागवत10:15:31,32, ब्रह्मवैवर्त 4:22:29,30) सूर तथा नंददास से भागवतानुसार धेनुकासुर का वध बलराम से ही कराया है |(सूरदास: सू0सा0,पृ212, नंददास : नंद पृ0 272)

कालीय-दमन— यह कथा भागवत के अतिरिक्त ब्रह्म, विष्णु,पद्म, हरिवंश और ब्रह्म्वैवर्त पुराण में भी प्राप्त होती है परंतु सूरदास ने जिस रूप में इसे प्रस्तुत किया है वह इनमें से किसी पुराण में नहीं मिलता | सूरदास ने इस प्रसंग को कंस से सम्बद्ध कर दिया है | नारद कंस के पास जाकर उसके सामने कालीदह के कमल नंद के द्वारा मँगवाने का प्रस्ताव रखते हैं फलतः कंस एक दूत के हाथ तत्काल राजाज्ञा पत्र द्वारा नंद के पास भेज देता है | पत्र पकर नंद और यशोदा भयभीत एवं दुखी हो जाते हैं | तब अंतर्यामी कृष्ण उनके पास जाकर कारण पूछते हैं और जानने कर कंस के पास कमल भेजने का आश्वासन देते हैं | कालीदह से फूल लाने तथा गोप-कन्याओं को देने का उल्लेख भास ने अपने बालचरित के चतुर्थ अंक में किया है परंतु कंस से उसका कोई सम्बंध नहीं है | इस भूमिका के पहले सूर कृष्ण को यमुनादह में गिरने का स्वप्न देखते हुए चित्रित करते हैं | (सूरदास: सू0सा0,पृ 215,219) यमुनादह में कूदने का दूसरा कारण भी सूर ने दिया है | कृष्ण सखाओं के साथ यमुना-तट पर कंदुक-क्रीड़ा करने जाते हैं | खेलते-खेलते उनके द्वारा श्रीदामा की गेंद यमुनादह में गिर जाती है | श्रीदामा उसे पाने का हठ करता है और तब कृष्ण अपना वास्तविक उद्देश्य बतकर एक तटवर्ती कदम्ब से कूद कर जल में प्रविष्ट हो जाते हैं | (सूरदास: सू0सा0,पृ 217,218) भागवत में इस कथा-वस्तु का उल्लेख नहीं है |

दह में प्रविष्ट होते ही कृष्ण और नागपत्नियों में वार्तालाप होता है जिसे सूर ने प्रस्तुत किया है |

सूरदास के अनुसार कृष्ण ने सोते हुए नाग की पूँछ पर पैर रख कर उसे बलात् जगा दिया | भागवत में नाग कृष्ण के कूदने से प्रताड़ित जल के शब्द सुनकर आ जाता है,सोने की बात वहाँ है ही नहीं | इसके अतिरिक्त शेष वर्णन प्रायः सभी कवियों ने भागवत के ही अनुसार दिया है | सूर ने अपनी नवीन कथा का उपसंहार भी अंत में दिया है | कृष्ण नाग नाथने के बाद कमलों का समूह उस पर लाद कर तट तक लाते हैं | बाद में सब कमल सहस्त्र गाड़ियों में भरकर पत्र सहित गोपों के द्वारा कंस के पास भिजवा दिये गए | कंस प्रसन्न होकर नंद को 'शिरो पाव' देता है और कृष्ण बलराम को कलेवा भी भेजता है |(सूरदास: सू0सा0,पृ 224-225)

प्रलम्बासुर-वध— भागवत में यह असुर एक गोप वेश में आता है और उसका संहार बलराम करते हैं, विष्णु, ब्रह्म, हरिवंश, आदि पुराणों में भी यही रूप है, परंतु ब्रह्मवैवर्त मे प्रलम्ब एक साँड है जिसका वध कृष्ण करते हैं | (भागवत:10:18:30; ब्रह्मवैवर्त: 4:14,15,16) भास भी संकर्षण से ही प्रलम्ब का वध कराते हैं |

सूरदास ने इस कथा के दोनों रूपों को संयुक्त कर दिया और कृष्ण द्वारा गोप रूप प्रलम्बासुर का वध उसी प्रकार कराया जिस प्रकार ब्रह्मवैवर्त में है | उसमें कृष्ण वृष रूप असुर के दोनों सींग पकड़ कर मार डालते हैं, इसमें दोनों हाथ वह कृष्ण को तृणावर्त की भाँति आकाश में उड़ा ले जाता है | (सूरदास: सू0सा0,पृ 233) सूर ने उसे कंस से सम्बद्ध कर दिया है | (सूरदास: सू0सा0,पृ 234) नंददास ने भागवत का ही आधार लेकर कथा को लिखा है | फलतः कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं मिलता|

दावानल-पान— भागवत में दावानलपान का दो बार वर्णन है तथा ब्रह्मवैवर्त में एक बार | किंतु दोनों में अंतर यह है कि भागवत के कृष्ण दावानल का पान कर जाते हैं और ब्रह्म्वैवर्त में उसका शमन करते हैं | (भागवत : 10: 17: 25, 10:19:12; ब्रह्मवैवर्त : कृ0 खं0 4: 19: 179) इन दोनों पुराणों में दावाग्नि के उद्भूत होने का कोई कारण नहीं दिया गया किंतु सूर ने इसे भी अन्य असुरों की तरह कंस से सम्बद्ध कर दिया | नंददास ने दावानल को अभिचार-जन्य माना पर पान करने के विषय में निश्चित कुछ नहीं कहा | एक जगह तो कृष्ण की एक शक्ति उनकी आज्ञा से उसका पान करती है और दूसरी जगह स्वयं कृष्ण उसका पान करते हैं | (सूरदास: सू0सा0,पृ 231; नंददास : नंद,पृ0 280,285)

गोवर्धन-धारण— यह प्रसंग भागवत (अ0 24,25,26,27) के अतिरिक्त ब्रह्म,विष्णु,पद्म, हरिवंश तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी प्राप्त होता है किंतु सूर को छोड़कर नंददास आदि ने प्रायः भागवत का अनुवाद मात्र कर दिया है | दशम स्कंध से पृथक नंददास ने इस विषय पर स्वतंत्र रचना 'गोवर्धनलीला' भी रची | सूरसागर में गोवर्धन-धारण का प्रसंग तीन बार वर्णित है और वह भागवत से निम्नांकित अंशों में भिन्न है | (सूरदास: सू0सा0,पृ 266-268;290,269;272;277 भागवत : 10:24:25:2; 10:27:1,2)

1. भागवत में इस कथा का प्रारम्भ नंद और कृष्ण के विचार-विनियम से होता है किंतु सूर इसका प्रारम्भ यशोदा और नंद के संवाद से करते हैं | नंद इंद्रपूजा को विस्मृत कर देते हैं जिसका स्मरण यशोदा दिलाती हैं तथा साथ ही अपनी सखियों को भी सूचित करती हैं |
2. नंद,उपनंद और वृषभान को बुलवाते हैं | भागवत में 'वृद्धान्नन्दपुरोगमान्' के द्वारा अन्य गोपों की उपस्थिति का संकेत मात्र हैं |
3. सूर के कृष्ण नंद के आगे इंद्र के स्थान पर गोवर्धन की पूजा का प्रस्ताव अत्यंत संक्षेप में रख देते हैं, भागवत की तरह वे उसकी श्रेष्ठता के प्रतिपादन में कर्म-विधान की दार्शनिक व्याख्या नहीं करते | इस विषय में कृष्ण को एक स्वप्न होता है | गोवर्धन-पूजा के लिए जाने वालों में सूर राधा का भी उल्लेख करते हैं |
4. भागवत में कृष्ण स्वयं द्वितीय रूप धारण करके अपने को पर्वत कहते हुए भोग स्वीकार करते हैं किंतु सूर के अनुसार पर्वत ही सहस्त्र भुजशालीरूप धारण करके भोग लगाता है और उसका यह रूप बिल्कुल कृष्ण के समान है |
5. इंद्र ने जलवृष्टि के लिए भागवत में केवल 'सांवर्तक' गण को आज्ञा दी है जबकि सूर ने 'मेघवर्तक' आदि अनेक नाम दिये हैं |
6. भागवत के अनुसार गर्व-भंजन के अनंतर इंद्र केवल सुरभि को लेकर एकांत में कृष्ण के आगे प्रणत होते हैं किंतु सूर ने उनके साथ समस्त देवताओं के आने का वर्णन किया है |

समानताएँ— 1. गोपों ने अपने लकुट लगाकर गोवर्धन उठाए रखने में कृष्ण की सहायता की थी | इसका वर्णन सूर गुजराती के प्रेमानंद ने किया है पर प्रेमानंद में विशेष प्रकार का विस्तार तथा मौलिकता है |

2. कनिष्ठिका उँगली पर पर्वत-धारण की बात ब्रहवैवर्त में और हाथ पर उठाने की बात भागवत में है | सूर तथा नंददास ने भागवत का अनुकरण किया है तथा एक पग से सात दिन खड़े रहने का भी उल्लेख किया है | (भागवत :10:25:19; ब्रह्मवैवर्त: 4:21:64) इस समय नंददास ने दोनों हाथों से वणु बजाने का वर्णन किया है |

वरुण-गृह से नंद का उद्धार— यह घटना केवल भागवत में वर्णित है | एकादशी व्रत के पश्चात नंद यमुना-स्नान के लिए जाते हैं | वहाँ जल में प्रविष्ट होते ही वरुण का एक असुर उन्हें पकड़ कर वरुण-लोक ले जाता है | कृष्ण उन्हें बचाने के लिए जाते हैं | वरुण उन्हें भगवान समझ कर पूजा स्तुति करते हैं फिर वे नंद को साथ लेकर वापस लौट आते हैं | नंददास ने इंद्र की तरह वरुण के गर्व को भी चूर करने की बात कही है, सूर ने एक भृत्य के स्थान पर वरुण के अनेक दूतों द्वारा वरुणपाश से बद्ध करके नंद को वरुण-लोक ले जाने की बात लिखी है | ऐसे ही कुछ अन्य सामान्य अंतर हैं |(नंददास : नंद0, पृ0 318; सूरदास : सू0सा0,पृ0 269)

सर्प,शंखचूड़, अरिष्ट, केशी और व्योम-वध— भागवत में रास के अनंतर वर्णित इन प्रसंगों में से अरिष्ट तथा केशी की कथा अन्य अनेक पुराणों में प्राप्त होती है | ब्रह्मवैवर्त में केशी-वध रास से बहुत पूर्व प्रलम्बासुर-वध से ठीक बाद में मिलता है | अरिष्टासुर का नाम इस पुराण में नहीं है किंतु प्रलम्बासुर का रूप भागवत के अरिष्टासुर के ही समान है | भागवतकार ने पूतना और केशी को ही कंस से सम्बद्ध माना है | (नंददास: नंद0,पृ318; सूरदास:सू0सा0,पृ0296)

सूरदास ने भी केशी के प्रसंग को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है | ब्रजभाषा में सूरसागर में ही इसका वर्णन है | इसके अतिरिक्त सूर ने सर्प रूपी विद्याधर,शंखचूड़, अरिष्ट,केशी तथा व्योमासुर के वध के प्रसंगों को भी वर्णित किया है | सूर ने अरिष्टासुर नाम न देकर वृषभासुर नाम दिया है तथा केशी को व्योमासुर की तरह गोप-रूप दे दिया है और व्योमासुर को भौमासुर कहा है |(भागवत:10:37:1)

लौकिक वृन्दावन-लीलाएँ

गोचारण— गोचारण का वर्णन प्रायः प्रत्येक अलौकिक लीला के प्रारम्भ में मिलता है क्योंकि कृष्ण इसी निमित्त प्रातः घोष से बाहर जाते थे और संध्या समय लौटते थे | सूर ने इसका वर्णन अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक विस्तार से किया है | उन्होंने गोप बालकों की विविध क्रीड़ाओं,गायों के भटक जाने, उन्हें खोजते,वंशी बजाकर या वृक्ष पर चढ़ कर उन्हें बुलाने आदि अनेक बातों का समावेश किया है | (सूरदास:सू0सा0,पृ0 529,534,543,544,545)

कात्यायनि-व्रत और चीरहरण— इसका वर्णन भागवत द0स्कं0 के अध्याय 22 और ब्रह्मवैवर्त, कृष्णजन्मखण्ड के अध्याय 27 में प्राप्त होता है | कवियों ने भागवत का ही अनुसरण किया है,केवल दो एक स्थलों पर ब्रह्मवैवर्त का प्रभाव दिखता है |जैसे सूरसागर के एक पद में राधा-कृष्ण के वार्तालाप और कदंब का उल्लेख | किंतु यही पद कुछ पाठभेद से दूसरे रूप में गुजराती कवि भालण के दशम स्कंद में भी प्राप्त होता है | अतः इस विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता | इसमें भी वृषाभानुदुलारी राधा का उल्लेख नहीं है केवल 'कदम' का है |(ब्रजभाषा—सूरदास : सू0सा0,पृ0252, गुजराती—भालण : दश0 स्कं0 पृ0 80)

भागवत में चीरहरण करके कृष्ण वस्त्रों को 'नीप' पर तथा ब्रह्मवैवर्त में 'कदंब' पर रखते हैं | सूरदास ने चीरहरण लीला के दोनों वर्णनों में 'कदंब' और 'नीप' दोनों का उल्लेख किया है | (भागवत : 10:22:9, ब्रह्मवैवर्त :4:27:63) नीप और कदंब संस्कृत साहित्य में पर्याय रूप में तो व्यवहृत होते ही हैं किंतु उनका भिन्न अर्थ भी होता है, जैसा कि भागवत के 'कदम्बनीपाः'(10:30:9) से प्रकट है |

सूर ने भागवत की कथा के अतिरिक्त कुछ अंश और उद्भावित किये हैं —

1. कात्यायिनि के स्थान पर शिव की पूजा |
2. कृष्ण का जल के अंदर प्रकट होकर गोपियों की पीठ मलना|
3. गोपियों का यशोदा के पास उलाहना ले जाना |
4. कृष्ण का सोलह सहस्र गोप-कन्याओं के वस्त्र तथा भूषण चुराना |

ब्राह्मण-पत्नियों पर अनुग्रह— भागवत दशमस्कंद के 22वें अध्याय में दिया हुआ यह प्रसंग कवियों द्वारा प्रायः अनुवादात्मक रूप में वर्णित हुआ है | केवल एक ब्राह्मण-पत्नी विशेष की कथा ने, जिसमें उसने कृष्ण के पास न पहुँचने पर प्राण त्याग दिये हैं, सूर को अधिक आकर्षित किया | सूर ने उसके सम्बंध में अनेक पद लिखे हैं और उसे गोपी के रूप में प्रस्तुत किया है | (सूरदास : सू0सा0,पृ0265)

राधा-प्रधान कृष्ण-लीलाएँ

राधा-जन्म— ब्रह्मवैवर्त में राधा के पिता वृषभानु, माता कलावती, पति रायाण तथा जन्मस्थान गोकुल का स्पष्ट निर्देश है |(ब्रह्मवैवर्त पुराण 4: 6 : 224, 225, 228; वही,4: 104) पद्मपुराण में राधा के जन्म की तिथि **'भाद्रे मासे सितेपक्षे अष्टमी संज्ञके तिथौ'** बताई गई है | उज्ज्वलनीलमणि के एक श्लोक से राधा की माता कीर्ति सिद्ध होती है |(उज्ज्वलनीलमणि : राधाप्रकरण,श्लो0 45) कृष्णकाव्य में ब्रह्मवैवर्त के वृषभानु को पिता रूप में सर्वत्र लिया गया है परंतु माता के रूप में कीर्ति को ही माना गया है | राधा का जन्मस्थान भी बरसाने में स्थित 'रावल' ग्राम माना गया है | ब्रजभाषा में राधा-जन्म की बधाई के पद सूर, नंददास, माधवदास, हरिराम व्यस आदि द्वारा लिखे गये हैं और उन्हीं में ये बातें प्राप्त होती हैं |(सूरदास : सू0 सा0,पृ0 26542; नन्ददास : नंद0,पृ 330; माधवदास : माधुरी वाणी पृ0 94; हरिराम व्यास : व्यासवाणी, उक्त0 पृ0443,453)

हरिराम व्यास ने श्रीदामा को राधा का भाई कहा है यद्यपि ब्रह्मवैवर्त में वह कृष्ण का किंकर कहा गया है |(ब्रह्मवैवर्त पुराण :4:2:61) सूर ने राधा-जन्म सम्बंधी पद नहीं रचे | गुजराती कवियों में किसी ने राधा-जन्म को काव्य का विषय नहीं बनाया और न वृषभानु के पितृत्व को छोड़कर अन्य किसी सम्बंध का ही उल्लेख किया है |

राधा कृष्ण का प्रथम मिलन— सूरदास ने इसका पर्याप्त विस्तार से चित्रण किया है और जिस रूप में यह प्रसंग सूरसागर में है, प्राचीन कृष्ण-काव्य में कहीं भी उस रूप में उपलब्ध नहीं होता | सूर के कृष्ण बालकों के साथ भौंरा-चकडोरी खेलते ब्रज खोरी में निकलते हैं, वहाँ सप्त वर्षीया सुंदरी राधा से उनकी भेंट होती है | कृष्ण उसे अपने घर आमंत्रित करते हैं | बिछुड़ते समय वस्त्र बदल लेते हैं | घर पर जब राधा की माँ पूछती है कि देर से क्यों आई तो वह कहती है कि मेरे साथ की एक लड़की को साँप ने डस लिया था, कृष्ण ने मंत्र से उसे ठीक कर दिया, इससे देर हुई | राधा नंदमहर के घर आती है | यशोदा उसकी चोटी गूँथकर, कृष्ण की 'जोटी' समझकर, गोद भर देती है | वह अपने घर लौट जाती है और वृषभानु तथा उनकी स्त्री दोनों अत्यंत प्रसन्न होते हैं | ((सूरदास : सू0 सा0,पृ0 204,207,208,209)

नंददास ने भी 'श्यामसगाई' के प्रारम्भिक पदों में राधा के प्रति यशोदा के आकर्षित होने का वर्णन किया है | इस प्रकार का वर्णन अन्य किसी कवि ने नहीं किया | उज्ज्वलनीलमणि के 'राधाप्रकरणम्' में बालिका राधा के प्रति यशोदा के आकर्षण का वर्णन भी है |

सूर ने इस प्रसंग में ब्रह्मवैवर्त में दी हुई उस घटना का भी उल्लेख कर दिया है जिसके आधार पर गीतगोविंद के प्रथम श्लोक 'मेघैर्मेदुर...' का निर्माण हुआ | मेघाच्छन्न आकाश देखकर नंद राधिका के साथ कृष्ण को घर भेज देते हैं | मार्ग में दोनों किशोर रूप में रमण करते हैं | ब्रह्मवैवर्त में यहीं पर विवाह का भी वर्णन है | परंतु सूर ने उसे रास के प्रसंग में स्थान दिया है | (सूरदास: वही,पृ0206)

कृष्ण का स्त्री-रूप धारण करना— सूरदास, नंददास, ध्रुवदास, व्यास आदि ब्रजभाषा के कई कवियों ने राधा से मिलने के लिए कृष्ण के स्त्री-रूप धारण करने का वर्णन किया है | ध्रुवदास की ब्रजलीला में इस युक्ति के बताने का श्रेय ललिता को है | बरसाने में जब लोग स्त्री-वेष-धारी का परिचय पूछते हैं तो ललिता उन्हें उपनंद की पुत्री बता देती है | सूर ने मानलीला के प्रसंग में कृष्ण के दूती का रूप धारण करने की बात लिखी है |(सूरदास : सू0 सा0, पृ0518) नंददास ने दूती-वेष के स्थान पर सखी-वेष धारण करने का वर्णन किया है |(नंददास : नंद0,पृ0 420) व्यास ने भी इसका संकेत किया है |

कृष्ण का गारुड़ी बनना— ब्रह्मवैवर्त में एक स्थल पर विरहिणी राधा के मूर्छित होने तथा कृष्णदर्शन से मूर्छा दूर हो जाने का वर्णन है | इस प्रसंग में न सर्प की बात है और न कृष्ण के गारुड़ी बनने की | (ब्रह्मवैवर्त पुराण : 4: 69 :47, 54) परंतु ब्रजभाषा तथा गुजराती दोनों भाषाओं के काव्य में कृष्ण के गारुड़ी बनने की कथा मिलती है | नंददास ने तो इस प्रसंग को लेकर 'श्यामसगाई' नामक एक स्वतंत्र कृति का निर्माण किया | यशोदा वृषभानु के यहाँ राधा कृष्ण की सगाई का संदेश भिजवाती है जो कीर्ति द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है | कृष्ण यह जानकर राधा से ही विवाह करने का निश्चय करते हैं और बरसाने के बाग में जा बैठते हैं | राधा सखियों समेत वहाँ आती है और कृष्ण के रूप को देखकर मूर्छित हो जाती है | सखी राधा की कृष्ण के प्रति अनुरक्ति जानकर उससे कहती है कि तू घर जाकर कह दे कि मुझे नाग ने काट खाया और तब हम कृष्ण को गारुड़ी बना कर ले आवेंगी | तब राधा को सखियाँ उठाकर घर ले जाती हैं और एक सखी कृष्ण के गारुड़ी होने की बात कहती है | दूसरी सखी यशोदा के पास जाकर कृष्ण को उपचारार्थ बुला लाती है और वे 'दरस फूँक' देकर राधा को विष-मुक्त करते हैं | इसके अनन्तर कृष्ण की सगाई स्वीकार कर ली जाती है |(नंददास : 'श्याम सगाई', पृ0 117,118,121) सूरदास ने भी इसका वर्णन किया है परंतु कथा को गोदोहन से सम्बद्ध कर दिया है | (सूरदास : सू0 सा0 पृ0245,46,48)

वैदक लीला— इस वैदक लीला का मूल गीतगोविंद का एक पद ज्ञात होता है | (जयदेव : गीतगोविंद,चतुर्थ सर्ग) ध्रुवदास ने कृष्ण को वैद्य बनाकर राधा से उनका संयोग कराया है | यह वर्णन उनकी 'वैदक लीला' में न होकर 'सुखमंजरी' में है |

गोदोहन— राधा नंद के घर खरिक में दोहिनी लेकर गाय दुहाने आती है, इस प्रकार उसे कृष्ण से मिलने का अवसर मिल जाता है | सूर ने इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार दिया है | (सूरदास : सू0 सा0,पृ 242,243,245)

हार खोने के बहाने राधा का कृष्ण से मिलना— संभवतः इस प्रसंग की उद्भावना सूर ने स्वयं की है क्योंकि इसका कोई पौराणिक आधार नहीं मिलता | ब्रज और गुजराती के अन्य कवियों ने भी ऐसा कोई वर्णन नहीं किया |

चतुर राधा अपनी 'मोतिसरी' की माला आँचल से बाँध लेती है और अपनी माँ से यह कहकर कि माला खो गई है, कृष्ण से मिलने जाती है | कृष्ण स्वयं सखाओं को जीमता हुआ छोड़कर राधा के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं और राधा नंदमहर के पिछवाड़े उन्हें बुलाकर मिलती है | कृष्ण यशोदा से यह कहकर कि जंगल में एक गाय ब्याई है भाग आते हैं और कुञ्ज में दोनों रमण करते हैं | (सूरदास: वही पृ0 372,374)

राधा के मोतियों में कंकड़ी मिलाना— इसका वर्णन हितहरिवंश ने किया है | सूरसागर में इस सम्बंध का जो पद प्राप्त होता है वह पद वस्तुतः हितचौरासी का है | (सूरदास: वही पृ0 359; हितहरिवंश : हितचौरासी,पदसंख्या13)

कृष्ण का राधा की आँख मींचना— राधा मुकुट देख रही है, कृष्ण पीछे से आकर उसकी आँखे मूँद लेते हैं | जब चंद्रावली आती है तो राधा उसके पूछने पर सारी घटना बताती हैं | इसका वर्णन भी सूर ने ही किया है | (सूरदास: सू0 सा0 पृ0 403,404, 405; सूरदास : वही, पृ0257,258,260,261)

पनघट की लीलाएँ— भागवत में कात्यायिनि-व्रत और रास के प्रसंग में गोपियों का यमुना-तट पर जाना वर्णित है किंतु उसमें पनघट की लीलाओं का संकेत नहीं है और न अन्य किसी पुराण में ही है | इन लीलाओं का वर्णन सूरदास, हरिराम व्यास, मीरां आदि ने कुछ तो लोक-परम्परा से प्रेरित होकर और कुछ स्वतंत्र उद्भावना से किया है |

सूरदास— सूर के कृष्ण पनघट पर निम्न क्रीड़ाएँ करते हैं |

1. यमुना-तट पर मुरली बजाकर तथा अपनी मोहिनी मूर्ति दिखाकर गोपियों को मुग्ध बनाते हैं |
2. पनघट को रोक लेते हैं और कोई गोपी जल नहीं भर पाती |
3. एक बार कृष्ण सखाओं सहित छिपे थे इतने में राधा आई और ज्योंही जल भरकर ले चली कृष्ण ने पीछे से उसकी गागर का जल लुढ़का दिया | उसने 'कनक लकुट' छीन लिया और बोली कि जब तक मेरी गागर नहीं भर देते लकुट न दूँगी | पर कुछ समय बाद विह्वलता के कारण उसके हाथ से लकुट छूट गिरता है | कृष्ण भी उसकी गागर भर कर उठवा देते हैं |
4. ऐसे ही एक बार राधा सखियों सहित जल भरने आतीं हैं | कृष्ण उसकी छाँह में अपनी छाँह छुवाते हैं | इस प्रकार अनेक छल करके उसको काम-विवश कर देते हैं, फिर गागर में 'कंकरी' मारते हैं जो राधा के शरीर में लगती है | वे कभी लट कभी वक्ष का स्पर्श करते हैं |
5. यमुना-तट पर गेंडुरी फटकार देते हैं, गागरें फोड़ देते हैं | यशोदा के पास गोपियाँ उलाहना लेकर जाती हैं जिस पर अंत को उन्हें अविश्वास हो जाता है |

ब्रजभाषा के अन्य कवियों ने इतने विस्तार से इन लीलाओं का वर्णन नहीं किया | इस विषय में हरिराम व्यास ने कई पद लिखे हैं | किसी में गोपी कृष्ण से सिर पर गागर रख देने की प्रार्थना करती हैं और पीतपट की ईंडुरी बनाने को कहती हैं तथा किसी में कृष्ण उसके साथ रमण भी करते हैं किंतु इन पदों में राधा के स्थान पर सामान्यतः नागरि या पनिहारी का उल्लेख है |(नंददास : नंद,पृ0 405, हरिराम : व्यासवाणी, उक्त, पृ0 509-510) मीरां के इस प्रसंग के पद ब्रज और गुजराती दोनों भाषाओं में हैं |

संभोग-वर्णन— राधाकृष्ण के संभोग-वर्णन की परम्परा अत्यंत प्राचीन है | गाथा सप्तशती (134वि0), गोडवहो(775 वि0), ध्वन्यालोक(910वि0) से राधा कृष्ण की शारीरिक समीपता का प्रमाण मिलता है | ब्रह्मवैवर्त में (12वीं शती वि0) अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ राधा कृष्ण के रति-युद्ध का स्पष्ट वर्णन है | (गाथा

सप्तशती : 1 : 89, गौडवही : श्लो0 22, ब्रह्मवैवर्त पुराण : कृ0 ख) 15 : 149 : 58 : 71 : 28 : 75, गीतगोविंद : द्वादश सर्ग) कृष्ण-भक्त कवियों ने भी राधा कृष्ण के संभोग तथा तज्जन्य परिस्थितियों का अत्यंत विस्तार से वर्णन किया है | कुछ कविओं ने रासलीला कुछ कवियों ने रासलीला, दानलीला आदि के अंतर्गत भी इसका समावेश किया है | ब्रज के समस्त कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदायों के काव्य में रति-युद्ध का वर्णन मिलता है | प्रायः सभी कवियों ने स्फुट पदों में तथा श्रृंगार के विभिन्न प्रसंगों के बीच रतिवर्णन किया है किंतु ध्रुवदास की 'रतिमंजरी' तथा माधवदास की 'केलिमाधुरी' का विषय ही यही है |

चौपड़ और शतरंज खेलना— रूपक के रूप में ब्रजभाषा के कई कवियों ने राधाकृष्ण को कहीं चौपड़ और कहीं शतरंज खेलते चित्रित किया है |(ध्रुवदास : हितसिंगार लीला, पद 11, हरिदास : नि) मा),पृ0219)

जल-क्रीड़ा वर्णन— ब्रजभाषा के कतिपय कवियों ने रास-वर्णन के अंतर्गत आई हुई जल-क्रीड़ा से भिन्न जल-केलि का वर्णन किया है | राधा कृष्ण कहीं नौका-विहार करते हैं कहीं जल-विहार |(श्री भट्ट : नि0 मा0,पृ018,मधवदास : वंशीवट माधुरी, पृ0 34)

इसके अतिरिक्त वेणी-गूँथना, महावर देना आदि क्रीड़ाएँ ऐसी हैं जिनका वर्णन राधा कृष्ण के प्रेम-प्रसंग में कवियों ने किया है |

वसंत-क्रीड़ा

रास के प्रसंग में वासंती रास की परम्परा का जो इतिहास आगे दिया गया है उससे यह सिद्ध होता है कि वसंत ऋतु में राधा-कृष्ण की विलास-लीला के वर्णन पी परम्परा पर्याप्त प्राचीन है | रास के साथ ही होलिकोत्सव का भी इसमें समावेश हो जाने तथा वसंत ऋतु के स्वयं विशेष उद्दीपक होने के कारण कवियों ने वसंत-क्रीड़ओं का विस्तार से वर्णन किया है | कुछ कवियों ने क्रीड़ाओं के वर्णन के साथ वसंत- वर्णन को स्वतंत्र महत्व भी दिया है | सूर के वसंत तथा होरी सम्बंधी अनेक पद, ध्रुवदास की 'ब्यालीस लीला' की कई लीलाएँ,गदाधर भट्ट, माधवदास आदि अनेक कवियों द्वारा रचित स्फुट पद एवं प्रसंग इस सम्बंध में गणनीय हैं |

वसंत-क्रीड़ा की मुख्य वस्तु निम्नलिखित है :

1. वसंत के प्रभव से मानिनी गोपियों का मान-मोचन |
2. होली, फाग-क्रीड़ा अबीर गुलाल आदि डालना, पिचकारी मारना |
3. नृत्य गीत होली-धमार चंग, ढफ, मृदंग झाँझ आदि का वादन |
4. कृष्ण के साथ गोपाल-मंडली तथा राधा के साथ गोपी-समूह की प्रतिद्वंदिता |

इन रचनाओं में वस्तु आदि सभी दृष्टियों से सूर के पद सर्वप्रधान हैं | अन्य कवियों द्वारा वर्णित वस्तु प्रायः इन्हीं कवियों की वस्तु के अंतर्गत आ जाती है | सूरदास ने कतिपय ऐसे भी प्रसंग वर्णित किए हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं |

1. क्रीड़ा में बलराम की उपस्थिति |

आए बलराम श्याम आई तजि काम वाम |

—सू0 सा0, पृ0 557

2. शीला नामक गोपी विशेष से कृष्ण का उलझना |

शीला नाम ग्वालिनी अचानक गहे कन्हाई |

—सू0 सा0, पृ0 556

3. बाँसों की मार |

उत जेरी धरे ग्वाल बांसन इत परी मार |

—सू0 सा0, पृ0 558

वारुणी-दान, राधाकृष्ण का गठबंधन, नंद को गाली, गर्दभारोहण, तिथि-क्रम से होली-वर्णन आदि ऐसे ही प्रसंग हैं जिनकी उद्भावना सूरदास ने अपनी प्रतिभा से की है |(—सू0 सा0, पृ0 567, 570)

वृन्दावन-वर्णन

हरिवंश, भागवत तथा ब्रह्म्वैवर्त आदि जिन पुराणों में कृष्णचरित उपलब्ध होता है उनमें वृन्दावन का भी वर्णन है | अनेक कवियों ने वत्सासुर-वध से रास तक की समस्त लीलाओं के अंतर्गत वृन्दावन का भी वर्णन किया है | ब्रज के राधावल्लभीय और गौड़ीय सम्प्रदाय में वृन्दावन की मान्यता विशेष होने के कारण इस प्रसंग पर स्वतंत्र रचनाएँ भी उपलब्ध हो जाती हैं, जैसे ध्रुवदास का 'वृन्दावन मधुरी' |

वृन्दावन की महत्ता को गुजराती के नरसी और ब्रज के सूर तथा नंददास ने स्वीकार किया है | नरसी ने वृन्दावन को वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ तथा शोभावान् कहा है | वृन्दावन के द्वादस वनों में नरसी ने 'महावन' और वासणदास ने 'परसोली' का उल्लेख किया है | सूर ने द्वादस वनों का संकेत मात्र किया है | नंददास ने वृन्दावन को 'चिद्धन' की उपाधि दी है| (सूरदास : सू0 सा0, पृ0 548; नंददास : नंद, पृ0 157 फा0 6)

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में वृन्दावन-वर्णन का एक निश्चित रूप था जिसका अनुकरण उस सम्प्रदाय के सभी कवियों ने किया, ध्रुवदास उसमें प्रमुख हैं | हित हरिवंश ने इसका सूत्रपात इस प्रकार किया |

प्रथम जथापति प्रणऊं श्री वृन्दावन अतिरम्य ||57||

—हितचौरासी

इस प्ररम्परा को व्यास तथा ध्रुवदास ने पूर्णतया स्वीकार किया | ध्रुवदास ने ब्यालीस लीलाओं में बहुत सी लीलाओं का प्रारम्भ वृन्दावन-वर्णन से ही किया है | 'वृन्दानसत' में पूर्णरूप से वृन्दावन की महिमा का गान है जिसके अनुसार कोटि वैकुण्ठों से भी श्रेष्ठ वृन्दावन की पृथ्वी मणिखचित स्वर्ण की है, सब लता कल्प-वृक्ष हैं तथा सब पुष्प पारिजात |(हरिराम : व्यास, पृ0 11,14) ध्रुवदास ने 'मंडलसभा सिंगार' में वृन्दावन में अगणित मंडलाकार कुञ्ज वनों का उल्लेख किया है जैसे, कमल कुञ्ज, श्रृंगार कुञ्ज, रंग कुञ्ज, विनोद कुञ्ज,आदि | 'रसमुक्तावली' में स्नान कुञ्ज,सिंगार कुञ्ज और भोजन कुञ्ज का भी वर्णन मिलता है | माधवदास की 'वृन्दावनमाधुरी' के वृन्दावन वर्णन में निम्नांकित बातें महत्वपूर्ण हैं |(माधवदास : माधुरीवाणी, पृ0 63,64,60)

1. सात रंग कुञ्ज | नरसी ने भी विभिन्न रंगों का वर्णन किया है |(न0 कृ0 का0,पृ0605)
2. सबसे बड़ा माधुरी-कुञ्ज है जिसमें 64 द्वार हैं, प्रत्येक द्वार पर एक सहचरी रहती है, जिसमें आठ मुख्य हैं |
3. वृन्दावन वृन्दा नामक सखी की प्रेरणा से इतना सौंदर्यशाली होता है |

बारहमासा और षड्ऋतु-वर्णन— षड्ऋतु- वर्णन की परम्परा कालिदास के ऋतुसंहार तक जाती है किंतु बारहमासा सम्भवतः साहित्य को लोक-काव्य से प्राप्त हुआ | षड्ऋतुओं का क्रमानुसार वर्णन प्रायः संयोग श्रृंगार के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत किया जाता रहा | बाद में उसका प्रयोग वियोग श्रृंगार में भी होने लगा | परंतु बारहमासा में विरह-भावना की अभिव्यक्ति होती रही | इस प्रकार वह अधिकतर वियोग श्रृंगार के ही अंतर्गत आता है |

ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य में इन दोनों परम्पराओं का परिपालन मिलता है | षड्ऋतु- वर्णन नंददास की 'रूपमंजरी' तथा ध्रुवदास की 'रसहीरावली' और सेनापति के 'कवित्तरत्नाकर' के अंतर्गत प्राप्त होता है | बारह महीनों का वर्णन नंददास की विरहमंजरी में मिलता है | सूरदास ने वर्षा, वसंत आदि विभिन्न ऋतुओं का पृथक-पृथक वर्णन किया है किंतु क्रमबद्ध रूप में षड्ऋतु-वर्णन नहीं मिलता | बारहमासा का भी वर्णन सूर-सागर में नहीं है |

नंददास का षड्ऋतु वर्णन भी वियोग पक्ष का ही प्रकाश करता है | रूपमंजरी नामक कुमारी अपना हृदय कृष्ण को दे देती है और उनकी प्रतीक्षा में दिन बिताती है | नंददास ने इसी स्थान पर षड्ऋतुओं के प्रभाव का वर्णन किया है |(नंददास : नंद,पृ0 16, 19) नंददास की रूपमंजरी मिलन सुख से अपरिचित है | उन्होंने वर्षा से यह वर्णन प्रारम्भ किया है | उनका षड्ऋतु- वर्णन अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि वह संयोग श्रृंगार की परम्परा से भिन्न है |

सेनापति का षड्ऋतु- वर्णन प्रायः विप्रलम्भ का ही उदाहरण है परंतु ध्रुवदास ने स्पष्ट रूप से उसे संयोग श्रृंगार की पृष्ठभूमि में चित्रित किया है | (ध्रुवदास रसहीरावली, छंद 79) यह वर्णन वसंत ऋतु से प्रारम्भ होता है जिसका कारण सम्भवतः संयोगावस्था ही प्रतीत होती है क्योंकि साहित्य में संयोग श्रृंगार के उद्दीपन रूप में वसंत ऋतु का विशेष स्थान है | ध्रुवदास ने सुख के आधार पर उपसंहार में छहों ऋतुओं का वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है |

बरिषा ग्रीषम नैन सुख, सरद वसंत विलास |

लपटन को सुख हिम सिसिर, प्रेम सुखद सब मास ||160||

बारहमासा का वर्णन गुजराती कृष्ण-काव्य में ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक मिलता है | नरसी, प्रेमानंद तथा रत्नेश्वर की रचनाएँ इसका प्रमाण हैं | इसका कारण यह है कि गुजरात में बारहमास वर्णन की परम्परा बहुत प्रचीन है | जैन काव्यों में इसके उदाहरण मिलते हैं जैसे 13वीं शती की रचना 'नेमिनाथ चतुष्पदी' | 16वीं शती की गणपति कृत 'माधवानल कामकंदला' नामक प्रसिद्ध रचना में भी 'बारहमासा' प्राप्त होता है | ब्रजभाषा में नंददास इस परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं |

द्वादश मास वर्णन में इन सभी कवियों ने स्वतंत्र क्रम का अनुसरण किया है | केवल प्रेमानंद तथा नंददास ने चैत से फागुन तक का सीमा क्रम ग्रहण किया है | नरसी ने 'कार्तिक' से, और रत्नेश्वर ने 'मार्गशिर' से बारह महीनों की गणना की है |

नंददास ने सारा बारहमासा चंद्रदूत को दिये संदेश के रूप में प्रस्तुत किया है |

दिष्टि परि गयौ चंदा गैन |

लागी ताहि संदेसो दैन |

— नंद0,पृ0 30

दानलीला

ब्रजभाषा में सूरसागर की दो दानलीलाएँ तथा मीरां, हरिदास आदि के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य अनेक कवियों के स्फुट पद प्राप्त होते हैं | 17वीं शती में ध्रुवदास की 'दानविनोदलीला', माधवदास की 'दानमाधुरी' तथा हरिराय जी की 'दानलीला' ये तीन स्वतंत्र रचनाएँ मिलती हैं | स्फुट पद तो अनेक कवियों के हैं |

उक्त दानलीलाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस लीला का कोई निश्चित रूप कवियों के सामने नहीं था, जिसके फलस्वरूप कृष्ण द्वारा दान माँगने के अतिरिक्त अन्य सभी बातों के वर्णन में भेद अवश्य मिलता है | अतएव संक्षेप में यहाँ सबकी रचनाओं की वस्तु प्रस्तुत की जाती है |

इस प्रसंग को सबसे अधिक विस्तार सूर ने दिया है | सूरसागर में उनकी दो दानलीलाएँ उपलब्ध हैं और पहली के अंतर्गत भी वस्तुतः दो दानलीलाओं का वर्णन है | इस प्रकार यह प्रसंग तीन बार वर्णित हुआ है (पृ0296-341) | पहली बार के वर्णन राधा का कोई उल्लेख नहीं है |

कृष्ण के सारे सखा 'पेड़-पेड़ तरु के लगे ठाठि ठगन को ठाट' छिप गए, ब्रज युवतियों के आने पर 'माखन दधि लियो छीनि कै' और 'चोली बंद' भी तोड़ डाले, कृष्ण ने अपना ईश्वरत्व प्रकट किया और 'जीवन दान लेउंगो तुमसे' कहा | गोपियाँ यशोदा के पास जाकर उलाहना देती हैं | 'मेरो हरि कहँ दसहिं बरस को तुम योवन मद उदमानी' कह कर वे गोपियों पर ही दोषारोपण करती हैं | सूर का प्रथम प्रसंग 'दानचरित सुख देखि के सूरदास बलि जाइ' के साथ समाप्त होता है | दानलीला का दूसरा प्रसंग कृष्ण, सुबल, सुदामा एवं श्रीदामा की राधा आदि को कालिंदी तट पर घेरने की योजना से प्रारम्भ होता है | दूसरे दिन कृष्ण सखाओं के साथ पेड़ों छिप रहने का निश्चय करते हैं | जब राधा सखियों समेत आती है तो उनको घेर लेते हैं | वार्तालाप होता है, कृष्ण अपने ब्रह्मत्व को प्रकट करते हैं | बहुत विवाद के बाद गोपियाँ आत्मसमर्पण करती हैं और कृष्ण 'गुप्तहिं जोवन दान' लेते हैं | जाने के पहले सब गोपियाँ अपना दधि माखन उनको खिला देती हैं पर मटकी भरी ही रहती है | इस पर गण-गंधर्व कह उठते हैं :

'धन्य ब्रजललनानि करते ब्रह्म माखन खात'

तीसरे प्रसंग में इंदा, बिंदा, राधिका, श्यामा, कामा आदि ब्रजनागरी श्रृंगार करके दधि बेचने जाती हैं और सखियों से यह कहला कर 'यहि बन में एक बार लूटि हम लई कन्हाई |' सूर इस प्रसंग को स्पष्टतया पूर्व-

प्रसंग से सम्बद्ध कर देते हैं | सारी घटनाएँ वैसी ही हैं | अंत में गोपियों ने 'तनु जोबन धन अर्पन कीन्हो मन दै मन हरि को सुख दीन्हो' और स्वतः दधि माखन खिलाया |

राधावल्लभी ध्रुवदास की 'दानविनोदलीला' में दानलीला की सारी घटना सखियों की इच्छा से घटित होती है | यमुना तट पर कृष्ण खड़े होते हैं राधा उधर से आती है | कृष्ण को दान के लिए जो कुछ कहना है , ललिता से कहते हैं | ललिता प्रवीण है | वह 'इहि ठां बिन कुंजेश्वरी नहि काहू की आन |' कह कर कृष्ण को राधा के चरण छूने का आदेश देती है | कृष्ण उसके पैरों पर शीश रख देते हैं और राधा रतिदान देकर कृष्ण को प्रसन्न कर देती हैं |

गौड़ीय कवि माधवदास की 'दानमाधुरी' में वर्णित दानलीला बहुत कुछ ध्रुवदास के ही समान, ललिता वहाँ भी मध्यस्थ है | राधा का प्रभुत्व वहाँ भी घोषित है | कृष्ण सखियों को सौरभ सुगंध लाने के लिए भेज कर एकांत की व्यवस्था करते हैं | इस प्रकार 'दान मिस दम्पति-सुख' का वर्णन किया गया है |

हरिराय जी की दानलीला में वर्णित वस्तु का साम्य नरसी की दानलीला से अधिक है | हरिराय जी ने कृष्ण के गोवर्धन पर चढ़ कर टेरने, कनक-कलश छीनने तथा राधा को कुञ्ज में ले जाकर मनाने का जो वर्णन किया है वह नरसी की दानलीला में भी मिलता है |

इस प्रकार दानलीलाओं को वस्तु की दृष्टि से तीन वर्गों में रक्खा जा सकता है :

1. वे रचनाएँ जिनमें दान का प्रसंग केवल राधा-कृष्ण के बीच की घटना है | ब्रजभाषा के हरिदास तथा गुजराती के नरसी की रचनाएँ इसी वर्ग में हैं |
2. वे रचनाएँ जिनमें राधा-कृष्ण के अतिरिक्त अन्य गोप-गोपियों का भी समावेश है | इस वर्ग में सूर की दूसरी और तीसरी दानलीला, माधवदास की 'दान माधुरी' तथा ध्रुवदास की 'दानविनोदलीला' आती हैं |
3. ऐसी रचनाएँ जिनमें राधा आदि गोपियों का विशेष का उल्लेख न करके समस्त गोपी समूह का वर्णन हो | सूर की पहली दानलीला तथा अन्य कवियों के कुछ स्फुट पद इसके अंतर्गत आते हैं |

सूर, माधवदास तथा ध्रुवदास ने दानलीला के अंत में संभोग का वर्णन किया है | सूर ने सभी गोपियों के साथ कृष्ण का रमण दिखाया है | पंक्ति में बिठा कर मंडली के साथ कृष्ण को दधि माखन खिलाने का सूर के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने वर्णन नहीं किया| माधवदास तथा ध्रुवदास की रचनाओं में मध्यस्थ का काम 'ललिता' को भी दिया गया है परंतु गुजराती में प्रेमानंद ने 'राही' को मध्यस्थ बनाया है | ब्रजभाषा के कवियों ने दानलीला में राधा को स्वकीया किंतु गुजराती के प्रेमानंद, भालण आदि ने परकीया का रूप दिया है |

मानलीला— यह प्रसंग 17वीं शती में सूरदास की तीन मानलीलाओं तथा कुछ स्फुट पदों में प्राप्त होता है | 17वीं शती में इस विषय पर ध्रुवदास की 'मानलीला' तथा माधवदास की 'मानमाधुरी', यह दो रचनाएँ मिलती हैं |

इन काव्यों में मानलीला के कई रूप मिलते हैं | प्रथम और महत्वपूर्ण रूप वह है जिसमें राधा कृष्ण के शरीर अथवा कौस्तुभ मणि में हुए अपने ही प्रतिबिम्ब को अन्य स्त्री समझ कर भ्रमवश मान करती है

और अंत में दूती, ललिता अथवा स्वयं कृष्ण द्वारा इस भ्रम का निवारण हो जाने पर मान त्याग देती है | मयण के अतिरिक्त दोनों भाषाओं के प्रायः सभी कवियों ने इसी वस्तु को किसी न किसी रूप में आधार बनाया है |

सूरदास, ध्रुवदास, माधवदास तथा हरिवंश ने मणि का उल्लेख न करके मान का कारण राधा द्वारा कृष्ण के शरीर में स्वप्रतिबिम्बित दर्शन लिखा है |(सूरदास : सू0 सा0,पृ0463;464; ध्रुवदास : मानलीला,2,3; माधवदास : मानमाधुरी, छंद,31; हरिवंश : हि0 चौ0 पद,7)

सूर के कृष्ण मानभंग के पश्चात पीताम्बर ओढ़ लेते हैं जिससे पुनः भ्रम न हो |

यहि डर रहत पीतंबर ओढ़े कहा कहौं चतुराई |

अब जनि कहै हिये में को है बहुरि परी कठिनाई |

—सू0 सा0,पृ 523

दूती के रूप में ललिता का नाम सूर की दूसरी मानलीला के अंत में मिलता है|(सू0 सा0,पृ 464,466,484,491,515; ध्रुवदास : मानलीला, छंद 9) यह माधवदास की मानमाधुरी में भी प्राप्त होता है | अन्यत्र कवियों ने प्रायः 'चतुरदूतिका, 'दूती' अथवा 'सखी' का ही प्रयोग किया है | माधवदास के कृष्ण भी मान दूर करने के बाद एक झीना वस्त्र ओढ़ लेते हैं |(माधवदास : मानमाधुरी, छंद 33,34)

मानलीला का दूसरा रूप वह जिसमें मान का कारण कृष्ण का बहुनायकत्व है | ऐसी दशा में राधा खंडिता होकर मान करती है | स्फुट रूप से ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने इस विषय के पद तथा छंद रचे हैं |

सूरसागर में प्रथम मानलीला के पश्चात राधा के खंडिता स्वरूप का अनेक पदों में विस्तृत वर्णन है | कृष्ण के बहुनायकत्व के प्रसंग में उन्हें ललिता, चंद्रावली,शील,वृन्दा आदि सखियों से अनुरक्त चित्रित किया गया है | (सू0 सा0,पृ 472,473,475,499) बड़ी मानलीला में राधा कृष्ण से मिलते ही बहुनायकत्व के पूर्वाभास के कारण रूठ जाती है | उसके इस मान का कारण उसका रूप-यौवन-गर्व भी है जिसकी ओर एक सखी संकेत करती है |

नहि तेरो अति ही हठि नीको |

सूर स्वरूप गर्व जोवन के जानति हो अपने सिर टीको |

—सू0 सा0,पृ 508

सूर की मानलीला में कुछ अन्य ऐसी विशेषताएँ भी शेष रह जाती हैं का उल्लेख आवश्यक है :—

1. बहुनायक कृष्णा की एक अनुरक्ता गोपी 'चन्द्रावली' का राधा के पास जाकर उससे सुरत-सुख की बात पूछना। (सूरदासः सू0सा0, पृ0 495)

2. पाँच वर्ष के बालक कृष्ण का सहसा तरूण होकर एकान्त अंतःपुर में राधा से रमण। (सूरदास: सू0सा0, पद 68, 73)

3. कृष्ण का दूती रूप धारणा करके स्वयं राधा का 'दृढ़ मान' छुड़ाना। (सूरदास: वही, पद 60, 69, पृ0 518, 520)

रास-लीला

कृष्ण-साहित्य की समस्त वर्ण्य-वस्तु में रास सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय रहा है। प्राचीन ग्रंथों में इसका वर्णन भास के बालचरित, तमिल शिलाप्पदिकरम् एवं आंडाल के तिरुपावै, ब्रह्म, विष्णु, हरिवंश, पद्म, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण और जयदेव के गीतगोविन्द में विशेष रूप से प्राप्त होता है। बालचरित तथा हरिवंश में रास की संज्ञा 'हल्लीषक' मिलती है। ('भास, ए स्टडी: ए0डी0 पुसालकर, बालचरित अंक तृतीय हरिवंशः '..... हरिवंशे विष्णुपर्वाणि हल्लीषक्रीडने सप्तसप्तमोध्यायः') तमिल साहित्य में इसे 'कुरवइ कुट्टू' कहा गया है। (इण्डियन कल्चर, ग्रन्थ 4, पृ0 268-69) शेष समस्त ग्रंथों में रास को रास के ही रूप में ग्रहण किया गया है। अर्थ की दृष्टि से सभी का तात्पर्य मंडलीरूप स्त्री-संयुक्त नृत्य विशेष से है। (हेमचन्द अभिधान: मंडलेन तु यन्नृत्यं स्त्रीणां हल्लीषस्तुतत् श्रीधर '.....स्त्रीषु सां गायतां मंडली रूपेण भ्रमतां नृत्य विनोदो रासो नाम'—इण्डियन कल्चर,ग्रंथ 4,पृ0269) यद्यपि भास कालीय नाग के फनों पर नर्तित कृष्ण के नृत्य को भी हल्लीषक ही कहते हैं जहाँ कथित परिभाषा घटित नहीं होती। (भासः बालचरित, अंक 3) पुराणों में रासवर्णन का प्राचीनतम रूप हरिवंश, ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण में प्राप्त होता है। भागवत तथा पद्मपुराण में अपेक्षाकृत वर्णन अधिक विस्तृत हो जाता है। पद्मपुराण में दंडकारण्यवासी ऋषियों की कथा समाविष्ट हो जाती है। ब्रह्मवैवर्त में रास का वर्णन उक्त पुराणों की तुलना में 'बहुत अंशों में' भिन्न रूप में उपलब्ध होता है। गीत-गोविन्द तक आते-आते रास के निम्नलिखित कई प्रकार उपलब्ध होने लगते हैं।

1. गोपी-कृष्ण रास

2. राधा- कृष्ण- गोपी रास

3. राधा- कृष्ण रास

ऋतु की दृष्टि से रास के दो भेद किये जा सकते हैं—

1. शारदी रास

2. वासंती रास

रास के ये सभी भेदोपभेद कृष्ण-काव्य में प्राप्त हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त गुजराती में स्थान भेद से वृन्दावन-रास की इस सारी परम्परा से भिन्न द्वारिका-रास का भी वर्णन मिलता है। इसी प्रकार ब्रजभाषा में राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास आदि के कमल-रास का वर्णन भी अन्यत्र नहीं मिलता। ब्रजभाषा के कतिपय कवियों ने ब्रह्मवैवर्त से प्राप्त राधा-कृष्ण विवाह के प्रसंग का भी रास के अन्तर्गत ही वर्णन किया है।

साधरणातया भागवत की रास पंचाध्यायी (दशम, अ0 2933) की वस्तु को ही आदर्श रूप में ग्रहण किया गया है यद्यपि उसे शुद्ध रूप में कम कवियों ने प्रस्तुत किया है। प्रायः उसमें ब्रह्मवैवर्त तथा गीतगोविन्द की परम्परा का मिश्रण कर दिया गया है। भागवत के रास-वर्णन की मूल-वस्तु को निम्नांकित अंशों में मुख्य रूप से विभाजित किया जा सकता है।

1. वेणुगीत

2. गोपी-कृष्ण संवाद

3. गोपी-गर्व, कृष्ण का अन्तर्धान होना, गोपियों का कृष्ण-लीलानुकरण तथा कृष्णान्वेषण

4. यमुना तट पर कृष्ण का प्रकट होना, संभाषण, महारास, वाद्य एवं संगीत तथा कृष्ण का अनेक रूप धारण

5. जल-क्रीड़ा।

रास के उपर्युक्त सभी प्रकारों, भेदों, विशिष्ट रूपों तथा भागवत रास के प्रमुख अंशों से सम्बन्धित सामग्री का निरूपण करने के पूर्व रास विषयक साहित्य का निर्देश कर देना अत्यन्त आवश्यक है।

16वीं में रास पर ही आधारित रचनाओं में सूरदास के बहुसंख्यक पद, नंददास की 'रासपंचाध्यायी' तथा 'सिद्धान्तपंचाध्यायी' और 17वीं में ध्रुवदास की 'ब्यासलीस लीला' को 'निर्तविलास' आदि अनेक रचनाएँ, माधवदास की वंशीवट एवं वृन्दावन विषयक कई माधुरियाँ गणनीय हैं। रहीम विरचित रासपंचाध्यायी का भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक सम्प्रदाय के अन्तर्गत रास के प्रसंग पर अनेक कवियों द्वारा पदों की रचना हुई और सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने भी इस विषय पर अनेक पद रचे। नंददास की सिद्धान्तपंचाध्यायी जैसी कोई रचना गुजराती में उपलब्ध नहीं होती जो रास के दार्शनिक महत्व पर प्रकाश डालने के निमित्त ही रची गई हो।

रास के विविध प्रकार (पात्रों की दृष्टि से)

गोपी-कृष्ण रास—कदाचित् रास का यह प्रकार परम्परा के रूप में सर्वाधिक प्राचीन है। बालचरित, हरिवंश, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण तथा भागवतपुराण का रास-वर्णन इसी परम्परा के अन्तर्गत आता है। (बालचरित, अंक 3, हरिवंशः विष्णु पर्व, अ0 10, श्लो0 18, ब्रह्मपुराणः अ0 118, श्लो0 15, विष्णुराणः पंचमांश, अ0 13 श्लो0 17) इन पुराणों में रास विषयक इतनी समानता है कि कतिपय वही श्लोक सभी में मिलते हैं। 'तावर्यमाणा' से प्रारंभ होने वाला श्लोक तीनों पुराणों में प्राप्त होता है। रास की मूलवस्तु उक्त पहले दोनों ग्रंथों में ही उपलब्ध हो जाती है जिसका विकास शेष तीनों पुराणों में क्रमशः होता गया है। इस परम्परा में राधा जैसी किसी गोपी विशेष का स्पष्ट उल्लेख न करके समस्त गोपी-समूह के साथ कृष्ण के रासरमण का वर्णन किया जाता है। भास के कतिपय गोपियों तथा बलराम का नाम अवश्य दिया है। (भागवतः दश0 स्कं0, अ0 33 श्लो0 बालचरितः अ0 3) किन्तु राधा के अभाव में अंततः उनका रास वर्णन इस परम्परा से बहुत पृथक नहीं है क्योंकि ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण में भी 'सहरामेण' से बलराम की उपस्थित का संकेत किया गया है। ब्रह्म-पुराण में गोपियों के नाम लेने की बात भी है पर नाम नहीं दिये हैं। (ब्रह्मपुराणः अ0 118)

रास-वर्णन की यह परम्परा ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य में भी व्यक्त हुई है किन्तु बलराम की उपस्थिति का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। केवल नंददास की रासपंचाध्यायी में ही उसके पूर्णतया भागवत पर आधारित होने के कारण इसका शुद्ध परिपालन हुआ है। अन्य परम्परानुसारी कवियों ने भी जहाँ पर भागवत का आधार लिया है वहाँ गोपी-कृष्ण रास का भी वर्णन मिल जाता है। (सूरदास सू0 सा0, पृ0 436) परन्तु सूर जैसे राधा-रास का वर्णन करने वाले कवियों के काव्य में पद ऐसे अपवाद स्वरूप ही प्रतीत होते हैं।

राधा-कृष्ण-गोपी रास—ब्रह्मवैवर्त पुराण के द्वारा भागवत की 'अनयाराधितोनूनं' से व्यंजित गोपी विशेष का राधा के रूप में स्पष्टीकरण तथा उसमें पाये जाने वाले राधामाधव के सखियों से युक्त विशद रास से

ही सम्भवतः इस राधा-कृष्ण गोपी रास की परम्परा का प्रारम्भ होता है। ब्रह्मवैवर्त के बाद राधामाधव से संयुक्त इस परम्परा का विविध रूपों में विकास हुआ जिसका एक प्रमाण गीतगोबिन्द है। (गीतगोविन्दः प्रथम सर्ग, अन्तिम श्लोक) परन्तु जयदेव ने राधा को रास से सम्बद्ध करते हुए भी गोपीकृष्ण रास के वर्णन में उन्हें पूर्ण पात्रता प्रदान नहीं की। 'ललितलवंगलता' वाले गीत में सखी राधा को ही 'नृत्यतियुवतिजनेनसमं' का वर्णन सुनाती है अतएव राधा की पात्रता का प्रश्न ही नहीं उठता।

गुजराती और ब्रज दोनों ही भाषाओं के कवियों ने इस परम्परा का अनुसरण किया है किन्तु इस अनुसरण के भी कई स्तर है। पहला स्तर वह है जिसमें रास का समस्त वर्णन लगभग भागवत के ही अनुसार किया है केवल गोपी विशेष के स्थान पर तथा एकाध अन्य स्थल पर राधा का उल्लेख कर दिया गया है। ब्रजभाषा के कवियों द्वारा रास में राधा का पूर्ण स्वीकार हुआ है अतः इस प्रकार की आंशिक स्वीकृति का कोई उदाहरण उसमें प्राप्त नहीं होता।

रास-वर्णन का दूसरा स्तर उन कवियों के काव्य में व्यक्त हुआ है जिन्होंने राधाकृष्ण के युगल रूप को सम्पूर्ण रास में स्थान दिया है और विभिन्न प्रसंगों में स्थल-स्थल पर राधा के अस्तित्व का प्रमाण दिया है। बहुत से कवियों का रास-वर्णन इस कोटि में आ जाता है। ब्रजभाषा के लगभग सभी साम्प्रदायिक कवियों ने इसी प्रकार का रास-वर्णन किया है। (सूरदासः सू0 सा0, पृ0 436, 447; नंददासः नंद0 प्र0, पृ0 176; हरिवंशः हितचैरासी, पद 71 हि0 से0 पृ0 36; गदाधरभट्टः श्री गदा0 वा0 पृ0 39; श्रीभट्टः नि0 भा0, पृ0 10 हरिव्यासः वही, पृ0 52; माधवदास: मा0 वा0, पृ0 4)

'राधा-कृष्ण-गोपीरास' वर्णन के तीसरे स्तर में कवियों ने राधा-कृष्ण सम्बन्धी कतिपय नवीन प्रसंगों का समावेश किया है जैसे राधाकृष्ण-विवाह, राधा की नथनी और हार का खो जाना । रास के अन्तर्गत विवाह का वर्णन सूरदास, ध्रुवदास आदि के काव्य में मिलता है, राधाकृष्ण-विवाह का मूल स्रोत भी वास्तव में ब्रह्मवैवर्त पुराण ही है किन्तु उसमें विवाह रास के पूर्व होता है। (ब्रह्मवैवर्त पुराणः कृष्ण जन्म खंड आ0 15 पृ0 502-3) सूर ने रास के अन्तर्गत ही विवाह की कल्पना की है। यह शरद निशि की लग्न तथा मुरली ध्वनि से गोपियों के न्योते जाने के प्रसंग से स्पष्ट है जिसका ब्रह्मवैवर्त के विवाह-वर्णन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। (सूरदासः सू0 सा0 पृ0 441-42, 444, गदाधर भट्ट: गदाधर वाणी, पृ0 36 40, 46) ध्रुवदास ने 'मंडलसभासिंगार' में पहले विवाह का वर्णन किया है फिर रास का। (ध्रुवदासः मंडल सभा सिंगार, पृ0 129, 150, 152) वनविहारलीला में पुनः विवाह का सर्वांगीण निरूपण मिलता है जिसमें गठजोरा, दूधाभाती के बाद 'रैनि सुहाग' का भी वर्णन है किन्तु रास से उसका कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है। राधावल्लभीय गौड़ीय, हरिदासी तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों द्वारा राधा-कृष्ण का वर्णन 'दम्पति' अथवा 'दूलह दुलहिनी' के रूप में विशेष रूप से प्राप्त होता है फलतः रास प्रसंग में विवाह-वर्णन का उतना आग्रह नहीं मिलता। रास में अधिकतर राधा कृष्ण दम्पति के रूप में चित्रित किये गये हैं जैसा द्वितीय स्तर के राधा-कृष्ण-गोपीरास वर्णन से स्पष्ट है।

राधा-कृष्ण रास— ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्णजन्म खंड के 52वें अध्याय के अन्तर्गत राधाकृष्ण के एकान्त रास का भी वर्णन मिलता है और इसे राधामाधवरास की संज्ञा भी दी गई है। (संशोधनने मार्गे, पृ0 132) कृष्ण राधा के साथ अन्तर्धान हो जाने के अनन्तर उन्हीं के साथ रास-क्रीड़ा करते हैं। ब्रजभाषा में सूरदास ने कृष्ण का राधा के साथ अन्तर्धान होना तो वर्णित किया है परन्तु इस प्रकार के रास का वर्णन उस प्रसंग में नहीं है (सू0 सा0, पृ0 448) और किसी अन्य कवि ने भी नहीं किया, किन्तु अन्तर्धान होने के प्रसंग से भिन्न

स्थलों पर राधामाधव रास विषयक पद सूरदास, हरिवंश, गदाधर आदि कवियों ने रचे हैं यद्यपि उनमें उक्त गुजराती कवियों की भाँति एकान्त एकान्त का निर्देश नहीं है।(सूरदास : सू0 सा0,446; हितहरिवंश : हि0चौ0 पद 62; हरिव्यास : नि0भा0 पृ0 52; गदाधर : गदा0 वा0 34)

रास के विविध प्रकार [समय (ऋतु) की दृष्टि से]

शारदी रास— शरद काल को पूर्णिमा के अवसर पर रास-क्रीड़ा वर्णन करने की परम्परा का मौलिक रूप में गोपी-कृष्ण रास की परम्परा से अभिन्न सम्बन्ध रहा है। जिन पुराणों में इस रास का वर्णन मिलता है उन्हीं में शरद ऋतु का भी उल्लेख मिलता है—

शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्र रतिम्प्रति।

—हरिवंश, विष्णु पर्व, अ0 77

कृष्णस्तु विमलं व्योम शरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम्।

—विष्णुपुराण 5:13:14

—ब्रह्मपुराण अ0 118

शरदोत्फुल्ल मल्लिका।

—भागवत, 10: 29:1

ब्रह्मवैवर्त में पूर्णिमा के स्थान पर त्रयोदशी का वर्णन है, ऋतु नहीं दी है—

शुभे शुक्ल त्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने।

—अ0 28

ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य में इस परम्परा के अनुकरण के अगणित प्रमाण हैं और यह प्रमाण पूर्वाल्लिखित रास के लगभग सभी प्रकारों में उपलब्ध हो जाते हैं। कवियों ने गोपी-कृष्ण रास, राधा-कृष्ण-गोपीरास तथा राधा-कृष्णरास सभी को शारदी रास के रूप में चित्रित किया है। सूरदासः सू0 सा0, पृ0 430, 454; हरिव्यास: व्या5 वा0, पृ0 457, 460; नंददास: नर0, पृ0 179; हितहरिवंशःहि0चौ0, पद 71; हरिव्यास: नि0 भा0, पृ0 52; ध्रुवदास: मं0 स7 सि0; माधवदास: मा0 वा0 262) उन वर्णनों में जिस 'खटमासी' रात्रि का उल्लेख है उसका मूल कदाचित् ब्रह्मवैवर्त में वर्णित एक मास रात्रि है |(ब्रह्मवैवर्त : कृ0 खं0,अ0 52)

वासंती रास— इस प्रकार के रास में प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सामूहिक नृत्य का वर्णन विशेष रूप से किया गया है यद्यपि पौराणिक परम्परा की छाया भी यत्र-तत्र मिल जाती है। कृष्ण-काव्य में शारदी रास की तरह इस रास की भी परम्परा पर्याप्त प्राचीन प्रतीत होती है। 'बालचरित' का रास-वर्णन यद्यपि अधिक अंशों में वासंती रास ही प्रतीत होता है किन्तु ऋतु सम्बन्धी कोई उल्लेख न होने से उसे उन दोनों परम्पराओं में से किसी में भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। ब्रह्मवैवर्त में इसका सूत्र अवश्य मिलता है—

कृत्वा क्रीड़ां तत्रैव वासंती काननं ययौ

रमे तत्रैव रासेशो वसन्ते सुमनोहरे।।

—क0 खंड, अ0 53

और 'गीतगोविन्द' पर भी इस की छाया है—

विहरति हरिरिह सरस वसंते

नृत्यति युवति जनेन समं सखि विरहि जनस्य दुरंते।

—प्रथम सर्ग

मैथिल कवि विद्यापति के पदों में भी वासंती रास के वर्णन मिलते हैं।(विद्यापति : विद्यापति पदावली,पृ0 243) कदाचित् प्राकृत एवं अपभ्रंश काव्यों में इस रास की परम्परा प्रचलित रही जिसके दर्शन 15वीं शती के गुजराती कवि नयर्षि के 'फागु' काव्य में होते हैं। (नयर्षि: फागु, छंद 16 17 28) 16वीं शती के केशवदास ने वासंती रास का अधिक स्पष्ट वर्णन किया है। (केशवदास: श्रीकृ0 ली0 का0, पृ0 112, 114) ब्रजभाषा में भी इसके कतिपय उल्लेखनीय संकेत मिल जाते हैं |(सूरदास : सू0 सा0, पृ0 460) गुजराती में वासणदास ने सूर की तरह ही प्रारंभ में शरद ऋतु का निर्देश करके अन्त में एक स्थल पर वसंत का उल्लेख किया है। सूर तथा अन्य अनेक कवियों ने वसंत विषयक पदों में नृत्य का वर्णन किया है परन्तु वह होली से सम्बद्ध है।

रास के विविध प्रकार (स्थान की दृष्टि से)

वृन्दावन रास— ब्रजभाषा के सभी कवियों ने रास-क्रीड़ा का क्षेत्र वृन्दावन का यमुनातट माना है जिसका उल्लेख सभी वर्णनों से प्राप्त होता है। सूर ने इस क्षेत्र की सीमाएँ भी दे दी है। (सूरदास: सू0 सा0, पृ0 459)

द्वारका रास— गुजराती के नयर्षि और नरसी ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने द्वारका में रास का चित्रण किया है। (क. नयर्षि : फागु0 काव्य, 2, 41, 61 ख. नरसी : न0 कृ0 का0, पृ0 76)

भागवत के रास को मूलवस्तु के आधार पर रास-वर्णन के विभिन्न अंशों का अध्ययन—इस वस्तु का विभाजन विवेचन के प्रारंभ में ही किया जा चुका है। अनुवादकों के अतिरिक्त कई कवि ऐसे मिलते हैं जिन्होंने भागवत की लगभग सम्पूर्ण वस्तु का अपने ढंग से उपयोग किया है जैसे सूर और नंददास। साथ ही बहुत से कवि ऐसे हैं जिन्होंने अनेक महत्वपूर्ण अंशों को अपने रास-वर्णन में स्थान नहीं दिया। कुछ ने परिवर्धन और कुछ ने संक्षेप भी किया है। भागवतेतर परम्परा के रास-वर्णन में भी भागवत के रास की छाया मिलती है। इस समस्त वस्तु स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए पूर्वोक्त प्रमुख अंशों पर क्रमशः विचार करने की आवश्यकता है।

1. **वेणु-गीत—**गीत के द्वारा गोपियों को आकर्षित करने की बात ब्रह्म तथा विष्णुपुराण आदि में भी प्राप्त होती है। (ब्रह्मपुराण : अ0 118; विष्णुपुराण पंचमांश, अ0 13) किन्तु बालचरित तथा हरिवंश में इसका उल्लेख नहीं मिलता। पौराणिक परम्परा के अनुसार भागवत ने 'जगौकलं वामदृशां मनोहरं' लिखा और उसे **'अनंग वर्धन'** भी कहा। आगे चल कर भागवतकार ने स्पष्ट कर दिया कि यह गीत केवल गीत न होकर वेणु-गीत है। (भागवतः स्कं0 10, अ0 28, श्लो0 18; वही, स्कं0 10, अ0, 29 श्लो0 40)

ब्रजभाषा के लगभग सभी कवियों ने रासारंभ में इस वेणु-गीत का उल्लेख किया है किन्तु सूर ने—

'सूर नाम लै लै जन जन के मुरली बारंबार बजाई'

लिखकर कदि्चत् बालचरित तथा ब्रह्मपुराण का अनुसरण किया है। जयदेव तथा विद्यापति ने भी ऐसा वर्णन किया है। (जयदेव: गीतगोविन्द, 5:11:2 'नाम समेतं...; 'विद्यापति : पदावली 1) नंददास ने तो भागवत के **'योग माया मुपाश्रितः'** को वेणु से सम्बद्ध करके उसे 'जोगमाया की मुरली' कह डाला। ब्रजभाषा के अन्य अनेक कवियों ने वेणु-गीत का उल्लेख अपने काव्य में किया है। (सूरदास : सू0सा0, पृ0 430, 457; नंददास : नंद0 प्र0, पृ0 160; हितहरिवंश : हि0 चौ0, पद 36; गदाधर भट्ट : श्रीगदा0 वा0, पृ0 35; श्रीभट्ट नि0 मा0, पृ0 9; मीरां: मी0 पदावली, पृ0 58) कृष्ण की बाँसुरी को लेकर उपालंभ के रूप में सूर आदि अनेक कवियों ने स्वतंत्र रूप से काव्य रचना की।

2. **गोपी-कृष्ण संवाद—** वेणुनाद से आकृष्ट **'तावार्यमारणः पतिभि..... मोहिता'** गोपियों को कृष्ण घर लौट जाने का आदेश देते हैं जिसका वे उत्तर देती हैं। इस गोपी-कृष्ण संवाद (भा0 10: 29: 18-41) का वर्णन सूरदास, नंददास आदि वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में ही उपलब्ध होता है। सूर ने इसका विशेष विस्तार से वर्णन किया है। (सूरदास: सू0 सा0, पृ0 433, 435; नंददास: ननं प्र0, पृ0 163)

3. **गोपी-गर्व तथा कृष्ण का अंतर्धान होना—** उन्तीसवें अध्याय में ही उक्त संवाद के उपरान्त रमण में गोपियों के गर्वित होने तथा उस गर्व के कारण कृष्ण के अंतर्धान होने का प्रसंग भागवत में आता है। यह प्रसंग रास की अत्यन्त प्रमुख घटना है। भागवत में कृष्ण के अंतर्धान होने की बात दो स्थलों पर मिलती है। एक बार कृष्ण गोपियों में सौभगमद होने पर अंतर्धान होते हैं और दूसरी बार उस गोपी विशेष की स्कंधारोहण की इच्छा पर जो पहली बार उनके साथ अंतर्धान हुई थी। (भागवतः 10 29: 48: 10: 30 38) ब्रह्मवैवर्त में भी दोनों अंतर्धानों का वर्णन है। (ब्रह्मवैवर्त कृ0 खं0 29:12: 52:4) यह आश्चर्य की बात है कि नंददास जैसे भागवतानुकूल रासवर्णन करने वाले कवि ने पहले अंतर्धान को 'मंजु कुंञ्ज में तनक दुरे' के रूप में परिणत कर दिया और दूसरे का केवल 'किधौं चंद सौ रूसि चन्दिका रहि गई पाछे' लिखकर संकेत भर कर दिया है। सूर ने दोनों का स्पष्ट वर्णन किया है। (सूरदास: सू0 सा0, पृ0 448) गोपी-कृष्ण संवाद की तरह ही ब्रज के अन्य सम्प्रदायों के कवियों द्वारा अंतर्धान के प्रसंग का भी वर्णन नहीं हुआ है।

विरह-विह्वल गोपियों द्वारा कृष्णलीलानुकरण— भागवत में कृष्ण के अंतर्धान हो जाने के पश्चात् गोपियों की विरहावस्था का विशद चित्रण है जिसमें वे कृष्ण की अनेक लीलाओं का अनुकरण करती है। (भागवत : 10 :30 : 14, 23) भागवतानुयायी पूर्व निर्दिष्ट कवियों ने ही इसका भी वर्णन किया है। सूर ने स्पष्ट लिखा है—

करति है हरिचरित्र ब्रज नारि।

देखि अति ही विकल राधा इहै बुद्धि विचारि।

—सू0 सा0, पृ0 452

सूर का वर्णन भागवत से कई प्रकार भिन्न है। एक तो यह कि भागवतकार ने इसका वर्णन गोपी विशेष से भेंट होने के पूर्व किया है दूसरे उसका उद्देश्य तन्मयता व्यक्त करना है परन्तु सूर ने राधा से गोपियों की भेंट हो चुकने पर राधा की विह्वलता-निवारण के लिए इसका वर्णन किया है। नंददास ने भागवत का ही अनुसरण किया है। (नंददास : नंद0, पृ0 169)

पदांक दर्शन एवं कृष्णान्वेषण—पूर्व प्रसंग से यह प्रसंग सम्बद्ध है अतः इसकी भी स्थिति पूर्ववत् है। ब्रह्मवैवर्त में इसका वर्णन नहीं है (सूरदास : सू0 सा0, पृ0 449; नंददास : नंद0 प्र0, पृ0 169)।

4. **यमुना तट पर कृष्ण का प्रकट होना तथा संभाषण—** यमुना तट का वर्णन तो अन्य कवियों में भी प्राप्त होता है पर प्रसंग के क्रम तथा संवाद से युक्त वर्णन भागवतानुयायी कवियों में ही मिलता है (नंददास : नंद प्र0, पृ0 171)। भागवत के दशम स्कंध का बत्तीसवें अध्याय में इसी प्रसंग का वर्णन है। सूर ने केवल कृष्ण के प्रकट होने का वर्णन किया है।

महारास— इसके वर्णन में प्रायः कवियों ने भागवत के दशम स्कंध के तैतीसवें अध्याय से प्रेरणा ली है | इस विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि सूर ने इसी महारस का दो बार वर्णन किया है | भागवत में कृष्ण के अंतर्धान होने से पहले उनका गोपियों के साथ केवल रमण करना **'बाहु प्रसार परिरम्भ.....रमयांचकार'** वर्णित है | सूर ने यहाँ अपनी स्वतंत्र उद्भावना से रास का सांगोपांग वर्णन किया है | उनके इस रास-वर्णन पर ब्रह्मवैवर्त का भी कुछ प्रभाव लक्षित होता है। इस महारास के भी दो उपाय उपांग है—

1. वाद्य संगीत का आयोजन
2. कृष्ण का अनेक रूप धारण

वाद्य संगीत का आयोजन

ब्रजभाषा में हरिदास आदि अनेक कवियों ने अपनी गान विद्या की अभिज्ञता का परिचय रास में वाद्य-संगीत के आयोजन-वर्णन में दिया है। (हरिदासः नि0मा0, पृ0 215, 126; हरिव्यास देवः वही, पृ0 44, 51, 52; सूरदास: सू0 सा0, पृ0 446) भागवत में संगीत शास्त्र के ज्ञान का प्रदर्शन नहीं हैं। रास में 'उरप-तिरप' का वर्णन अष्टछाप के कवियों ने भी अनेक बार किया है।

कृष्ण के अनेक रूप-धारण

भागवत में कृष्ण का अनेक रूप-धारण का वर्णन स्पष्टतया मिलता है **कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः** (10:33:20)| ब्रह्मवैवर्त में इस विषय की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि वहाँ रास में गोपियों के साथ उतने ही गोपों की उपस्थिति भी वर्णित है। कवियों ने गोपियों की 16000 संख्या का उल्लेख किया है जो भागवत में नहीं है। सूर कृष्ण के अनेक रूप धारण करने के साथ ही उन रूपों में प्रत्येक गोपी के साथ विवाह तथा रमण करने का भी उल्लेख करते हैं, जो ब्रजभाषा के अन्य कवियों में नहीं प्राप्त होता है। (सूरदास: सू0 सा0, पृ0 456,457,437) 'द्वै द्वै गोपिन बीच जु मोहनलाल बने छबि' से स्पष्ट होता है कि नंददास ने भागवत का पूर्ण आधार लिया है और गोपियों की संख्या नहीं दी। हरिवंश, ध्रुवदास, श्रीभट्ट, गदाधर भट्ट तथा हरिदास आदि राधा-प्रधान सम्प्रदायों के कवियों में कृष्ण के अनेक रूप धारण का वर्णन नहीं प्राप्त होता। इसका कारण 'दम्पित' अथवा युगल रूप का आग्रह तथा राधा की अन्य गोपियों की अपेक्षा श्रेष्ठता व्यंजित करना प्रतीत होता है। इसका प्रतिकूल भागवत में किसी गोपी विशेष को केन्द्ररूप में न लेकर सारी गोपियों की समानता प्रकट की गयी है।

5. **जल-क्रीड़ा—**भागवत में रास के अंत में यमुना में कृष्ण-गोपियों की जल-क्रीड़ा का वर्णन है। (भागवतः कृ0ख0 28:80) सूर, नंददास, श्रीभट्ट आदि ने इस जल-क्रीड़ा का स्वतन्त्र रूप से विकास किया है। (सूरदास : सू0 सा0, पृ 454,455; नंददास : नंद0, पृ0 180; श्री भट्ट : नि0 मा0; पृ0 18; ध्रुवदास : मं0 स0 सि0

छंद 191) माधवदास ने जल-क्रीड़ा का वर्णन रास से पहले संध्या समय ही कर दिया है और अन्त में सेज-सुख का चित्रण किया है। (माधवदास: भा0 वा0, पृ 25, 40)

रास में संभोग वर्णन है— भावना के आवेश में श्लीलता तथा अश्लीलता का ज्ञान नहीं रह जाता। इसी के परिणामस्वरूप रास के अन्तर्गत संभोग का भी वर्णन किया गया है।

कृष्ण-काव्य में मथुरा और द्वारका-लीला

अक्रूर के साथ कृष्ण का मथुरा-गमन— सूरदास के अतिरिक्त अन्य किसी ब्रजभाषा के कवि ने इस विषय को महत्व नहीं दिया। सूरदास ने भागवत के 38, 39, 40वें अध्यायों की कथा को परिवर्धित रूप में प्रस्तुत किया है।

कंस का कृष्ण-बलराम को बुलाने के लिए प्रेरित होना— भागवत में यह प्रेरणा कंस को नारद से तथा ब्रह्मवैवर्त में एक भयंकर स्वप्न से मिलती है, सूर ने दोनों को एक सूत्र में बाँध दिया है। स्वयं कृष्ण नारद को कंस के पास जाने के लिए कहते हैं तब कंस अक्रूर द्वारा उन्हें बुलाने का निश्चय करता है। वह भयभीत होकर एक दुःस्वप्न देखता है। ब्रह्मवैवर्त में वर्णित शंकित राधा के स्वप्न देखने के प्रसंग को किसी कवि न नहीं उठाया।

अक्रूर को जल में कृष्ण दर्शन— भागवत के अनुसार जब अक्रूर मार्ग में यमुना स्नान करते हैं तो उन्हें जल में कृष्ण के दर्शन होते हैं। फिर कर देखने पर कृष्ण रथ में बैठे हुए वैसे ही दिखाई पड़ते हैं। अक्रूर द्वारा उद्विग्न हो जाते हैं। भागवत में इस प्रकार कृष्ण के दर्शन का कोई कारण नहीं दिया किन्तु सूर ने अन्तर्द्वंद्व में में फँसे हुए भक्त के संदेह निवराणार्थ कृष्ण दर्शन कराया है जिससे उनकी प्रभुता को समझकर सन्तुष्ट हो जाये। (सूरदासः सू0सा0,पृ0 587)

मथुरा-दर्शन, रजक-वध, और माली पर कृपा तथा कुब्जा-उद्धार— भागवत में वर्णित मथुरा-प्रवेश और धनुर्भंग के बीच घटित होने वाली इन अनेक छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन दशमस्कंधकारों ने प्रसंगानुकूल किया है। ब्रजभाषा में केवल सूरसागर में ही इनका वर्णन मिलता है। कंस के जिस रजक का वध कृष्ण ने किया था सूर ने उसका सम्बन्ध तणावर्त से स्थापित कर दिया। माली का नाम भागवत में 'सुदामा' दिया है और सूर ने भी वही दिया है। कुब्जा के प्रसंग में सूरसागर में कृष्ण द्वारा सम्पत्ति तथा रूप् दान का संकेत मिलता है। (सूरदासः सू0सा0, पृ0 602)

धनुर्भंग तथा कुवलयापीड, चाणूर, मुष्टिक आदि के पश्चात् कंस का वध— इन घटनाओं का भी वर्णन दशमस्कंधकारों ने पूर्ववत् किया है जिसमें अनुवादात्मकता ही अधिक है। सूरदास ने धनुर्भंग के प्रसंग में कंस द्वारा किसी एक असुर के भेजे जाने का वर्णन किया है जिसे कृष्ण मार डालते हैं। इसका उल्लेख भागवत आदि में कहीं नहीं है। (सूरदासः सू0सा0, पृ0 592)

कुवलयापीड से युद्ध करने में सूर ने कृष्ण बलराम दोनों का योग दिखाया है। अन्य पुराणों में जितने मल्लों के नाम मिलते हैं, भागवत में उनमें 'शल' और 'कूट' के नाम और जुड़ गये हैं, जिनका वध कृष्ण और राम करते हैं। सूरसागर में इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। कंस-वध जैसी महत्वपूर्ण घटना को किसी कवि ने समुचित रूप में चित्रित नहीं किया। फूढ़ का 'मल्ल अखाडानां चन्द्रावला' नामक गुजराती काव्य इस विषय का एकमात्र स्वतंत्र प्रयास है।

उग्रसेन को राज्य-दान, वसुदेव देवकी का कारा से मोक्ष, उपनयन संस्कार तथा सांदीपनि से शिक्षा-प्राप्ति—अधिकतर कवियों ने इन प्रसंगों का निर्देश मात्र कर दिया है। सूरसागर में सांदीपनि का प्रसंग है ही नहीं। वसुदेव देवकी की मुक्ति के पश्चात् कृष्ण नंद को विदा कर देते हैं और वे यशोदा को कृष्ण के गोकुल न लौटने की सूचना देते हैं। सूरदास ने इस अंश का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। नंद यशोदा संवाद के अनन्तर उससे भी अधिक विस्तार से गोपियों तथा ब्रजवासियों की विरहावस्था का चित्रण किया है। यशोदा और राधा दोनों ही पंथियों द्वारा देवकी और कृष्ण तक संदेश भेजती हैं। (भागवत: 10: 48: 28, 27 केशवदास : श्रीकृ0 ली0 का0, पृ0 137)

भ्रमरगीत— 16वीं शती में सूरदास ने सूरसागर के अंतर्गत इस प्रसंग का विस्तार से वर्णन किया है तथा नंददास ने 'भँवर-गीत' नामक एक स्वतंत्र रचना की | तुलसी की कृष्णगीतावली में तथा अष्टछाप के अन्य कवियों के स्फुट पदों में इस विषय के भी पद प्राप्त होते हैं | कृष्णदास का 'भ्रमरगीत' संदिग्ध रचना है | 17वीं शती में कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती केवल मुक्तकों में उद्धवगोपी संवाद यत्र-तत्र वर्णित हुआ है | ब्रजभाषा में 'भ्रमरगीत' सम्बंधी रचनाएँ गुजराती की अपेक्षा बहुत कम उपलब्ध होती हैं |

इस प्रसंग का आधार यों तो भागवत के दशम स्कंध के 46, 47 अध्याय हैं। किन्तु अनुवादकों को छोड़कर अन्य सभी ने इसमें कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य किये हैं। निम्नांकित विषयों के परिवर्तन विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

1. उद्धव के ब्रज-गमन का हेतु
2. नंद यशोदा से भेंट
3. कृष्ण का सन्देश
4. भ्रमर के प्रति उपालंभ
5. गोपी-उद्धव-संवाद का आधार
6. उद्धव की कृष्ण से भेंट तथा ब्रज-दशा वर्णन

उद्धव के ब्रज-गमन का हेतु— भागवत के कृष्ण उद्धव को अपना सन्देश देकर नंद-यशोदा को प्रसन्न करने तथा गोपियों का विरहजन्य दुख दूर करने के लिए भेजते हैं। सूरदास के कृष्ण उद्धव को गोपियों को ज्ञान सिखाने के लिए नहीं परन्तु स्वयं उनका ज्ञान-गर्व नष्ट करने के लिए ब्रज भेजते हैं। इस प्रकार सारी कथा का केन्द्र ही बदल जाता है।

नंद यशोदा से भेंट— भागवत के दशम स्कंध के 46वें अध्याय में उद्धव तथा नंद यशोदा के बीच होने वाले वार्तालाप का ही वर्णन है। सारी रात्रि वे नंद की जिज्ञासा और यशोदा का दुख शान्त करने के लिए ज्ञानोपदेश देते रहे।

सूरदास ने इस प्रसंग का वर्णन बहुत ही संक्षेप में किया है। उद्धव कृष्ण का जो संदेश यशोदा को देते हैं उसमें ज्ञान का किंचित् भी स्थान नहीं है। भागवत में उद्धव गोधूलि वेला में आते हैं और नंद उनका स्वागत करते हैं किन्तु सूरदास ने झुण्ड की झुड गोपियों का नंदादि के साथ स्वागतार्थ जाना वर्णित किया है—

नन्द हर्षित चले आगे सखा हर्षत अंग।

झुण्ड झुण्डन नारि हर्षत चली उदधि तरंग।।

—सू0 सा0, पृ0 646

भागवत के अनुसार गोपियों को उद्धव का रथ देखकर अक्रूर के पुनरागमन का भ्रम होता है, कृष्ण बलराम के आगमन का नहीं किन्तु सूरदास ने दोनों का ही वर्णन किया—

1. कैधों बहुरि अक्रूर क्रूर है जियत जानि उठि धायो है।

—सू0 सा0, पृ0 648

2. आवत बलराम श्याम सुनत दौरि चलीं बाम।

मुकुट झलक पीतांबर मन मन अनुरागे।

—वही, पृ0 646

इस प्रकार सूर ने भागवत की वस्तु को नवीनता दे दी है।

कृष्ण का संदेश— भागवत के कृष्ण उद्धव को मौखिक रूप से अपना संदेश देकर गोपियों की वियोग-व्याथा दूर करने का आग्रह करते हैं परन्तु वह संदेश क्या था इसका उसमें उल्लेख नहीं है। सूर के कृष्ण नंद-यशोदा, राधा, श्रीदामा तथा एक मित्र विशेष को पृथक्-पृथक् लिखित संदेश देते हैं—

पाती लिखि ऊधो कर दीन्हीं।

—सू0 सा0, पृ0 643

कुब्जा भी राधा के लिए ऊधो को पाती लिख कर देती है।

तुलसी की 'कृष्णागीतावली' तथा नंददास के 'भँवरगीत' में पाती का प्रसंग नहीं है। उद्धव को मौखिक संदेश ही दिया गया है।

भ्रमर के प्रति उपालंभ— भागवत में उद्धव-गोपी-संवाद के समय कहीं एक भौंरा आ जाता है जिसको गोपियाँ कृष्ण का दूत मानकर कृष्णा को उपालंभ देने लगती हैं। (भागवत : 10:47:11) इसी के आधार पर सारा प्रसंग 'भ्रमरगीत' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

गोपी-उद्धव-संवाद— भागवत में जो संदेश उद्धव ब्रजवासियों को देते हैं उसको सुनकर किसी में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। गोपियाँ अवश्य कृष्ण की स्मृति में विभोर हो जाती हैं किन्तु उसी से उनका विरह-निवारण भी हो जाता है और वे उद्धव की पूजा करती हैं। उद्धव भी ज्ञान का संदेश देने के पूर्व और पश्चात् गोपियों की भक्ति की मुक्त हृदय से प्रशंसा करते हैं। (भागवतः 10: 47,: 39, 25, 59, 58) इससे स्पष्ट विदित होता है कि ज्ञान तथा भक्ति, निर्गुण तथा सगुण और योग तथा उपासना में प्रतिद्वंद्विता दिखाकर एक से दूसरे

को श्रेष्ठ सिद्ध करना भागवतकार का उद्देश्य नहीं था। इसके विपरीत ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने गोपियों द्वारा उद्धव के संदेश की कटु आलोचना, परिहास तथा तिरस्कार कराया है। ज्ञान और योग द्वारा निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के निवृत्ति मार्ग को उपहासास्पद सिद्ध करके गोपियाँ भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती हैं और उद्धव अन्त में पराजित होकर उसे स्वीकार कर लेते हैं। सूरदास भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन गोपियों का ही नहीं, कृष्ण का भी अभीसिप्त सिद्ध करते हैं। ब्रजभाषा के अन्य कवियों ने प्रायः सूर का ही अनुकरण किया है। इस प्रकार यह संवाद अपने आप में भागवत से पर्याप्त भिन्न रूप में विकसित हुआ है। नंददास ने उद्धव द्वारा ज्ञान पक्ष को विशेष विस्तार के साथ प्रस्तुत कराया है। संवाद के ही अन्तर्गत सूर ने कृष्ण की विविध लीलाओं तथा अवतारों का भी संदर्भ दिया है। (सूरदास: सू0 सा0, पृ0 655, 656, 669)

कुब्जा के प्रति व्यंग— भागवत की गोपियाँ कुब्जा के प्रति स्पष्ट रूप से व्यंग कहीं भी नहीं करतीं। एक स्थल पर मथुरा के माध्यम से सपत्नी के प्रति ईर्ष्या-भाव का प्रदर्शन मिलता है। मथुरा की स्त्रियों के प्रति भी इसी भाव का जिज्ञासा मिश्रित प्रदर्शन किया गया है। इसके अतिरिक्त कई स्थलों पर लक्ष्मी के प्रति उपालंभ स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। (भागवत: 10: 47: 12, 42, 43, 15, 20) वस्तुतः कवियों ने कुब्जा को व्यंग्य का आधार बना कर उसे वही स्थान दे दिया जो भागवतकार ने लक्ष्मी को दिया है। इस विषय में सूर, नंददास आदि सबकी स्थिति एक सी है। सूर की गोपियों के पास कुब्जा ने पत्र भी भिजवाया है जिससे वे भ्रमर के प्रति 'कुबिजा तोहिं पठायो' कह कर और भी कटु व्यंग्य करती हैं। (सूरदास: सू0 सा0, पृ0 665; नन्ददास: नंद0 पृ0 137)

उद्धव का कृष्ण के मिलकर ब्रज-दशा-वर्णन— भागवत के उद्धव के, गोपियों के भक्ति-भाव से, प्रभावित होने का विस्तार से वर्णन है, किन्तु कृष्ण से मिलकर उन्होंने क्या कहा इतना संकेतमात्र हैं—

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकासाम्

वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात्।।70।।

—द0स्कंध 47 अध्याय

सूरदास के उद्धव कृष्ण को अत्यंत विस्तार से ब्रज का समाचार देते हैं तथा भक्ति की महत्ता, ज्ञान योग की पराजय तथा गोपियों की विरह दशा का भी विशद वर्णन करते हैं। नंददास ने भी अपने भंवरगीत के अन्त में इसी प्रकार का संक्षिप्त वर्णन किया है।

कुब्जा (सैरन्ध्री) रमण, अक्रूर गृह गमन, धृतराष्ट्र को संदेश प्रेषण— भागवत में यह तीनों प्रसंग भ्रमरगीत के पश्चात् वर्णित हैं परन्तु सूरसागर में कुब्जा-कृष्ण समागम का वर्णन भ्रमरगीत के पूर्व ही प्राप्त हो जाता है। शेष दोनों यथाक्रम बाद में मिलते हैं।

जरासंध-विजय, कालयवन और मुचकुन्द वध, द्वारका-प्रस्थान— इस प्रसंगों के वर्णन की भी परिस्थिति पूर्ववत् ही है। सूरसागर में इनका वर्णन बहुत संक्षिप्त है, युद्ध का वर्णन नदी के रूपक भाव तक सीमित है। कालयवन और मुचकुन्द वध की कथाओं का मात्र एक पंक्ति में वर्णन है और जिस योग-प्रभाव से भागवत के कृष्ण ने समस्त मथुरावासियों को नवनिर्मित द्वारकापुरी में पहुँचा दिया उसका संकेत भी सूर ने

नहीं किया है। द्वारावती-प्रवेश के समय रथ को शोभा तथा चौगान के खेल का जो वर्णन सूर ने किया है वह न तो भागवत में है न गुजराती काव्यों में। (सूरदास: सू0 मा0, पृ0 727 728)

द्वारका-लीला

रुक्मिणी हरण— इस विषय को लेकर गुजराती में ब्रजभाषा की अपेक्षा कहीं अधिक काव्य-रचना हुई। सूर और नंददास ने मूलतः भागवत के दशमस्कंध उत्तरार्ध के 52, 53, 54 अध्यायों में वर्णित कथा का ही अनुसरण किया है किन्तु गुजराती के कवियों ने अन्य पुराणों से भी सहायत ली है। रुक्मिणी के पिता भीष्मक को राजधानी का नाम पुराणों में कुण्डिनपुर ही मिला होता है परन्तु सूर तथा नंददास ने 'कुन्दनपुर' लिखा है। (भागवत: 10: 53: 7 हरिवंश भाषाः 60: 1, सूरदास: सू0 सा0, पृ0 727, 730, 731; नंददासः रुक्मिणी मंगल, नंद0, पृ0 148)। एक स्थल पर सूर ने भागवतोक्त 'कुण्डिनपुर' रूप को स्वीकृत किया है | कुछ कवियों ने कृष्ण के प्रति रुक्मिणी के पूर्वराग का कारण नारद द्वारा उनका गुणगान माना है। भागवत में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। सूर ने भी नारद को स्थान नहीं दिया पर नंददास ने 'जब से तुम्हरे गुनगन मुनिजन नारद गाए' लिखा है।

कृष्ण के नाम रुक्मणी की पत्री तथा वाहक हरिभट्ट ब्राह्मण— के प्रसंग में हरिभट्ट नाम के अतिरिक्त कथा के इस अंश का मूलाधार भागवत ही है। रुक्मिणी किसी 'आप्त द्विज' को बुलाकर 'गुह्य संदेश' भेजती है। (भागवत: 10: 52: 56, 44) पत्री का तथा किसी चमत्कारिक ढंग से ब्राह्मण के पहुँचने का उल्लेख वहाँ नहीं है। रुक्मिणी ने 'राक्षसेन विधिनोद्वह' तथा 'कुलदेवियात्रा' कह कर हरण की सारी विधि कृष्ण को बतला दी है। हरिवंश पुराण में कृष्ण ने बलराम से पूछ कर हरण किया। (हरिवंश भाषा 59:43) विष्णुपुराण में यह प्रसंग अत्यंत संक्षिप्त हैं ब्रह्मवैवर्त में द्विज पत्रिका उग्रसेन को देता है। (ब्रह्मवैवर्त पुराण 105: 65, 67) ब्राह्मण का नाम हरिभट्ट किसी पुराण में नहीं होता।

हरण-विधि का स्पष्ट उल्लेख न करते हए भी सूरदास और नंददास ने पाती का स्पष्ट वर्णन किया है। सूर ने 'द्विज पतिया दै कहियो श्यामहिं' के साथ मौखिक संदेश के रूप में 'बाजे शंख जानि हौं साची आयो यादवराय' लिखकर कृष्ण के बुलाने का संकेत मात्र दे दिया है। नंददास ने केवल 'उचित होइ सो करिये' कहा है। रुक्मिणी-मंगल में कृष्ण आँखों में आँसू आ जाने के कारण द्विज से ही पत्रिका पढ़वाते हैं। हरिभट्ट नाम दोनों में से कोई नहीं देता। देवी के पत्यक्ष प्रकट होने के प्रसंग में सूर ने 'गौरी सुनि मुसकायी' तथा नंददास ने 'ह्वै प्रसन्न अंबिका कहति सुनु रुक्मिनी सुन्दरि' लिखकर देवी की प्रसन्नता का वर्णन किया है। भागवत में ऐसा कुछ नहीं है।

भागवत में 'पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह' (10/55/53) अर्थात् द्वारका में विवाह के विधिवत् सम्पन्न होने का संकेत भर है। नंददास ने भी इसी प्रकार 'विधिवत कियो विवाह तिहूँ पुर मंगल गाये' लिखा किन्तु सूरदास ने विवाह का पूर्ण वर्णन किया है। ब्रह्मा द्वारा, इन्द्र की उपस्थित में, विवाह सम्पन्न होता है।

भागवत दशम के 60 वें अध्याय में रुक्मिणी-परिणय के बाद के **रुक्मिणी की भक्ति-परीक्षा** प्रसंग का वर्णन है। सूरदास ने इसका वर्णन सूरसागर (पृ0 738) में किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने रुक्मिणी द्वारा राधा आदि ब्रज-बालाओं के स्नेह के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करायी है जिसका निवारण कृष्ण स्वयं करते हैं (पृ0 753: 54)।

सुदामा-दारिद्र्य भंजन— पर सूरदास, नंददास तथा नरोत्तमदास ने काव्य-रचना की। नरोत्तम के सुदामाचरित की कथावस्तु अन्य काव्यों की अपेक्षा अधिक सुगठित और सुसम्बद्ध है। भागवत में शैव्या का उल्लेख है रुक्मिणी का नहीं, पर यहाँ सब कवियों ने रुक्मिणी को ही उपस्थित माना है—

देवो पर्यचरच्छैव्या चामरव्यजनेन वै'

— भागवत 10: 80: 23

सुदामा के दारिद्र्य की अतिरंजना और कृष्ण की मैत्री के आदर्शीकरण के अतिरिक्त मूल-कथा में किसी कवि ने परिवर्तन नहीं किया।

स्यमंतक मणि की कथा तथा कृष्ण के अन्य विवाह—सत्राजित की स्यमंतक मणि और उससे सम्बद्ध जाम्बवान, अक्रूर आदि की कथा भागवत दशम के 56, 57 वें अध्यायों में वर्णित है। इसी मणि के साथ सत्राजित अपनी पुत्री सत्यभामा तथा जाम्बवान अपनी पुत्री जाम्बवती कृष्ण को अर्पित कर देते है। सत्यभामा के विवाह का वर्णन ब्रजभाषा में नहीं है। भागवत के 58वें अध्याय में वर्णित कालिन्दी, सत्या, भद्रा, मित्रविन्दा और लक्ष्मणा के विवाह की ओर भी सूरसागर के एक पद में संकेत किया गया है किन्तु सत्या के स्थान पर वहाँ सीता लिखा मिलता है—

हरि चरननि सीता चित दीन्हों।

-सू0 सा0, पृ0 763

सूरदास के एक पद में **सत्यभामा का मान तथा नरकासुर-वध के** प्रसंग का संकेत मिलता है। (सूरदास: सू0 सा0, पृ0 737) भागवत के नरकासुर-वध के अनन्तर कृष्ण के द्वारा स्वर्ग से पारिजात वृक्ष लाकर सत्यभामा के उद्यान में स्थापित किये जाने की कथा दी गई है। किन्तु उसमें पारिजात के लिए सत्यभामा के रूठने का लेशमात्र भी इंगित नहीं किया गया है। सत्यभामा के भवन में इन्द्र आकर वरुण के छत्र तथा अपनी माता के कुण्डल आदि के अपहरण की शिकायत करके कृष्ण को नरकासुर (भौमासुर) के वध के लिए प्रेरित करते हैं और कृष्ण सत्यभामा के साथ 'प्राग्ज्योतिषपुर' जाकर उसका वध करते हैं तथा स्वर्ग से पारिजात लाते हैं। तत्पश्चात वे नरकासुर द्वारा अपहृत अनेक राजाओं की सोलह सहस्त्र एक सौ कन्याओं से उतने ही रूप धारण करके विवाह करते हैं। सूरसागर में इस प्रसंग का भी उल्लेख है (पृ0 737)। इस प्रकार सत्यभामा का रूठना और नरकासुर का वध वस्तुतः दो प्रसंग हैं जो पारिजात वृक्ष के द्वारा आपस में गुंफित है।

सूरसागर में स्वयं कृष्ण ही सत्यभामा के हृदय में पारिजात की प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। वे 'भक्त भय हरन असुर अंतकारी' कृष्ण नरकासुर के बंदीगृह से कन्याओं के उद्धार के लिए ऐसा करते हैं।

बलराम का ब्रजगमन तथा यमुनाकर्षण— भागवत दशम के 65 वें अध्याय में वर्णित इस कथा के प्रसंग में सूर ने ब्रजबालाओं के उद्गारों का विस्तार से वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त भागवत में वर्णित नृग-उद्धार, नारद-संशय, देवकी-पुत्र प्राप्ति आदि कुछ और प्रसंग भी उपर्युक्त कृतियों में उपलब्ध होते हैं जिनमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं है।

कुरु क्षेत्र में पुनर्मिलन— कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर कृष्ण तथा ब्रजवासियों के पुनर्मिलन का भागवत के 82वें अध्याय में वर्णन है। सूरदास ने उसका स्वतंत्र वर्णन करके पर्याप्त नवीनता का समावेश कर दिया है।

पहले द्वारका जाते हुए पथिक के प्रति ब्रजबालाओं तथा यशोदा के संदेश का वर्णन है फिर राधा की विरहावस्था विषयक पद है (पृ0 750-54) उसके बाद कृष्ण रुक्मिणी का वार्तालाप है। कृष्ण रुक्मिणी से ब्रजवासियों के स्नेह की प्रशंसा करके अपना दुख प्रकट करते हैं फिर सभा में यादवों से परामर्श करके कुरुक्षेत्र पर्व-स्नान के लिए जा पहुँचते हैं। वहाँ से वे एक दूत ब्रज से नंदादि को लेने के लिए भेजते हैं जो ब्रज आकर नंद यशोदा से संदेश कहता है। राधा इसे सुनते ही रोने लगती है। एक सखी उसे समझाती है। तत्पश्चात् उत्साहपूर्वक सभी ब्रजवासी अपने-अपने वाहनों पर कुरुक्षेत्र पहुँचते हैं। जब रुक्मिणी कृष्ण से पूछती है कि राधा कौन है तो कृष्ण राधा का परिचय देते हैं। रुक्मिमणी राधा को अपने मन्दिर ले जाती है, कृष्ण भी वहाँ पहुँचते हैं फिर राधा माधव का मिलन होता है। इसके बाद कृष्ण ब्रजवासियों से मिलते हैं (पृ0 757 तक)

भागवत में न रुक्मिणी-कृष्ण का संवाद है न पथिक द्वारा संदेश भेजने की बात। कृष्ण कोई दूत भी नहीं भेजते, नंदादि स्वयं कृष्ण का कुरुक्षेत्र में आना सुनकर वहाँ पहुँच जाते हैं। कृष्ण पहले नंद यशोदा से मिलते हैं फिर गोपियों से।

सूर ने राधाकृष्ण के मिलन को ही प्रधानता दी है। ब्रजवासियों तथा राधा-कृष्ण के पुनर्मिलन का वर्णन ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्ण-जन्म खंड के 126-27 अध्यायों में मिलता है परन्तु उसमें अकेले कृष्ण ब्रज जाते हैं और सबको गोलोक ले जाते हैं। ब्रह्मवैवर्तकार ने कुरुक्षेत्र से राधाकृष्ण-मिलन नहीं कराया अतएव सूर द्वारा वर्णित प्रसंग या तो स्वकल्पित है या उस पर कुछ-कुछ ब्रह्मवैवर्त की छाया मानी जा सकती है।

कृष्ण-कथा के अतिरिक्त कृष्ण-सम्बन्धी वस्तुओं यमुना, मुरली, ब्रज आदि पर भी स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना हुई है।

सिद्धान्त विषयक काव्य—कृष्ण-लीलाओं पर आधारित काव्यों के अतिरिक्त भक्ति तथा सिद्धान्त विषयक काव्य भी रचे गये। ब्रजभाषा में वल्लभ-सम्प्रदाय में नंददास की 'सिद्धान्त पंचाध्यायी', सूर आदि अष्टछाप के कवियों के पद, शोभाचंद का 'भक्ति विधान', राधावल्लभीय-सम्प्रदाय में हितहरिवंश, हरिराम व्यास, आदि के सिद्धान्त विषयक पद और ध्रुवदास कृत 'भजनसत' 'भजनशिक्षा', 'वैदकलीला', 'भजनकुण्डली', 'ख्यालहुलास', 'जीवदिसा'; निम्बार्क सम्प्रदाय में हरिव्यास तथा परशुराम देव की रचनाएँ तथा हरिदासी सम्प्रदाय के स्वामी हरिदास तथा विहारिन देव के सिद्धान्त के पद, पीताम्बर देव की सिद्धान्त की साखी, रसिक देव की 'भक्तसिद्धान्तमणि' उल्लेखनीय है।

सिद्धान्त-पक्ष

कृष्ण-काव्य में ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष

आलोच्य काल का प्रायः समस्त ब्रजभाषा-काव्य विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायों की छाया में पल्लवित हुआ। सम्प्रदाय और उसके अनुयायी कवियों में अंगांगि भाव रहता है, सर्वथा अभेद नहीं। अतएव सम्प्रदाय को

दार्शनिक मान्यताओं में तथा कवियों द्वारा व्यक्त सिद्धान्तों में समानता के साथ कहीं-कहीं असमानता भी प्राप्त होती है। काव्य सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से अनुप्राणित अवश्य रहा है, परन्तु सर्वत्र सर्वथा अनुयायी नहीं, जो आचार्य और कवि के व्यक्तित्व की भिन्नता का परिणाम है। बहुत से कवि ऐसे हैं जिन्होंने मान्यताओं के आग्रह को दृढ़ता के साथ ग्रहण किया है और अनेक ऐसे भी हैं जो या तो सिद्धान्त पक्ष से उदासीन हैं या अंशतः स्वतंत्र। उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में काव्य में व्यक्त सिद्धान्तों को प्रधानता दी गयी है और साम्प्रदायिक दार्शनिक मान्यताओं को काव्यगत सैद्धान्तिक विचारों की व्याख्या अथवा विश्लेषण में सहायक माना गया है।

ब्रजभाषा की अपेक्षा गुजराती में दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पक्ष की ओर बहुत कम कवियों का ध्यान आकर्षित हुआ है। ब्रजभाषा में वल्लभीय, राधावल्लभीय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के अनेक कवि इस विषय में सचेत रहे हैं। गौडीय सम्प्रदाय के कवियों में अवश्य विशेष सामग्री प्राप्त नहीं होती। सिद्धान्त सम्बन्धी काव्य-ग्रन्थों का परिचय वस्तु-विश्लेषण के प्रसंग में दिया जा चुका है।

सिद्धान्त पक्ष के समस्त विस्तार को निम्नलिखित विषयों में विभाजित कर लेने से विवेचन में सुगमता रहेगी—

1. ब्रह्म
2. जीव
3. जगत
4. माया
5. मोक्ष
6. भक्ति

ब्रह्म

कृष्ण का ब्रह्मरूप में ग्रहण गीता, गोपालपूर्वतापनीय, उपनिषद्, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तादि पुराणों में सर्वत्र किया गया है। गीता में कृष्ण तथा ब्रह्म में नितांत अभेद है। कृष्ण ने जो भी ज्ञान अर्जुन को दिया वह सब ब्रह्म रूप में स्थित होकर दिया है। अर्जुन भी कृष्ण को परब्रह्म कह कर सम्बोधित करते हैं—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।

—गीता, अ0 10, श्लो0 12

गोपालपूर्वतापनीय उपलिषद् का भी प्रतिपाद्य कृष्ण का ब्रह्मत्व ही है—

तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।

—कल्याण, उप0 अंक, पृ0 551

भागवत ने कृष्ण को स्वयं भगवान् के रूप में 'एते चांशकलाः पुन्सः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' (1:3:28) लिखकर स्वीकार किया और भगवान्, परमात्मा तथा ब्रह्म को एक ही अर्थ का बोधक बताते हुए उससे पूर्व ही लिख दिया है—

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानमिति शब्द्यते।

—1:2:11

इस प्रकार भगवान् कृष्ण ही ब्रह्म स्वीकृत हुए। ब्रह्मवैवर्तकार ने भी भागवत की इस मान्यता को ज्यों का त्यों ग्रहण करते हुए कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म माना —

1. **एते चांशाः कलाश्चान्ये संत्येव कतिधा मुने।**

—कृष्ण जन्म खंड, अ0 9, श्लो0 12

2. **भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्।**

—वही, अ0 133, श्लो0 72

निम्बार्क, चैतन्य तथा वल्लभ द्वारा दार्शनिकतया कृष्ण के इस ब्रह्मत्व का पूर्ण समर्थन हुआ और साम्प्रदायिक ग्रंथों में इस विषय का पर्याप्त विस्तार किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि आलोच्य काल में प्रायः समस्त कवियों ने कृष्ण को परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है तथा सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओं के अनुसार कृष्ण के ब्रह्मत्व का निरूपण किया है। जिन कवियों ने स्पष्ट रूप से कृष्ण को ब्रह्म घोषित किया है उनके काव्य से कतिपय उद्धरण प्रमाण स्वरूप् नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

सूर — ब्रह्म धार् यो कृष्ण अवतार।

—सू0सा0, पृ0 210

नंददास — कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमातम स्वामी।

—नंददास, पृ0 186

रसखान—ब्रह्म जो गायो पुरानन वेदन .....

..... बैठो पलोटत राधिका पायन।

हरिव्यास— परमातम परब्रह्म करि विस्तारन जगजाल।

जनपालन जय जय सदा रासबिहारी लाल।

—निम्बार्क माधुरी, पृ0 63

कृष्ण ब्रह्म हैं, इस मान्यता के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या का प्रश्न उठता है। इस विषय में वल्लभ तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों के काव्य से विशेष सामग्री उपलब्ध होती है।

वल्लभ-सम्प्रदायी सूर, परमानंद तथा नंददास आदि कवियों द्वारा जो ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण हुआ है वह बहुत कुछ शुद्धाद्वैत के सिद्धान्तों के अनुकूल है। वल्लभाचार्य ने ब्रह्म के सच्चिदानंद, पूर्ण पुरूषोत्तम अक्षर, सर्वशक्तिमान, स्वतंत्र व्यापक, अनन्त, षड्गुणोपेत, विरूद्धधर्माश्रयी तथा अविकृतपरिणामी माना है। प्रथम और अन्त के कुछ विशेषण शुद्धाद्वैतवाद के अंतर्गत मान्य ब्रह्म की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं को व्यक्त करते

हैं। नरसी मेहता के काव्य में भी ब्रह्म की यह विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। वस्तुतः ब्रह्म के विषय में शुद्धाद्वैत और नरसी मेहता के दार्शनिक मत की समानता दर्शनीय है।

विरूद्धधर्माश्रयता—वल्लभाचार्य ने 'तत्वदीप निबंध' के शास्त्रार्थ प्रकरण में वेदान्त ग्रंथों के आधार पर ब्रह्म को 'विरुद्ध सर्वधर्माणामाश्रयम्' माना है। इसी के अनुकूल सूरदास, परमानंद दास आदि ने कृष्ण के निर्गुण सगुण दोनों स्वरूपों का एक साथ आलेखन किया है—

सूर— वेद उपनिषद यश कहैं निर्गुनहिं बतावै।

सोइ सगुन होय नन्द की दांवरी बंधावै।

—सू0 सा0, पृ0 2

परमानन्ददास आदि अन्य अष्टछापी कवियों ने भी कृष्ण की इस विरुद्ध-धर्माश्रयता को स्वीकार किया है। सूर ने 'सूर सगुन लीलापदगावै' लिख कर अपनी रुचि सगुण की ओर अधिक व्यक्त की है।

अविकृतप्रिणामवाद— शुद्धाद्वैत में स्वीकृत ब्रह्म सम्बंधी अविकृतपरिणामवाद के सिद्धांत को सूर ने 'जल और बुद्बुदा' के तथा नंददास ने 'कनक कुण्डल' के न्याय से व्यक्त किया है |

सूर— ज्यों पानी में होत बुदबुदा पुनि ता मांहि समाहीं।

त्यों ही सब जग कुटुम्ब तुमहि ते पुनि तुम मांहि विलाहीं।

—सू0 सा0, पृ0 595

नंददास—एकहि वस्तु अनेक है जगमगात जगधाम।

ज्यों कंचन ते किंकनी कंकन कुण्डल नाम।

—नंददास, पृ0 98

ब्रह्म का आनन्द एवं रस स्वरूप— यद्यपि नंददास ने भी कृष्ण को सच्चिदानंद कहा है, यथा—

नंददास- सघन सच्चिदानंद नंदनंदन हरिवर जस।

—नंददास, पृ0 184

तथापि अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्ण के आनन्द-स्वरूप को ही अधिक महत्ता दी है जो शुद्धाद्वैत की मान्यताओं के अनुकूल हैं। वल्भाचार्य ने कृष्ण को 'मर्यादा पुरूषोत्तम' तथा 'पुष्टि पुरुषोत्तम' दोनों का अवतार माना है। दूसरे रूप को पहले से अधिक श्रेष्ठ माना गया है, फलतः अष्टछाप के कवियों में भी ऐसी ही धारणा प्राप्त होती है—

परमानंददास— आनंद की निधि नंदकुमार।

—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ0 411

नंददास— नित्य आत्मनंद अखंड स्वरूप

—नंददास, पृ0 191

अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने तो कृष्ण के आनन्दमय अथवा रसिक स्वरूप को ही सर्वत्र ग्रहण किया है। कृष्ण का यह रसिक रूप छान्दोग्य के 'रसोवै सः' (3:14:2) पर आधारित है। शुद्धाद्वैत में भी इसे स्वीकार किया गया है परन्तु तात्विक दृष्टि से राधाकृष्ण के युगल स्वरूप को ग्रहण नहीं किया गया। पुष्टिमार्ग की उपासना-पद्धति में भले ही युगल रूप की मान्यता हुई, वह भी विट्ठलनाथ जी के द्वारा, परन्तु वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों में राधा का कोई स्थान नहीं है और न उन्हीं ग्रन्थों में है जिनको उन्होंने 'प्रमाण चतुष्टय' की कोटि में रक्खा। द्वैताद्वैत तथा अचिन्त्यभेदाभेदवादी निम्बार्क और गौडीय सम्प्रदाय में द्वैत तथा 'भेद' को 'अद्वैत' और 'अभेद' के साथ दार्शनिक दृष्टि से स्वीकृति मिली। अतएव राधाकृष्ण का युगल स्वरूप तत्वतः स्वीकार किया गया जिससे 'द्वैताद्वैत' और 'भेदाभेद' चरितार्थ हो सके। राधावल्लभीय तथा हरिदासी सम्प्रदाय में राधाकृष्ण के युगल रूप को ही स्वीकार किया गया है। यह दोनों सम्प्रदाय निम्बार्क सम्प्रदाय से अत्यधिक साम्य रखते हैं। दार्शनिकतया हरिदासी सम्प्रदाय निम्बार्क के द्वैताद्वैत को ही मानता है। हितहरिवंश ने अवश्य कुछ अन्तर करके सिद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया। केवल कृष्ण को ब्रह्म मानकर इन दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति असम्भव थी। शुद्धाद्वैत की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। वहाँ कृष्ण के स्थान पर राधाकृष्ण को नित्य मानना अद्वैत की शुद्धता का विरोधी सिद्ध होता है। अष्टछाप के कवियों द्वारा राधाकृष्ण के युगल रूप सम्बन्धी जो पद लिखे गए हैं उनपर अन्य सम्प्रदायों का निश्चय ही प्रभाव है, जो कवियों की उदारता तथा कवि और सम्प्रदाय विशेष के बीच के अन्तर को व्यक्त करता है।

दार्शनिकतया राधाकृष्ण के युगल रूप को सर्वप्रथम निम्बार्क द्वारा स्वीकृत किया गया जिनका सम्प्रदाय कृष्णभक्ति के इतर सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। पुराणों में ब्रह्मवैवर्त ने राधाकृष्ण को संयुक्त रूप से उपास्य माना।

निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी कवि हरिव्यासदेव ने कृष्ण को आनन्द स्वरूप माना है और राधा को आह्लादिनी शक्ति। यह दोनों सदैव अभिन्न रहते हैं —

1. प्रिया शक्ति आह्लादिनी प्रिय आनन्द स्वरूप।

—नि0 मा0, पृ0 63

2. सदा सर्वदा जुगुल इक एक जुगुल तन धाम।

आनंद अरु, अहलाद मिलि विलसत ह्वै द्वै नाम।

—वही, पृ0 65

शाक्त मत की तरह कुछ सम्प्रदायों के कवियों ने आह्लादिनी शक्ति राधा को ब्रह्म कृष्ण की अपेक्षा अधिक महत्ता प्रदान की और उन्हें 'स्वामिनी' नाम से विभूषित किया।

सूरदास ने जहाँ राधाकृष्ण के युगल रूप का वर्णन किया है वहाँ राधा को आह्लादिनी शक्ति न कह कर आदि प्रकृति कहा है जो ब्रह्म कृष्ण के आदि पुरूष रूप की पूरक है—

प्रकृति पुरुष एकै करि जानो बातनि भेद करायो।

द्वै तनु जीव एक हम तुम दोऊ सुख कारन उपजायो।

—सू0 सा0, पृ0 333

यह संभवतः ब्रह्मवैवर्त के अनुसार है क्योंकि उसमें ही राधा को मूलप्रकृति की उपाधि दी गयी है—

ममाधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि साम्प्रतम्

त्वं च शक्तिस्समूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी।

—खंड 4, अ0 6, श्लो0 212

इस प्रकार रसस्वरूप ब्रह्म कृष्ण की रसमयी लीलाओं का अभिन्न अंग होने के कारण राधा को इतनी महत्ता प्राप्त हुई। दार्शनिक दृष्टि से राधा का यह महत्व ब्रजभाषा-काव्य में ही उपलब्ध होता है।

ब्रजभाषा के कवियों ने कृष्ण के रसिक रूप को विशेष प्रस्फुटित किया है और उनकी रस-लीलाओं तथा वृंदावन की नित्यता पर सर्वत्र बल दिया है दूसरे शब्दों में ब्रह्म को विशेषतया रस-स्वरूप और नित्य माना—

नंददास — नमो नमो आनन्द घन सुन्दर नंदकुमार।

रसमय रस कारण रसिक जग जाके आधार।

—नंददास, प0 39

हरिव्यास— नित्य विहरत जहाँ नित्य कैसोर दोउ

नित्य सहचरिन संग नित्य नवरंग।

नित्य रस रास उल्लास आनन्द उर

नित्य प्रतिकास परभास अंग अंग।

—नि0 मा0, पृ0 60

ध्रुवदास — नित्त विहारु विवाह नित दुलहिन दूलह लाल।

नित्त सखी सुख नित्त ही लेत रहत सब काल।

—मंडल सभा सिंगार।

माधवदास — कृष्ण रूप चैतन्य की सदा सनातन केलि।

गिरि वन पुलिन निकुञ्ज गृह द्रुम द्रोणी वनबेलि।

—वृन्दावन माधुरी, श्री माधुरीवाणी, पृ0 60

अवतार—कृष्ण ने ब्रह्म होकर भी भक्तों का उद्धार करने के निमित्त देह धारण की, अतएव वे अवतारी और अवतार दोनों ही रूपों में ग्रहण किये गये हैं। 'संभवामि युगे युगे' लिखकर गीताकार ने तथा चौबीस अवतारों में परिगणित करके भागवतकार ने भी इसका प्रतिपादन किया है। वल्लभ सम्प्रदाय में ब्रह्म के गुणावतार, लीलावतार, मर्यादावतार, आदि अनेक प्रकार से अवतरित होने तथा अवतार के बाद भी मायिक जगत से निर्लिप्त रहने का प्रतिपादन किया गया है। कृष्ण को अवतारी समझने के साथ साथ उनके सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी अलौकिक शक्ति का प्रतीक माना गया है। कृष्ण की प्रिया राधा को ब्रजभाषा के कवियों द्वारा आह्लादिनी शक्ति या प्रकृति का प्रतीक माना गया है। उसी प्रकार कवियों ने अन्य कृष्ण सम्बन्धी वस्तुओं का दार्शनिक अभिप्राय एवं प्रतीकार्थ ग्रहण किया है। वेणु तथा गोपी आदि कतिपय प्रधान तत्वों की प्रतीकात्मकता की ओर तो उन्होंने स्पष्ट इंगित किया है। नंददास ने वेणु को ओंकार अथवा महादेव नहीं माना परन्तु शब्द-ब्रह्म के रूप में अवश्य स्वीकार किया है—

शब्द ब्रह्म मैं बेनु बजाई सबै जन मोहै।

—नंददास, पृ0 185

गोपियों को वेद की ऋचाओं का प्रतीक ब्रजभाषा में सूर तथा ध्रुवदास ने माना है, कारण यह है कि सबने इस विषय में बृहद्वामन पुराण की कथा का अनुसरण किया है—

सूर— वेद ऋचा होइ गोपिका हरि सों कियो विहार।

—सू0 सा0, पृ0 462

ध्रुवदास— और तियनि में गिनहु जनि ए श्रुति कन्या आंहि।

—वृहद्वामन पुराण की भाषा

सूरदास तथा नंददास ने कृष्ण को अवतारी तथा अवतार दोनों ही रूपों में चित्रित किया है परन्तु अवतारों के इतने भेद प्रदर्शित नहीं किये है—

सूर — ब्रह्म अगोचर मन बानी ते अगम अनंत प्रभाव।

भक्तन हित अवतार धारि जो करि लीला संसार।

—सू0 सा0, पृ0 48

नंददास— षटगुन जो अवतार धरन नारायन जोई।

सबको आश्रय अवधिभूत नंदनंदन सोई।

—नंद0, पृ0 183

राधाकृष्ण वृन्दावन और रास आदि प्रेम-लीलाओं को नित्य मानने वाले अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने कृष्ण के अवतार धारण करने का स्वभावतः वर्णन किया है। यदि कहीं प्राप्त होता है तो अपवाद रूप में सूर सारावली में दोनों का समावेश है—

अंश कला अवतार बहुत विधि रामकृष्ण अवतारी।

सदा विहार करत ब्रजमंडल नंदसदन सुखकारी।।360।।

साथ ही राम और कृष्ण के अवतार चतुर्व्यहात्मक माने गये हैं।

विराट रूप— ब्रह्म शब्द के धात्वर्थ में ही उसके वृहत् एवं विराट होने की धारणा निहित है। ब्रह्म के इस विराट रूप का वर्णन ऋग्वेद के पुरुष सूक्त, अनेक उपनिषदों तथा गीतादि ग्रंथों में किया गया है। कृष्ण को ब्रह्म स्वीकार करने वाले कवियों ने कृष्ण के विराट रूप का वर्णन किया है। सूरदास ने सूरसागर के अंतर्गत द्वितीय स्कंध में इसका आलेखन किया है और साथ ही विराट आरती की भी योजन की है—

1. नैननि निरखि श्याम स्वरूप।

रह्यो घट घट व्याधि सोइ ज्योति रूप अनूप।

चरण सप्त पताल जाके शीश है अकाश।

सूर चन्द्र नक्षत्र पावक सर्व तासु प्रकाश।

— सू0 सा0, पृ0 47

2. हरि जू की आरती बनी।

मही सराव सप्त सागर धृत बाती शैल घनी।

रवि शीश ज्योति जगत परिपूरण हरत तिमिर रजनी।

उड़त फूल उडगन नभ अन्तर अंजन घटा घनी।

—सू0 सा0, पृ0 47

सूरसारावली में सृष्टिव्यापी विराट होली का वर्णन है जो समस्त कृष्ण-काव्य में अद्वितीय है। कृष्ण के मृत्तिका-भक्षण तथा जमुहाई लेने के समय भागवत के अनुसार सूरदास तथा अन्य अनेक कवियों ने समस्त सृष्टि को उनके मुख के अंतर्गत प्रदर्शित किया है जो ब्रह्म कृष्ण के विराट रूप का ही प्रतिपादक है। इसका निर्देश वर्ण्य वस्तु के प्रसंग में किया जा चुका है।

अन्य उपाधियाँ— कुछ कवियों ने ब्रह्म कृष्ण की अनेकानेक उपाधियों का मुक्त हृदय से वर्णन किया है जिनमें तात्विक दृष्टि के साथ भावात्मकता का भी पर्याप्त योग है। सूरदास ने कृष्ण को परमहंस, सर्वेश, जगदीश, अच्युत, अविगत, अविनाशी आदि उपाधियों से विभूषित किया है—

परमहंस तुम सबके ईस, वचन तुम्हारे श्रुति जगदीस।

तुम अच्युत अविगत अविनासी, परमानन्द सदासुखरासी।

—सू0 सा0, दशमस्कंध, उत्तरार्ध

नंददास आदि कवियों ने भी इस प्रकार से कृष्ण का वर्णन किया है। (अष्टछाप, व. पृ0 409)। इस प्रवृत्ति की सीमा हरिव्यासदेव जैसे कवियों में मिलती है जो उपाधियों की श्रृंखला की श्रृंखला रचते चले जाते हैं—

निरवधि नित्य अखंडल जीरी गोरी स्यामल सहज उदार।

आदि अनादि एकरस अद्‌भुत मुक्ति परे पर सुख दातार।

अनंत, अनीह, अनावृत, अव्यय अखिल अंड अधीश अपार।

—नि0 मा0, पृ0 58

इन विशेषताओं का वर्णन प्रच्छन्न रूप में अन्य कवियों में भी मिल जाता है किन्तु इस विषय में गुजराती कवि नरसी उपनिषदों के जितने समीप हैं उतना ब्रजभाषा का कोई भी कवि दिखाई नहीं देता।

जीव

सभी अद्वैतवादी दर्शन अन्ततः जीव और ब्रह्म के तात्विक अभेद को स्वीकार करते हैं। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' तथा 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' आदि कथनों से यही प्रतिपादित किया गया है। 'अविकृत परिणामवाद' के सिद्धान्त में जीव जगत के ऐक्य के साथ जीव ब्रह्म का ऐक्य भी स्वीकृत है। मुण्डक और वृहदारण्यक आदि उपनिषदों में ब्रह्म को अग्नि और जीवों को स्फुलिंगों का रूपक दिया गया है—

1. यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिंगाः

सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः,

तथा क्षराद् विविधाः सौम्य भावाः

प्रजायन्ते तत्र चैवापि यान्ति ।

—मुण्डक, 2:1:1

2. यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्यच्चरन्त्वमवास्मादात्मनः

सर्व्वे प्राणाः .....

—वृहदारण्यक, 2:1:20

शंकराचार्य ने भी इस औपनिषदिक रूपक को स्वीकार किया है—

परस्यैव तावद् आत्मनो ह्यंशो जीवः अग्निरिव विस्फुलिंगाः

शुद्धाद्वैत के प्रतिपादक वल्लभाचार्य ने इस रूपक को अपनी सैद्धान्तिक व्याख्या में विशेष स्थान दिया है। अपने तत्वदीप निबंध के शास्त्रार्थ प्रकरण में उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में इसे व्यक्त किया है—

विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि।

आनन्दांश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः ।।32।।

पुष्टि मार्ग के अनुयायी कवि नंददास ने इसी का अनुसरण करते हुए एक स्तुति के अन्तर्गत लिखा है—

तुमतै हम सब उपजत ऐसे।

अगिनि ते विस्फुलिंग गन जैसे।

—नंददास, पृ0208

सूरदास ने 'करत इन्द्रियनि चेतन जोई, मम स्वरूप जानो तुम सोई' तथा 'रहयो घट घट व्यापि सोई ज्योति रूप अनूप' आदि लिखकर जीव के ब्रह्म होने का सिद्धान्त तो स्वीकार किया है किन्तु उन्होनें अग्नि और स्फुलिंग का उदाहरण संभवतः कहीं नहीं दिया है। उनके कुछ पदों में प्रतिबिम्बवाद की अभिव्यक्ति मिलती है। उदाहरणार्थ—

चेतन घट घट है या भाई, ज्यों घट घट रवि प्रभा समाई।

घट उपज्यो बहुरो नशि जाई, रवि नित रहे एक ही भाई।

—सू0 सा0, पृ0 53

अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने भी जीव विषयक इसी प्रकार के सिद्धान्त को स्वीकार किया है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति कुछ कवियों में ही उपलब्ध होती है जैसे निम्बार्क सम्प्रदाय के परशुरामदेव ने निम्नोक्त दोहे में स्पष्टतया जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की है—

सब जीवन में हरि बसैं हरि ही में सब जीव

सर्व जीव को जीव हरि परसराम सो सींव।।73।।

—नि0मा0, पृ0 79

तैत्तरीय उपनिषद् के 'एकोऽहं बहुस्याम' के अनुसार वल्लभाचार्य ने भी ब्रह्म की इच्छा से ही जीवों की उत्पत्ति मानी है—

तदिच्छा मात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांश चेतनाः

सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्बे निराकारास्तदिच्छया।।31।।

—त0 दी0 निबंध

किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने इस तथ्य को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं किया है। उनका ध्यान जीव के अविद्याग्रस्त स्वरूप के चित्रण तथा भगवद् कृपा द्वारा उसके उद्धार के ऊपर विशेष केन्द्रित हुआ।

जीव की ब्रह्म से विमुखता— कवियों की मान्यतानुसार ईश्वर से विमुख होकर ही जीव अनेकानेक कष्टों और क्लेशों का भागी बनता है तथा उसका कल्याण इसी में है कि वह निरन्तर परब्रह्म परमात्मा के स्मरण तथा उपासन में रत रहे। सूरदास कमल लोचन कृष्ण की प्रीति से हीन तथा विषय-विलिप्त जीव का जन्म निरर्थक मानते है—

आछो गात अकारथ गार् यो।

करी न प्रीति कमल लोचन सों जन्म जुबा ज्यों हार् यो।

निशि दिन विषय विलासनि विलसत फूटि गई तब चार् यो।

—सू0 सा0, पृ0 184

नन्ददास भी जीव को काल, कर्म तथा माया के आधीन एवं पाप-पुण्य आदि में लिप्त कहते हैं—

काल करम माया अधीन ते जीउ बखाने |

विधि निषेध अरु पाप पुन्य तिनमें सब साने |

राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास स्पष्टतः मानते है कि जीवन ने ईश्वर का अमृत स्वरूप् स्मरण-ध्यान छोड़कर विषय रूपी विष को अपना लिया है—

जीव दिसा कछु इक सुनि भाई।

हरि जस अमृत तजि विष पाई।।1।।

कृष्ण भक्ति सौं कबहुँ न रांच्यौ।

महामूढ़ बड़ सुख ते वांच्यौ।।2।।

—जीवदिसा

सूरदास ने एक नहीं अनेक स्थानों पर बलपूर्वक प्रतिपादित किया है कि जीव अपने ही भ्रम तथा अज्ञान के कारण बन्धन में पड़ा है। बार बार इसी तथ्य को प्रकट करने के लिए उन्होंने 'मरकट' तथा 'सुआ' के उदाहरण दिये हैं—

अपुनपौ आपुन ही विसर् यो।

जैसे स्वान कांच मंदिर में भ्रमि भ्रमि मर् यो।

मर्कट मूठि छाड़ि नहि दीनी घर घर द्वार फिर् यो।

सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौनै जकर् यो।

—सू0 सा0, पृ0 46

कुछ स्थान ऐसे भी है जहाँ इस बन्धन का कारण माया को माना गया है—

1. करौं यतन न भजौं तुमको कछुक मन उपजाइ।

सूर हरि की प्रबल माया देत मोहि लुभाइ।

—सू0 सा0, पृ0 8

2. माधव जू मन माया वश कीन्हो।

—वही

जहाँ तक वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत का सम्बन्ध है अणुभाष्य में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि जीव में अज्ञान आदि का अविर्भाव तथा गुणों का अभाव 'ईश्वरेच्छया' होता है। उसका कारण न जीव का अज्ञान है और न उसकी इच्छा—

तस्माद् ईश्वरेच्दया जीवस्य भगवद्धर्म तिरोभावः।

येन जीवभावः अतएव कामयः।

—अध्याय 3, पाद 2, सूत्र 5

इस प्रकार सूरदास के 'अपुनपौ आपुन ही बिसर् यो' आदि उपर्युक्त कथन शुद्धद्वैतवाद से सैद्धान्तिक भिन्नता उत्पन्न करते हैं। इन कथनों का साम्य वल्लभाचार्य के मत में तो नहीं मिलता, परन्तु नरसी मेहता के कुछ पद ऐसे अवश्य हैं जिनमें ब्रह्म से विमुख होने का दायित्व जीव को ही दिया गया है।

इसका परिणाम यह होता है कि सूर जब जीव के उद्बोधन के लिए कुछ कहते हैं तो भ्रम-निवारण करने अथवा समझने पर विशेष बल देते हैं। उदाहरणार्थ सूर लिखते हैं—

1. जब लौं सत स्वरूप् नहिं सूझत।

2. सूरदास समुझे की यह गति मन ही मन मुसुकायो।

—सू0 सा0, पृ0 46

यही कारण है कि सूर सदैव जीव के हृदय को स्पर्श करके भक्ति की प्रेरणा देते हैं।

साथ ही साथ सूरदास के ऐसे भी अनेक पद हैं जिनमें जीव को अहंकार त्याग देने का उपदेश दिया गया है। उसके विचार को जगाकर कर्तृत्वाभिमान को निरर्थक सिद्ध किया गया है—

1. अहंकार किये लागत पाप।

सूर श्याम भजि मिटे संताप।

2. करी गोपाल की सब होई।

जो अपनो पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोई।

साधन मंत्र तंत्र उद्यम बल सुख यह सब डारहु धोई।

जो कछु लिखि राखी नंदनंदन मेटि सकै नहि कोई।

—सू0 सा0, पृ0 26

जीव के भव-बन्धन से निस्तार पाने के उपाय के विषय में सभी कृष्ण-भक्त कवि एकमत है। सभी ने कृष्ण-भक्ति को जीव में उत्पन्न होने वाले मोह, अविवेक अज्ञान, अहंकार आदि का उपचार माना है। साधन अथवा भक्ति के स्वरूप पर आगे पृथक रूप से विचार किया जायगा।

जगत्

जगत् का मिथ्यात्व शंकराचार्य के उद्घोष 'जगन्मिथ्या' के पश्चात् विकसित होने वाले विभिन्न दार्शनिक मतवादों के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय बना। रामानुज ने उसे अचित् के रूप में ग्रहण करके ब्रह्म की उपाधि मात्र माना। अन्य आचार्यों ने भी अपना-अपना मत व्यक्त किया किन्तु वल्लभाचार्य से पूर्व जगत् की सत्यता की पूर्ण प्रतिष्ठा किसी ने भी नहीं की। शुद्धाद्वैत में जगत को शुद्ध ब्रह्म का अविकृत परिणाम माना गया, जिसकी ओर ब्रह्म के प्रसंग में पहले संकेत भी किया जा चुका है। यही नहीं जगत् और संसार में स्पष्टतया सत्यासत्य का भेद स्थापित किया गया है। जगत् को विद्या माया से तथा संसार को अविद्या माया से उत्पन्न माना गया है।

फलतः वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में जगत् और संसार के सम्बन्ध में इस प्रकार भेद परिलक्षित किया जाता है किन्तु अन्य सम्प्रदायों के कवियों में इस भेद का कहीं भी दर्शन नहीं होता। साधारणतया सभी ने जगत् और संसार को एक ही समझा है और उसकी निस्सारता, नाशवत्ता तथा मायामयता का अनेकानेक बार वर्णन किया है। राधावल्लभीय कवि हरिराम व्यास सिद्धान्त के रस फुटकर पदों में लिखते हैं—

एक पकरे सब जग छूट्यो।

माया रचित प्रपंच कुटुम्ब को मोह जाल सब छूट्यो।

—व्यास वाणी, उत्तरार्ध पृ0 531

हरिदास ने भी लिखा है—

हरि को ऐसो ही सब खेल।

मृग तृष्णा जग व्यापि रह्यो है कहूँ विजौरो न बेल।

धनमद जोबनमद राजमद ज्यों पंछिन में डेल।

कह हरिदास यहै जिय जानौ तीरथ को सौ मेल।

—नि0मा0, पृ0 204

इसी प्रकार के विचरों अन्य अनेक कवियों ने व्यक्त किये हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में सूरदास नंददास आदि कवियों ने संसार के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह सब ऐसे ही विचारों से परिपूर्ण है—

सूर— मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।

मिथ्या है यह देह कहौ क्यों हरि बिसराया।

—सू0सा0, दशम् स्कंध

नंददास— बहे जात संसार धार जिय फंदे फंदन।

—नंद0, पृ0 184

इस प्रकार जगत् के सम्बन्ध में लोक-प्रचलित जो मिथ्यात्व की धारणा थी वही संसार के प्रति इन उद्धारणों में हैं। अनेक स्थलों पर जगत् को उपर्युक्त कवियों ने शुद्धाद्वैत मत के अनुकूल सत्य एवं वास्तविक रूप में चित्रित किया है—

सूर — ज्यों पानी ते होत बुदबुदा पुनि ता मांहि समाहीं।

त्यों ही सब जग कुटुम तुमहिं ते पुनि तुम मांहि बिलाहीं।

—अष्टछाप और वल्लभ सं0, पृ0 441

नंददास— 1. ब्रह्म निरीह ज्योति अविकार।

सत्ता मात्र जगत आधार।

—नंद, पृ0 211

2. जै जै जै श्रीकृष्ण रूप गुण काज पियारा।

परमधाम जगधाम परम अभिराम उदारा।

—नंद, पृ0 183

माया

जगत् और संसार के भेद के साथ ही वल्लभाचार्य ने माया के भी दो भेद किये—एक विद्या तथा दूसरा अविद्या। विद्यामाया वह जो ब्रह्म की वशवर्तिनी एवं शक्ति है तथा जिसके द्वारा ब्रह्म समस्त जगत का निर्माण करता है और अविद्यामाया वह जो जीव को काम क्रोध लोभ मोह आदि के द्वारा वशीभूत करके उसे पथभ्रष्ट करती रहती है—

1. विद्याविद्ये हरेः शक्ती मायय्रैव विनिर्मिते।

ते जीवस्यैव नान्यस्य दुःखित्वं चाप्यनीशता। ।।34।।

—त0दी0 निबंध, शास्त्रार्थ प्रकरण

वल्लभ सम्प्रदाय के सूरदास, नंददास ने भी माया को दोनों ही रूपों में चित्रित किया है। निम्नलिखित उद्धरण माया के उस स्वरूप् को व्यक्त करते हैं जिसे विद्या माया कहा गया है—

सूरदास— बहुरि जब हरि की इच्छा होय।

देखै माया के दिसि जोय।

माया सब तबही उपजावै।

ब्रह्म सो पुनि सृष्टि उपावै।

—सू0 सा0 पृ0767

नंददास— सो माया जिनके अधीन नित रहत मृगी जस।

विश्व प्रभाव प्रतिपाल प्रलयकारक आयुस बस।

—नंद0, पृ0 183

त्रिगुणात्मिका प्रकृति वाली इस माया का वर्णन सूर ने पृथक रूप से उस गाय का रूपक देकर किया है जिसके सम्हालने की सामर्थ्य केवल गोपाल कृष्ण में ही है—

माधव जू नेकु हटकौ गाइ।

. . . . . .

ढीठ निठुर न डरति काहू त्रिगुण ह्वै समुहाइ।

नारदादि शुकादि मुनिजन थके करत उपाइ।

ताहि कहु कैसे कृपानिधि सकत सूर चराइ।

—सू0 सा0, पृ0 8

माया का जो दूसरा स्वरूप है जिसे अविद्या कहा गया है उसका भक्त कवियों ने विशेष रूप से चित्रण किया है। भक्ति के कल्याण-पथ में बाधक होने का प्रधान कारण उसे ही कहा गया है अतः प्रायः एक स्वर से सभी ने उसकी निन्दा की है। कभी स्वप्न से, कभी नर्तकी से कभी मृगमरीचिका से कभी तमिस्रा रात्रि से उसकी तुलना की गयी है। उसका वाह्य स्वरूप् आकर्षक तथा आन्तिरिक रूप असत्य प्रतिपादित किया गया है। उसकी सबसे बड़ी शक्ति यही है कि वह जीव को बलात् अपने पाश में जकड़ लेती है जिससे निस्तार पाना अत्यंत कठिन हो जाता है। केवल कृष्णाश्रय ही एक मात्र उपाय है। सूरदास के निम्नलिखित पद में इसी माया का वर्णन प्राप्त होता है—

विनती सुनो दीन की चित्तदै कैसे तब गुण गावै।

माया नटिनि लकुट कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै।

दर दर लोभ लागि लै डोलति नाना स्वांग करावै।

तुमसों कपट करावति प्रभु जू मेरी बुद्धि भ्रमावै।

मान अभिलाष तरंगनि करि करि मिथ्या निशा जमावै।

सोवत सपने में ज्यों सम्पत्ति त्यों दिखाय बौरावे।

महा मोहनी मोह आत्मा मन करि अघहि लगावै।

ज्यों दूती परवधू भोरि कै लै परपुरूष दिखावै।

—सू0 सा0 पृ0 6

सूर ने इस माया को भी कृष्ण को वशवर्तिनी तथा जगत की वशकत्री माना है—

तुम्हारी माया महाबली जिन जग वश कीनो।

कछु कुलधर्म न जानइ वाके रूप सकल जग राच्यो।

—सू0 सा0, पृ0 7

हरिव्यास देव, हरीराम व्यास, तथा हरिदास आदि अन्य सम्प्रदाय के कवियों ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं—

हरिव्यास— माया त्रिगुन प्रपंच पवन को अंच न आवै तास।

—नि0मा0, पृ0 65

व्यास- 1. माया रचित प्रपंच कुटुम्बी मोह जाल सब छूट्यो।

2. जीवत मरै न माया छूटै काल कर्म मुँह कूटै।

पुत्र कलत्र सजन सुख देता पितर भूत सब लूटै।

कबहुँ रंक राजा कबहुँ है विषै विकार न छूटै।

साधु न सूझै गुन नहि बूझै हरि जस रस नहि घूटै।

व्यास आस घर घाले जग कौ दुख सागर नहि फूटै।

श्री व्यास वाणी, पृ0 531

हरिदास— तुमरी माया बाजी पसारी विचित्र मोहै मुनि सुनि करके बुलै कोड़।

—नि0 मा0,पृ0202

बिहारीदास— माया मोह प्रगह पर् यो मन बहै जात बुधि फेरी।

—वही, पृ0 244

मोक्ष

जीव की जन्म मृत्यु जरा व्याधि से छूटकर अखंड आनंद प्राप्त करने की दशा को मोक्ष कहा गया है | इस स्थिति विशेष की सत्ता को प्रायः सभी प्रमुख कवियों ने स्वीकार किया है | साम्प्रदायिक दर्शनों ने मोक्ष की स्थिति के अनेकानेक विभेद किये परंतु सामान्यतः चार प्रकार की मुक्ति का निर्देश किया है —

सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य |

सूर- सेवत सगुण स्याम सुन्दर को मुक्ति लही हम चारी |

—सू0 सा0 वे0 प्रे0, पृ0544

हरिराम व्यास— लोक वेद कर्म धर्म छाँड़ि मुकुति चारि |

—व्यासावाणी, पृ0 299

मोक्ष अथवा मुक्ति के सम्बंध में कवियों के दो वर्ग हैं जिनके विचार एक दूसरे से विरुद्ध है | एक वर्ग के मत से मोक्ष की स्थिति भक्ति से श्रेष्ठ नहीं है अतएव उस वर्ग के कवियों ने अपने काव्य में विभिन्न स्थानों पर अनेक प्रकार से मुक्ति की उपेक्षा एवं तिरस्कार किया है |

ध्रुवदास— 1. धर्म मोक्ष कोउ पूँछत नाहीं सिद्धै कौन विचारी |

—जीवदिसा 33

3. रसिक गनत नहि मुकुति कौ और लोक केहि मांहि |

—भजनसत

हरिराम व्यास— ताके बल गर्व भरे रसिक व्यास से न डरे

लोक वेद कर्म धर्म छींडि मुकुति चारि |

—व्यासवाणी पृ0,249

सूरदास ने भी कहीं कहीं चार पदार्थों— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को कृष्ण के भजन की तुलना में हीन कहा है—

जो सुख होत गोपालहिं गाये |

दिये लेत नहिं चार पदारथ चरण कमल चित लाये |

—सू0 सा0, पृ0 43

सूरसागर के तृतीय स्कंध में एक स्थल पर भक्ति के प्रकार-विशेष को जिसे सुधाभक्ति कहा गया है, मोक्ष का इच्छुक बताया गया है, साथ ही मुक्ति से अलिप्त भी—

सुधाभक्ति मोक्ष को चाहै

मुक्तिहु को नाहीं अवगाहै |

—सू0 सा0,पृ 52

यहाँ मुक्ति और मोक्ष में अंतर किया गया प्रतीत होता है | मोक्ष मुक्ति से श्रेष्ठ माना गया है |

सूरदास वस्तुतः दूसरे वर्ग के कवियों में आते हैं जिन्होंने मोक्ष-प्राप्ति की बराबर कामना की | उनके अनेक पदों में जन्म मरण के चक्र से अथवा भव व्याधि से निस्तार पाने की प्रार्थना की गयी है—

1. निधरक रहौं सूर के स्वामी जन्म न जाऊँ फेरि।

—सू0सा0, पृ0 8

2. तुम मोसे अपराधी माधव कितेक मुक्ति पठाये हो।

—वही, पृ0 3

3. सूरदास भगवन्त भजन बिनु फिरि फिरि जठर अरै।

—वही, पृ0 5

कृष्ण-भक्त कवियों ने सायुज्य तथा सारूप्य की अपेक्षा समीप्य तथा सालोक्य मुक्ति की लालसा विशेष रूप से प्रकट की है। सूरदास ने अपने अनेक पदों में एक चिरन्तन आनन्दमय अतीन्द्रिय लोक में चलने की कामना व्यक्त की है। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियों से प्रारम्भ होने वाले पद लिये जा सकते हैं—

1. भृङ्गी री भज चरण कमल पद जहं नहिं निशिको त्रास।

—सू0सा0, पृ0 36

2. चकई री चलि चरण सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग।

—वही0, पृ0 35

उक्त उद्धारणों में चरण शब्द से आराध्य की समीपता की भी व्यंजना होती है, अतः सालोक्य और सामीप्य दोनों प्रकार की मुक्तियाँ एक ही इन कवियों को अभिप्रेत जान पड़ती है। निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों का दृढ़ विश्वास है कि श्रीकृष्ण अपने प्रिय भक्तों पर जब अनुग्रह करते हैं तो उन्हें अपने समीप गोलोक में ही स्थान देते हैं जहाँ से उन भक्तों को रास-दर्शन का सुख निरंतर प्राप्त होता रहता है—

1. जिनके यहै अनन्य उपास।

   तिनको प्रिया लाल नित हित करि राखै अपने पास।

   माया त्रिगुण प्रपंच पवन की अंच न आवै तास।

   श्री हरिप्रिया निपट अनुवर्तित है निरखै सुख रास।

   —नि0मा0, पृ0 650

2. यह अनुक्रम करि जे अनुसरहीं, शनै शनै जगते निरवरहीं।

परमधाम परिकर मधि बसहीं, श्री हरिप्रिया हितू संग लसहीं।

—वही, पृ0 670

वल्लभाचार्य ने 'शनै शनै जगते निरवरही' वाली मुक्ति को 'क्रम मुक्ति' का नाम दिया है और गोलोक में स्थान पाने वाली मुक्ति को प्रवेशात्मक मुक्ति माना है। 'क्रम मुक्ति' के विरुद्ध उन्होंने 'सद्यःमुक्ति' को स्वीकार किया जो जीव की भगवत्कृपा से तत्काल बिना प्रारब्ध कर्म भोगे ही प्राप्त होती है, और प्रवेशात्मक मुक्ति के साथ लयात्मक मुक्ति का निरूपण किया जो केवल ज्ञानियों को ही प्राप्त होती और जिसमें जीव ब्रह्म में पूर्णातया विलीन हो जाता है। अष्टछाप के कवियों को प्रवेशात्मक मुक्ति ही अभीष्ट रही उसी को अनेक रूपों से व्यक्त किया है। कुछ कवियों ने कृष्ण के लीलाधाम ब्रज में जड़ रूप से प्रवेश पाने तक की कामना की है। सूर का 'करहु मोहि ब्रज रेणु' रसखान का 'पाहन हौं तो वही गिरि को ....' तथा व्यास का 'ब्रज के लता पता मोहि कीजै' ये सब इसी भाव को प्रकट करते हैं।

कृष्ण-भक्ति का स्वरूप

साधना एवं उपासना के अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता तथा महत्ता का प्रतिपादन वैष्णव चिंताधारा का मूल स्वर रहा है। गीता, भागवत, नारद भक्ति सूत्र, नारद पंचरात्र तथा शाडिल्य भक्ति सूत्र आदि ग्रंथों द्वारा भक्ति को कर्म तथा योग से भी श्रेष्ठतर स्थान दिया गया है जिसके परिणाम स्वरूप समस्त वैष्णव काव्य भक्ति की व्यापक आधार भूमि पर विकसित हुआ। गुजराती, ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य भी इसी सत्य का समर्थन करता है | प्रायः सभी प्रधान कवियों ने भक्ति के महत्व को स्वीकार ही नहीं किया अपितु स्पष्ट और सशक्त शब्दों में उसका व्याख्यान एवं गुणगान भी किया है। ब्रजभाषा के कवि अधिकतर किसी न किसी भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षित मिलतें हैं अतएव उनके लिए स्वाभाविक है कि वे भक्ति के यशगान में काव्य रचें परन्तु गुजराती के कवियों ने भी, जिनका सम्बन्ध किसी भक्ति सम्प्रदाय से स्पष्टतया परिलक्षित नहीं होता, भागवत आदि के आधार पर भक्ति की प्रशंसा में तथा उसके महत्व को व्यक्त करते हुए पर्याप्त परिमाण में काव्य रचना की है जिसकी ओर वस्तु विश्लेषण के प्रसंग में निर्देश किया जा चुका है।

भक्ति के महत्व को व्यक्त करने के लिए गुजराती कवियों ने उसका तादात्म्य राधा से कर दिया। उनके अनुसार राधा ही भक्ति का स्वरूप हैं जिससे प्रकारान्तर से यह प्रतिपादित होता है कि कृष्ण के लिए जिस प्रकार राधा अभिन्न एवं प्रिय हैं उसी प्रकार भक्ति भी। ब्रजभाषा के कवियों ने राधा को भक्ति तो नहीं कहा परन्तु उसकी महत्ता को अपने काव्य में बराबर व्यक्त किया है। किसी भी वस्तु की श्रेष्ठता का निरूपण दो रूपों में होता है। एक तो उसके महत्व एवं शक्ति का वर्णन करके और उसमें निरत प्राणियों की प्रशंसा करके, दूसरे अन्य वस्तुओं की निस्सारता दिखाकर तथा उससे विरत प्राणियों की निन्दा करके। गुजराती कवियों ने दूसरे प्रकार से भक्ति की महत्ता कम प्रदर्शित की है। परन्तु ब्रजभाषा के कवियों ने दोनों ही प्रकार से भक्ति की महिमा का गायन किया है।

सूरदास मानते हैं कि जीव के अन्य धर्म क्षणिक हैं, मात्र भक्ति ही ऐसी है जो युग युग तक यशस्विनी बनी रहती है तथा भक्ति से ही भगवंत की प्राप्ति होती है—

1. हरि को भक्ति विरद है युग युग आन धर्म दिन चारि।

—सू0 सा0, पृ0 44

2. भक्ति बिन भगवंत दुर्लभ कहत निगम पुकारि।

—सू0 सा0, पृ0 37

साथ ही वे भक्तिहीनों को शूकर कूकर की तरह विषयो ठहराते हैं—

1. भजन बिनु कूकर सूकर जैसो।

—सू0 सा0, पृ0 45

उनकी दृष्टि में अभक्त प्रेत तथा नारकी है—

1. भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत।

—सू0सा0, पृ0 45

2. बिनु हरि भक्ति नरक में परै।

—सू0सा0, पृ0 55

हितहरिवंश मनुष्य शरीर की सार्थकता भक्ति से ही मानते हैं—

मानुष कौ तन पाई भजौ रघुनाथ कों।

—श्री हित0 स्फुट वाणी जो, पृ0 1

उनके मत से कृष्ण की भक्ति के आगे ग्रहों की गति अर्थात् भाग्य रेखा का भी कोई महत्व नहीं है—

जो पै कृष्ण चरण मन अर्पित तो करिहैं कहा नव ग्रह रंक।

—वही, पृ0 1

हितहरिवंश के शिष्य दामोदरदास ने अपनी वाणी में अन्य सभी साधनों की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ स्वीकार किया है—

साधन सफल कहे अविरुद्ध। वेद पुरान सु आगम शुद्ध।

बुद्धि विवेक जे जानहीं दास। समुझौं सबनि सुभक्ति उजास।

—श्रीहित चौरासी सेवक वाणी, पृ0 49

ध्रुवदास के मत से महासुख स्वरूपा कृष्ण भक्ति से वंचित जीव की दशा महामूढ़ जैसी है—

कृष्ण भक्ति सौं कबहुँ न राच्यौ।

महामूढ़ बड़ मुख ते बांच्यौं।

—जीवदसा

हरिराम व्यास ने भक्ति को भवसागर से पार जाने का एकमात्र उपाय कहा है तथा भक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं को असत्य माना है—

1. भव तरिबे को एक उपाउ।

—व्यास वाणी, पृ0 96

2. सांची भक्ति और सब झूठौ।

—वही, पृ0 97

व्यास जी का दृढ़ विश्वास था कि यदि भक्ति की व्यापक लोकप्रियता न होती तो धर्म विद्या आदि सभी कुछ नष्ट हो जाता—

जो पै सबहि न भक्ति सुहाती।

तौ विद्या विधि वरन धर्म की जाति रसातल जाती।

—वही, पृ0 127

गौडीय सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट अपने एक पद में भक्ति को कलिकाल तारिनी, मंगल विधायिनी जैसे अनेकानेक विशेषणों से विभूषित करते हैं—

अघसंहारिनी अधम उधारिनी, कलिकाल तारिनी मधुमथन गुनकथा।

मंगल विधायिनी प्रेम रस दायिनी, भक्ति अनपायनी होइ जिय सर्वथा।

—वाणी ग0 भट्ट, पृ0 13 14

निम्बार्क मतानुवर्ती श्रीभट्ट जीव के जन्म जन्मान्तर के दुखों का मूल कारण उसका गोविंद से विमुख होना अर्थात् भक्तिहीन होना स्वीकार करते हैं तथा भक्ति से अभयपद प्राप्त होना एवं यम त्रास से मुक्ति पाना संभव समझते है—

जे नर विमुख भये गोविंद सो जनम अनेक महादुख पायो।

श्रीभट के प्रभु दियो अभय पद जम डरप्यो जब दास कहायो।

—नि0मा0, पृ0 11

इसी प्रकार स्वामी हरिदास भी भयानक संसार-समुद्र का संतरण करने हेतु जीव के लिए श्रीकृष्ण के चरणों का आश्रय ही समर्थ आधार मानते हैं—

कहि श्री हरिदास तेई जीव पार भये जे गहि रहे चरन आनंद नंदसि।

—नि0मा0, पृ0 203

इस प्रकार सभी कवियों ने अपने अपने ढंग से भक्ति के महात्म्य का निरूपण किया है। मुक्ति की अपेक्षा बहुतों ने भक्ति को ही श्रेष्ठ माना है जिसका परिचय मोक्ष के प्रसंग में दिया गया है। उससे स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि गुजराती तथा ब्रज दोनों के ही कवियों ने भक्ति के आगे मुक्ति का तिरस्कार करने की भावना व्यक्त की है जो भक्ति की महिमा का चरम बिन्दु है। बहुत से कवियों ने भक्ति की प्रशंसा श्रेष्ठतम साधन के रूप में की है पर कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने उसे भगवन्त का स्वरूप बता कर साध्य की कोटि में स्थापित करने का प्रयास किया है।

भक्ति के प्रकार—भागवत के सप्तम स्कंध में नवधा अथवा नवलक्षणा भक्ति का निरूपण किया गया है—

श्रवण कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।

—अ0 5 श्लो0 23

इन नव लक्षणों में से प्रथम तीन का—नाम से, दूसरे तीन का—रूप से तथा अन्तिम तीन का—भाव से सम्बन्ध है। वल्लभाचार्य ने इन सभी लक्षणों को साधन का प्रकार माना है जिसके द्वारा दशवीं प्रेम रूपा भक्ति उत्पन्न होती है।

(अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ0 521

साधनादि प्रकारेण नवधा भक्तिमार्गतः।

प्रेम पूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्पन्दमानाः प्रकीर्तिताः।।10।।

—जलभेद)

श्री हरिभक्तिरसामृतसिन्धु के रचयिता रूप गोस्वामी ने भी भक्ति के 'वैधी' तथा 'रागानुगा' दो भेद स्वीकार किये है।

(वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनविध।

हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, पृ0 25

पूर्व विभाग, लहरी 2 श्लोक 3

भक्ति के प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों में जो लक्षण मिलते हैं उन सभी में प्रेम अथवा अनुरक्ति के शुद्ध तथा परम रूप पर बल दिया गया है। यथा—

1. सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा।।2।।

—नारद भक्तिसूत्र

2. माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः स्नेहो भक्तिरिति।

—नारद पंचरात्र

3. सा परानुरक्तिरीश्वरे।।2।।

—शांडिल्य भक्ति सूत्र

इस प्रकार भक्ति के एक ऐसे रूप को स्थिति बराबर मानी गयी जो नवधा भक्ति के इतर थी और श्रेष्ठतर भी।

प्रायः सभी प्रमुख कवियों ने भक्ति के इसी प्रकार को मान्यता दी है। विभिन्न कवियों ने इसे विभिन्न नामों से भूषित किया है।

नरसी मेहता ने नवधा के अनुकरण पर इस रागानुगा भक्ति को 'दशधा' नाम दिया है। साथ ही उन्होंने अपने आराध्य की प्राप्ति के लिए नवधा भक्ति को अशक्त भी बताया है। उनका आराध्य जो सत्य है—अनंत है, दृष्टि में नहीं आता है और वाणी से परे है, केवल दशधा के ही माध्यम से प्रकट होता है—

दृष्टे न आवे निगम जगावे वाणी रहित विचारो रे।

साथ अनंत ज जेहने कहीअे ते नवधा थी न्यारो रे।

नवधा मां तो नहीं नरवेडो दशधा मां देखाशे रे।

अचवो रस छे अेहेनी पासे, ते प्रेमी जन ने पाशे रे।

—पद 57

अष्टछापी कवि परमानन्ददास ने भी एक पद में नवधा से दशधा भक्ति को श्रेष्ठतर प्रतिपादित किया है—

ताते **दसधा** भक्ति भलो।

जिन जिन कीनी तिनके मन ते नेकु न अनत चलीं।

श्रवण परीक्षत तरे राजरिषि **कीर्तन** करि शुकदेव।

सुमिरन करि प्रह्लाद निर्भय भयो कमला करी **पदसेव**।

प्रथु **अरचन**, सुफलक सुत **बंदन दासभाव** हनुमंत।

सखाभाव अर्जुन बस कीन्हे श्री हरि श्री भगवंत।

बलि **आत्मसमर्पण** करि हरि राखै अपने पास।

अखिल प्रेम भयो गोपिन को बलि परमानंददास।

सूरसागर सारावली में इसे प्रेम लक्षणा कहा गया है—

श्रवण कीर्तन स्मरण पाद रत अरचन बंदन दास।

सख्य और आत्मनिवेदन **प्रेम लक्षणा** जास। ।।116।।

सूरसागर में इसी रागानुगा भक्ति को 'सुधाभक्ति' तथा 'प्रेमभक्ति' की संज्ञा दी गयी है। सुधाभक्ति का स्थान तामसी, राजसी तथा सात्विकी भक्ति के ऊपर माना गया है और इस प्रकार भक्ति के प्रकारों का एक नवीन वर्गीकरण प्राप्त होता है—

भक्ति एक पुनि बहु विधि होई, ज्यों जल रंग मिलि रंग सुहोई।

माता भक्ति चारि परकार, सत रज तम गुण सुधा सार।

भक्ति सात्विकी चाहति मुक्त, रजगुणी धन कुटुम्ब अनुरक्त।

तुमगुणी चाहे या भाई, मम वैरी क्यों ही मर जाई।

सुधा भक्ति मोक्ष को चाहे, मुक्ति हू को नाहीं अवगाहे।

—सू0 सा0 तृतीय स्कंध, पृ0 52

यह वर्गीकरण भी नवधा की तरह भागवत पर आधारित है परन्तु भागवत में उसे निर्गुण भक्ति कहा गया है जिसे सूर ने सुधा भक्ति कहा है—

लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुण्स्यह् युदाह्रतम्।

अहैतुक्य व्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे।।12।।

—भागवत, तृतीय स्कंध, अध्याय 29

प्रेमभक्ति नाम सूर और नंददास दोनों ने दिया है—

सूर— 1. प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होई, नाथ कृपा करि दीजै सोई।

—सू0सा0 पृ0 758

2. प्रेम भक्ति बिनु कृपा न होइ। सर्वशास्त्र मैं देखे जोइ।

—सू0 सा0

नंददास— जो यह लीला गावै चित दै सुनै सुनावै।

प्रेमाभक्ति सो पावै अरु सबके जिय भावै।

—नंद0 पृ0 182

सूरदास द्वारा दी हुई पूर्व परिभाषा से यदि इस प्रेमभक्ति की तुलना की जाय तो मुक्ति की प्राप्ति का लक्ष्य रखने के कारण यह सात्विकी भक्ति ठहरती है परन्तु नंददास का मन्तव्य कदाचित् इससे भिन्न है। उनकी प्रेमभक्ति का अर्थ विशुद्ध रागानुगा भक्ति से ही है। नंददास ने सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार भक्ति का एक रूप 'पुष्टि भक्ति' भी माना है जो उनके एक पद से प्रकट होता है—

धर्मादिक द्वारे प्रतिहार, **पुष्टि भक्ति** कौ अंगीकार।

—नंद. पृ0 342

किन्तु यहाँ उनका मन्तव्य पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाया है। 'प्रेमभक्ति' तथा 'पुष्टि भक्ति' को उन्होंने पर्याप्त माना अथवा वे इन दोनों में कोई भेद समझते थे, यह उनके काव्य से स्पष्ट नहीं होता।

'प्रेमभक्ति' का संकेत सूर और नंददास में ही नहीं मिलता गौडीय सम्प्रदाय के कवि माधवदास ने भी मानमाधुरी की फलश्रुति में इसका उल्लेख किया है-

मानमाधुरी जो सुने, होय सुबुद्धि प्रकास।

प्रेमभक्ति पावै विमल, अरु वृन्दावन वास।।40।।

—श्री मानमाधुरी, पृ0 83

अगले दोहे में कवि ने इसी अर्थ में 'रागमार्ग' का व्यवहार किया है जिससे ज्ञात होता है कि माधवदास की प्रेमभक्ति वस्तुतः रागात्मिका भक्ति का ही दूसरा नाम है—

मानमाधुरी जो पढ़ै सुनै सरस चितलाय।

राग मार्ग मार्ग में चित रहै राधाकृष्ण सहाय।।41।।

—वही

राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास ने भी प्रेम की श्रेष्ठता का निरूपण अनेक प्रकार से किया है। वे भजन के समस्त रूपों से प्रेम भजन को श्रेष्ठ कहते है—

ओरौ भजन आहिं बहुतेरे।

ते सब **प्रेम भजन** के चेरे।।151।।

—नेह मंजरी

एक दूसरे स्थल पर वे नरसी तथा परमानन्ददास की तरह ही नवधा भक्ति की तुलना में प्रेम को ही उच्च स्थान देते हैं—

महा माधुरी प्रेम निज आवै जिहि उर मांहि।

नवधा हूँ तिहि रुचति नहिं नेम सबै मिटि जाहि।।15।।

—भजन कुंडलिया

'सिद्धान्त विचार' नामक रचना में इसी विचार को गद्य में ध्रुवदास ने स्पष्ट किया है—

'पहले स्थूल प्रेम समुझे तब आगे चलै जैसे भागवत को वानी।

पहिले नवधा भक्ति करै तब प्रेमलछिना आवै।'

यहाँ स्पष्टया 'प्रेम लक्षणा' शब्द का प्रयोग किया गया है | सारावलीकार ने भी इसी को प्रयुक्त किया है | जिसका उल्लेख हो चुका है | ध्रुवदास के सहसम्प्रदायी कवि हरिराम व्यास ने पूर्वोक्त सूर आदि की तरह प्रेमभक्ति का ही व्यवहार किया है—

घर घर प्रेमभक्ति की महिमा व्यास सबै पहिचानी |

—व्यास वाणी पृ028

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि हरिव्यास ने भक्ति के इस विशिष्ट प्रकार को 'पराभक्ति' कहा है और राधा को 'पराभक्ति प्रदायिनी' की उपाधि दी है—

1. जयति जय राधा रसिकमनि मुकुट मनहारनी त्रिये |

   पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुना निधि प्रिये |

   —नि0मा0,पृ 35

2. कर्म अरु ज्ञान करि के सदा दुर्लभ सुल्लभा **परा भक्तिहि** प्रकासी |

   —वही,पृ0 59

उन्होंने इस पराभक्ति के परम पंथ को 'नेम प्रेम' दोनों से श्रेष्ठतर माना है—

रहि गयो मारग उरै नेम अरु प्रेम को पर चल्यो **परा** को परम पर पंथ |

—वही,पृ0 60

इस पराभक्ति की उपलब्धि के लिए हरिव्यास देव द्वादश लक्षण तथा दस पैड़ी का विधान किया है | द्वादश लक्षणों में तो सामान्य नैतिक बातों का ही समावेश किया गया परंतु दस पैड़ी में भक्ति के विकास का अनुक्रम निर्धारित करने का प्रयास किया गया है, जो बहुत कुछ अस्पष्ट है | दस पैड़ी वाला अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

ये **द्वादश लक्षण** अवगाहै | ते जन **परा** परम पद चाहै |

जाके दश **पैड़ी** अति दृढ़ है | बिन अधिकार कौन तहं चढ़िहै |

पहले रसिक जनन को सेवै | दूजी दया हृदय धरि लेवै |

तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि है | चौथी कथा अमृत है सुनि है |

पंचमि पद पंकज अनुरागै | षष्टी रूप अधिकता पागै |

सप्तमि प्रेम हिये विरधावै | अष्टमि रूप ध्यान गुन गावै |

नौमी तृढ़ता निश्चय गहिवै | दशमी रस की सरिता बहिवै |

या अनुक्रम करि जै अनुसरहीं | शनै शनै जग ते निरवहीं |

—नि0 मा0 पृ0 67

इसी सम्प्रदाय के कवि रूपरसिक का झुकाव वैधी भक्ति की ओर है जो उनके द्वारा वर्णित उन्चास बातों से प्रकट है—

ये उन्चास बात छिटकावै |

सो हरिव्यासी जन मन भावै |

—नि0 मा0,पृ0 120

परिभाषा की दृष्टि से पराभक्ति तथा रागानुगा भक्ति में मौलिक अंतर है। भक्ति के मूलतः दो भेद माने गये हैं परा तथा गौणी। परा भक्ति सिद्ध दशा की मानी गयी है | और गौणी भक्ति साधन दशा की। रागानुगा गौणी भक्ति का ही उपभेद है। इस प्रकार शब्द के आधार पर कहा जा सकता है कि निम्बार्क सम्प्रदाय में साध्य दशा की भक्ति मान्य है तथा अन्य सम्प्रदायों में साधन दशा की। परन्तु वस्तुतः ऐसा कोई भेद परिलक्षित नहीं होता। नरसी से लेकर हरिव्यास देव तक उक्त सभी कवियों का अभिप्राय भक्ति के एक ऐसे स्वरूप से है जो वैधी के विरूद्ध समस्त बन्धनों से मुक्त विशुद्ध प्रेम का द्योतक है। उसी के लिए सबने अपनी अपनी रूचि एवं परम्परा के अनुसार नामों का प्रयोग किया है। भेद वस्तुगत न होकर नामगत ही प्रतीत होता है। नरसी के अतिरिक्त अन्य गुजराती कवियों का झुकाव वैधी भक्ति की ओर अधिक लगता है यद्यपि उनके काव्य में भक्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा गया है।

भक्ति के मुख्य भाव—भक्ति का मूल आधार भाव तत्व माना गया है। भावों की कोई सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती अतएव भक्त और भजनीय के बीच के सम्बन्धों को भी सीमित नहीं किया जा सकता। फिर भी जिस प्रकार संसार में मानव प्रेम के चार मुख्य रूप, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य मिलते हैं उसी प्रकार भक्ति में भी इन्हीं को मुख्य भावों के रूप में स्वीकार किया गया है। दास्य सख्य का समावेश नवधा भक्ति में **'दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं'** कह कर सातवें तथा आठवें प्रकार के रूप प्राप्त होता है। नारदभक्तिसूत्र में दी हुई एकादश आसक्तियों में उन चारों भावों को सख्याभसक्ति, वात्सल्यासक्ति, दास्यासक्ति तथा कान्तासक्ति के रूप में ग्रहण किया है। शेष सात आसक्तियाँ इन मूल भावासक्तियों की सहगामिनी ही हैं विरोधिनी नहीं। श्री हरिभक्तिरसामृतसिन्धु में रागानुगा भक्ति के कामरूपा तथा सम्बन्धरूपा को **भेद** करके और पुनः सम्बन्धरूपा के अन्यान्य उपभेद करके उक्त सभी मुख्य भावों को भक्ति के अंतर्गत स्थापित किया गया है।

इन चारों भावों में अंतर्भाव का एक क्रम निर्धारित किया जाता है जिसके अनुसार प्रत्येक भाव में उनके पूर्ववर्ती भाव या भावों का अन्तर्भाव हो जाता है जैसे सख्य में दास्य का, वात्सल्य में दास्य, सख्य दोनों का और माधुर्य में दास्य, सख्य, वात्सल्य तीनों का।

किसी कवि के सम्बन्ध में आराध्य के प्रति उसके मुख्य भाव का निर्णय आत्मनिवेदनात्मक पदों के आधार पर सरलता से हो जाता किन्तु बहुत से ऐसे कवि हैं जिन्होंने इस प्रकार की पद रचना न करके वर्णनात्मक काव्य रचे हैं। उनके मुख्य भाव का निर्णय काव्य के उन भावनात्मक स्थलों के आधार पर किया जा सकता है जिनमें कवि की वृत्ति अधिक केन्द्रित मिलती हो।

सखी-भाव की प्रधानता के साथ दास्य भाव का संयोग निम्बार्क राधावल्लभीय तथा गौडीय सभी सम्प्रदायों के काव्य में प्राप्त होता है | इन सम्प्रदायों के कवियों ने राधा-कृष्ण के युगल रूप तथा उनकी कुञ्ज-लीलाओं का ही वर्णन किया है | जिन्हें देखने का अधिकार केवल राधा की सखियों अथवा सहचरियों को ही है | अतः भक्त इन लीलाओं का दर्शन मात्र सखी-भाव से कर सकता है | सखी-भाव का विकास इन कवियों ने इस प्रकार किया है कि वात्सल्य को छोड़कर शेष सभी भावों, दास्य, सख्य तथा माधुर्य का समावेश उसमें हो जाता है किंतु अंततः प्रधानता माधुर्य को ही प्रदान की गयी है |

राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास ने भजनाष्टक में श्रेष्ठता का एक क्रम निर्धारित किया है जिसमें मधुररस को सर्वोपिरि स्थान दिया है और शान्तरस को निम्नतर—

ज्ञान सांत रस ते अधिक अद्‌भुत पदई दास।

साख भाव ताते अधिक जिनमें प्रीति प्रकास।।1।।

अद्‌भुत बाल चरित्र को जो जसुदा सुख लेत।

ताते अधिक किसोर रस ब्रज बनितन कौ हेत।।2।।

सर्वोपरि है मधुर रस जुगल किसोर विलास।

ललितादिक सेवत तिनहि मिटत न कबहुँ हुलास।।3।।

मधुर रस के आस्वादन के लिए ध्रुवदास के मत से सखियों की शरण ग्रहण करना अनिवार्य है—

सखियन सरन भाव धरि आवै।

सो या रस के स्वादहि पावैं।।7।।

—रतिमंजरी

सखी-भाव और सेवा-भाव का संयोग निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि श्रीभट्ट की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—

टारौं निजकर भंवर लै चारों नैननि नेह।

सोवत जुगलकिसोर जहँ सेऊँ चरन सुदेह।।

—नि0 मा0, पृ0 13

श्रीभट्ट के काव्य में इसी भाव ने उन्हें कृष्ण के चाकर तथा दास बनने की भावना दी—

1. चरनकमल की सेवा दीजे चेरो करि राखो घर जायो।

श्रीभट्ट के प्रभु दियो अभय पद जम डरप्यो जब दास कहायो।

—नि0 मा0, पृ0 11

2. जनम जनम जिनके सदा हम चाकर निशि भोर।

त्रिभुवन पोषण सुधाकर ठाकुर जुगल किशोर।

—नि0 मा0, पृ0 12

इसी प्रकार हरिव्यास देव भी अपनी मनोकामना पूर्ति के लिए राधाकृष्ण के महल की सेवा-टहल करने की इच्छा रखते हैं—

सुख दुख अवधि स्यामा स्याम।

नित्य धाम निवास अद्‌भुत अहनिशा अभिराम।

महलनी निज टहल में तत्पर सदा सब जाम।

'श्री हरिप्रिया' अंग अंग सेवा पुजवही मनकाम।।82।।

—नि0मा0, पृ0 68

अष्टछाप के कवियों ने सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार कृष्ण के बाल रूप की आराधना करते हुए वात्सल्य रस को पर्याप्त महत्व दिया है विशेषतः सूर तथा परमानन्द दास ने। परन्तु वात्सल्य रस का काव्य लिखना और वात्सल्य भाव से भक्ति करना दो भिन्न वस्तुएँ हैं। जहाँ तक भक्ति के भाव का सम्बन्ध है अष्टछाप के कवियों ने सख्य तथा दास्य को सर्वाधिक महत्व दिया है। उनके लिए प्रयुक्त अष्टसखा शब्द उनके सख्य भाव पर विशेष बल देता है। माधुर्य रस के पद भी सूरदास आदि कवियों ने पर्याप्त संख्या में लिखे हैं परन्तु वात्सल्य भाव की तरह माधुर्य भाव की भक्ति भी इन कवियों में प्राप्त नहीं होती। कृष्ण को पुत्र अथवा पति मानने के स्थान पर कवियों ने सखा तथा स्वामी ही माना है | यह अवश्य है कि आसक्तियों के सिद्धान्त से कभी यशोदा में कभी राधा में अपने भाव की स्थापना करके वात्सल्य अथवा माधुर्य भाव की अनुभूति इन कवियों ने प्राप्त की है | माधुर्य और वात्सल्य एक प्रकार से इस सम्प्रदाय में मान्य गोपी-भाव में ही समाविष्ट हो जाते हैं। गोपियों के तीन भेद किये गये हैं, गोपी, गोपांगना और ब्रजांगना। उन्हें क्रमशः अनन्यपुर्वा, अन्यपुर्वा तथा सामान्या कहा गया है। पहली दो प्रकार की गोपियों में माधुर्य भाव तथा तीसरे प्रकार की गोपियों में वात्सल्य भाव की स्थापना की गयी है। सख्य तथा दास्य अष्टछाप के कवियों के अपने भाव हैं और माधुर्य तथा वात्सल्य इन गोपियों के आश्रित भाव। यों कृष्ण के प्रति सख्य भाव में भी आदर्श रूप में सुबल, सुदामा, उद्धव आदि को ग्रहण किया जा सकता है परन्तु अष्ट सखाओं में यह भावना रूढ़ हो गयी थी। वात्सल्य भाव का काव्य ब्रजभाषा के अन्य सम्प्रदाय के कवियों में उपलब्ध नहीं होता।

जहाँ तक दास्य भाव का सम्बन्ध है उसका सबसे अधिक प्रस्फुटित रूप सूर में मिलता है। अष्टभाव के अन्य कवियों ने भी इस प्रकार के पद पर्याप्त संख्या में लिखे हैं। सूर के दास्य भाव में दैन्य का अंश इतना अधिक है कि उनका स्थान अन्य कवियों से स्वतः पृथक हो जाता है।

भक्ति और कर्मकांड— भक्ति में प्रेम भाव को ही सब कुछ मानने वाले भक्त कवियों ने कर्मकांड की उपेक्षा ही नहीं की अपितु निंदा और तिरस्कार भी किया है |

सूरदास ने भी अत्यधिक तीव्रता से कर्मकांड के विविध स्वरूपों की निस्सारता प्रदर्शित की है यद्यपि उन्हें पेट भरने का साधन कहने का नरसी मेहता विद्रोहात्मक स्वर वे नहीं अपना सके—

जौ लौं मंकामना न छूटे |

तो कहा योग यज्ञ ब्रत कीन्हे बिनु कन तुस को कूटे |

कहा सनान किये तीरथ के अंग भसम जट जूटे |

कहा पुराणन पढ़ जु अठारह ऊर्ध्व धूम के घूटे |

जग सोनाकी सकल बड़ाई इहि ते कछु न खूटे |

करनी और कहै कछु औरै मन दसहू दिसि लूटे |

काम क्रोध मद लोभ शत्रु हैं जो इतनो सुनि छूटे |

सूरदास तबही तम नाशै ज्ञान अग्नि झर फूटे |

—सू0 सा0,पृ0 4

सूरदास की यह 'ज्ञान अग्नि झर' ज्ञानमार्गीय अर्थ न देकर तत्व-दर्शन तथा उससे उपलब्ध आत्मप्रकाश का ही बोध कराती है | सूरसागर में ऐसे भी कथन एक आध स्थल पर मिल जाते हैं जिनमें भक्ति के लिए यम-नियमादि अष्टांग योग की स्पष्ट आवशयकता बतायी गयी है —

1. भक्ति पंथ की जो अनुसरै, सो अष्टांग योग को कर |

   यम नियमासन प्राणायाम, करि अभ्यास होई निष्काम |

   प्रत्याहार धारणा ध्यान, करै जु छाड़ि वासना आन |

   क्रम क्रम करिकै करै समाधि, सूर श्याम भजि मैटै उपाधि |

   —सू0 सा0, पृ0 46

2. योग न युक्ति ध्यान नहिं पूजा वृद्ध भये अकुलात |

   —वही

ऐसे स्थल सूर की मौलिक प्रौढ़ भक्ति भावना के विरोधी लगते है अतएव इनके प्रक्षिप्त होने अथवा प्रारम्भिक अवस्था के द्योतक होने की संभावना लगती है |

ब्रजभाषा के अनेक अन्य कवियों ने कर्मकाण्ड का विरोध किया है | हरिवंशी कवि हरिराम व्यास कृष्ण की भक्ति के बिना सभी कुछ व्यर्थ मानते हैं | उनके मत से योग,यज्ञ आदि कर्म धर्म सब ऊपरी वस्तुएँ ही हैं इनका प्रवेश अभ्यंतर तक नहीं है—

सांचौई गोपाल गोपाल रढ़िबौ |

रूपशील गुन कौन काम को हरि की भक्ति बिनु पढ़िबौ |

जोग जज्ञ जप तप संजम व्रत कलई कौ सौ मढ़िबौ |

जैसे अन्न बिना तुष कूटत, वारु में तेल न कढिबौ |

अैसेंहि कर्म धर्म सब हरि बिनु, बिनु बैसंदर दढ़िवौ |

—व्यासवाणी.पृ0 129

इसी प्रकार का भाव निम्बार्क मतानुयायी श्री भट्ट भी व्यक्त करते हैं—

मन वच राधा लाल जपे जिन |

अनायास सहजहिं या जग में सकल सुकृत फल लाभ लहायो तिन |

जप तप तीरथ नेम पुण्य व्रत सुभ साधन आराधन ही बिन |

जय 'श्री भट' अति उत्कट जाकी महिमा अपरम्पार अगम गिन |

—नि0 मा0,पृ0 12

भक्ति-पथ में सत्संग और नाम-कीर्तन की विशेष महत्ता— यों तो भक्त कवियों ने भक्ति से सम्बंधित सभी वस्तुओं के महत्व को ही स्वीकार किया है परंतु सत्संग तथा नाम-कीर्तन को विशेष महत्ता दी गयी है | सत्संग—भक्ति की उत्पति एवं विकास के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करने वाला अद्वितीय साधन माना गया और बहुधा संतसंग और साधूसंग को उसके पर्याय रूप में ग्रहण किया गया है | नाम-कीर्तन अथवा नाम-स्मरण को भक्ति के अन्य साधनों में इसलिए सर्वाधिक महत्व दिया गया क्योंकि भक्त को भगवान का परिचय नाम के आधार पर प्राप्त हो पाता है | वही दोनों का मध्यस्थ है | नाम के अभाव में नामी का परिज्ञान संभव नहीं | भक्ति के प्रायः सभी मान्य ग्रंथों में इन दोनों साधनों का माहात्म्य वर्णित किया गया है किंतु भक्त कवियों ने उसका विशेष रूप से वर्णन किया है |

सूरदास कलियुग में नाम को ही एक मात्र आधार समझते हैं | वे नाम और साधु संगति को भव बंधन से मुक्ति का प्रधान साधन मानते हैं —

1. है हरि नाम को आधार |

   और इहि कलिकाल मांही रह्यो विधि व्यवहार |

   सूर हरि को सुयश गावत जाहि मिटि भवभार |

   —सू0 सा0, पृ0 44

2. जा दिन संत पाहुने आवत

   .....

   संगति रहै साधु की अनुदिन भव दुख हरी नसावत |

—सू0 सा0, पृ0 45

हितहरिवंश ने भी एक स्थल पर सत्संग की महिमा स्वीकार की है—

तनहि राख सतसंग में मनहिं प्रेम रस भेव |
सुख चाहत हरिवंश हित कृष्ण कल्पतरु सेव |

—श्री हित स्फुट वाणी जी, पृ0 33

हरिराम व्यास नाम और सत्संग दोनों को ही विशेष महत्व देते हैं —

1. कलियुग श्याम नाम आधार |

—व्यास वाणी,पृ 172

2. कलियुग मन दीजै हरि नामै |

—वही पृ0 173

3. करौ भैया साधुनि ही सों संग |
पति गति जाय असाधु संग ते काम करत चित भंग |
हरि ते हरिदासनि की सेवा परम भक्ति को अंग |

—वही,पृ 94

4. साधु सरसीरुह को सो फूल |
जिनकी संगति भक्ति देति, हरि हरत सकल भ्रममूल |

—वही,पृ 94

निम्बार्क मतानुयायी परशुराम देव तथा रूपरसिक ने भी नाम और सत्संग को पर्याप्त महत्व दिया है—

परशुराम देव. 1— ज्यों दर्पन पावक पड़े परसत ही रवि धूप |

परसुराम हरि नाम ते प्रगटे हरि निज रूप |

—नि0मा0,पृ0 78

2— संत संगति बिनु जो भजन सो न लहै सुखसीर |

परसा मिलै न सिंधु सो नदी विहीना नीर |

—वही,पृ 77

रूपरसिक. 1— नाम महात्म्यो ऐसो सोई, याते अधिक और नहि कोई |

नामहि सो नित बांधौ नातौ, जगत मोह सो डोरा डातौ |

—नि0मा0,पृ0 121

2— पहले श्रद्धा लक्षण जानो, ता पीछे सतसंग बखानो |

सतसंग न करि हरि को भजो, आनदेव को आश्रय तजो |

—नि0मा0,पृ0 120

गौडीय कवि गदाधर भट्ट नाम को नामी से भी अधिक महत्व देते हैं—

है हरि ते हरिनाम बड़ेरो, ताकों मूढ़ करत कत झेरो |

—वाणी,पृ0 14

कलियुग को कराल व्याल का रूपक देकर वे नाम को महामंत्र के सदृश शक्तिवान सिद्ध करते हैं और निरंतर भगवन्नाम-स्मरण पर विश्वास रखते हैं क्योंकि उसके द्वारा सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं—

हरि हरि हरि हरि रट रसना मम |

हेमहरन द्विजद्रोह मान मद अरु पर गुरु दारागम |

नाम प्रताप प्रबल पावक के होत जात सलभा सम |

इहि कलिकाल कराल व्याल विष, ज्वाल विषय मोय हम |

बिनु इहि मंत्र गदाधर के क्यों मिटि है मोह महातम |

—वही,पृ0 15

इस प्रकार सत्संग और नाम के विशेष महत्व को भक्त कवियों ने व्यापक रूप से स्वीकार किया है |

भक्ति और वैराग्य— ज्ञानमार्गी संतों की तरह ही भक्त कवियों ने भी संसार के प्रति विरक्ति का भाव प्रदर्शित किया | भक्ति के पथ में एक प्रकार निवृत्ति तथा प्रवृत्ति दोनों का समंवय हो गया | प्रवृत्ति का अभाव भक्ति लक्ष्य न होकर संसार विषयक प्रवृत्ति के स्थान पर भगवद् विषयक प्रवृत्ति का स्थापन उसका लक्ष्य रहा | इस पुनर्संस्थापन के लिए संसार से निवृत्ति की अनिवार्य आवश्यकता हुई | भक्त कवियों द्वारा लिखित सभी विरागपूर्ण पदों की मूल आधार-भूमि प्रायः यही है | माधुर्य भाव की भक्ति को अपनाने वाले कवियों में यह स्थिति एक विरोधाभास उत्पन्न कर देती है | विरक्ति का अनुरक्ति से विरोध है और ऐसे कवियों में एक ओर अनुरक्ति इस सीमा तक पहुँच जाती है कि उनके काव्य में पग-पग पर स्थूल विलासात्मक श्रृंगारिक चित्रण उपलब्ध होते हैं और दूसरी ओर विरक्ति की तीव्रता में वे सांसारिक विषय वासना तथा स्नेह सम्बंधों की उतनी ही तीव्रता से निंदा करते भी पाये जाते हैं | यह एक समस्या है जिस पर अन्यत्र विचार करना उचित होगा | यहाँ भक्त कवियों की विरक्तिपूर्ण काव्य रचने की प्रवृत्ति का निर्देश मात्र अभीष्ट है | डॉ.दीनदयाल गुप्त के अनुसार इस प्रकार के पद भक्ति के एक प्रकारविशेष 'शान्ता भक्ति' के अंतर्गत आते हैं |(अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ0 649)

सूर ने बहुसंख्यक पदों में सांसारिक संबंधों की निस्सारता प्रदर्शित की है | उनके ऐसे सभी पद आत्मनिवेदनात्मक हैं—

1. हरि हौं महा पतित द्रोही अभिमानी |

   परमारथ सों पीठि विषयरस भावभगति नहिं जानी |

निशि दिन दुखित मनोरथ करि, करि पीवत हू तृष्णा न बुझानी |

—सू0 सा0, पृ0 18

2. इन्द्री स्वाद विवस निसिबासर आप अपुनपौ हार् यो |

—वही, प 19

सांसारिक विषयरस का प्रपंच छोड़ने का आग्रह हित हरिवंश में भी मिलता है क्योंकि वे मनुष्य-जीवन का लक्ष्य विषयासक्ति न मानकर कृष्णासक्ति मानते थे—

1. सकहि तौ सब परपंच तजि कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि |

—श्री हित स्फुटवाणीजी, पृ09

2. मानुष को तन पाय भजौ बृजनाथ को |
   दर्वी लेवे मूढ़ जरावत हाथ कों |
   जय श्री हित हरिवंश प्रपंच विषय रस मोह के |
   हरि हां बिन कंचन क्यों चलैं पचीसा लोह के |

—श्री हित स्फुटवाणीजी, पृ0 11-12

स्वामी हरिदास ने अपने अनुभव के आधार पर माया-मद, गुन-मद तथा यौवन मद सभी को मिथ्या बताया है और संसार की क्षणभंगुरता का दिग्दर्शन कराया है तथा आजीवन हरि-भजन का उपदेश दिया है—

1. जगत प्रीति करि देखी नाही गटी को कोऊ |
2. जौलौं जीवै तौलौं हरि भजि रे मन और बात सब बादि |
   दिवस चारि के हलाभला में तू कहा लेइगो लादि |
   मायामद, गुनमद, जोवनमद भूल्यो नगर विदादि |
   कहि 'श्री हरिदास' लोभ चरपट भयो काहे की लगै फिरादि |

—नि0 मा0, पृ0 204

निम्बार्क- मतानुयायी हरिव्यास देव चाहते हैं कि मनुष्य संसार के भ्रमों को छोड़कर 'श्री हरि प्रिया' का भजन अनन्यभाव से करे—

भर्म तजौ श्री हरिप्रिया भजौ सजौ अनन्यव्रत एक |

यही यही निश्चय कही सही गही उर टेक |

यही है, यही है, भूलि भर्मों न कोउ, भूलि भर्में ते भव भटकि मरिहै |

लाडिली लाल के नित्य सुखहार बिन कौन विधि वार ते पार परिहै |

सांसारिक सम्बन्धों से जो मोह उत्पन्न हो जाता है उसे बेड़ी समझते हुए गौडीय सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट श्रीकृष्ण से उसके काट देने की प्रार्थना करते हैं और काम लोभ आदि उन सभी विकारों को, जो विषयासक्ति उत्पन्न करते हैं, अहेरी की संज्ञा देते हैं, जो भक्ति की मति रूपी मृगी को घेरे हुए है—

कबै हरि कृपा करि हौ सुरति मेरी।

और न कोई काटन को मोह बेरी।

काम लोभ आदि जे निर्दय अहेरी।

मिलि के मन मति मृगी चहूंधा घेरी।

—ग0 वाणी पृ0 7

इस प्रकार के सभी कथनों का उद्देश्य वस्तुतः निंदा करके अथवा निस्सरता प्रदर्शित करके संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न करना ही है और वह भी कृष्ण के प्रति वास्तविक अनुराग एवं भक्ति उत्पन्न करने के निमित्ति।

भक्ति-मार्ग में गुरू का स्थान— भारतीय परम्परा के अनुसार साधना के समस्त रूपों एवं मार्गों में गुरु की अनिवार्य आवश्यकता मानी गयी है। भक्ति में भी गुरु को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ब्रजभाषा में अष्टछाप के कवियों ने गुरु के महत्व को पूर्ण रूप से स्वीकार किया। उनके द्वारा वल्लभाचार्य तथा विठ्ठलनाथ के विषय में गुरु भाव से लिखे प्रशंसा के अनेक पद उपलब्ध होते हैं। सूरदास, जिन्होंने प्रकट रूप से गुरु के सम्बन्ध में बहुत कम लिखा है, वे भी गुरु की महिमा मुक्त हृदय से स्वीकार करते हैं—

गुरु बिनु ऐसी कौन करौ।

माला तिलक मनोहर बाना लै सिर छत्र धरै |

भवसागर ते बूड़त राखै दीपक हाथ धरै।

सूरस्याम गुरु ऐसो समरथ छिन में लै उधरै।

—सू0सा0, पृ0 71

हितहरिवंश मनुष्य के कल्याण के लिए जहाँ प्रपंच-त्याग और कृष्णानाम-स्मरण को आवश्यक समझते हैं वहाँ गुरुचरणों का आश्रय ग्रहण करना भी अनिवार्य समझते हैं—

जय श्री हित हरिवंश विचारि के मनुज देह गुरु चरण गहि।

—श्री हित स्फुटवाणी जी, पृ0 9

निम्बार्क मत के परशुराम देव ने अपने परशुराम सागर में गुरु के सम्बन्ध में अनेक दोहे लिखे हैं। उनके 'अनुराग भक्त' के लिए गुरु के शब्दों पर ही विश्वास करना अभीष्ट है। संसार की बातों की उसे उपेक्षा करनी चाहिए क्योंकि गुरु ही भवसागर से पार कर सकता है—

श्री गुरु समझ सनेह करि बारम्बार सम्हार।

परशुराम भवसिन्धु को नाव उतारै पार।।3।।

श्री गुरु कहे सो मानिये सत्य शब्द बलि जांव।

और झूठ सब जगत कै सुमिरि सांच हरि नांव।।7।।

—नि0 मा0 पृ0 74-75

वल्लभ तथा गौडीय सम्प्रदाय के भक्तों ने गुरु में ही कृष्ण की भावना करके हरि गुरु की एकता को चरितार्थ किया। वल्लभाचार्य और चैतन्य के अनुयायियों ने प्रकट रूप से इस धारणा को व्यक्त किया | चौरासी वैष्णवन की वार्ता में गुरु-यश वर्णन में सूरदास का कथन 'कछु न्यारो देखूं तो न्यारो कहूँ' तथा माधवदास आदि का 'कृष्ण सम्बन्ध रूप चैतन्य' कहना इसका प्रमाण है।

भक्ति की सार्वजनीनता— भक्ति का विकास प्रारंभ से ही सार्वजनीनता की भावना को लेकर हुआ जो भागवतादि ग्रंथों से प्रकट हैं। सूर ने इतनी ही स्पष्टता से इस सत्य को व्यक्त किया है—

1. कह्यो शुक श्री भागवत विचार।

   जाति पांति कोउ पूछत नाहीं श्रीपति के दरबार।(सू0 सा0, पृ0 23)

2. बैठत सभा सबै हरि जू की कौन बड़ो को छोट।(—वही)

3. हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोई।

   ऊँच नीच हरि गिनत न दोई।(सू0 सा0, पृ0 24)

अष्टछाप के कवियों से इतर अन्य कवियों ने भी इस प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं। हितहरिवंश भी विप्र-शूद्र का भेद तथा कुल की श्रेष्ठता-हीनता को भक्ति के प्रेमोन्माद के आगे निरर्थक मानते हैं—

जहां श्री हरिवंश प्रेम उन्माद।

कुल बिन कहौं कौन सौ चाक।

सहज प्रेम रस सांचे पाक।

रंक ईश समुझत नाहीं।

विप्र शूद्र न कौन कुल कास।

सुनहु रसिक हरिवंश विलास।

—श्री हित चौरासी सेवक वाणी, पृ0 52

हरिराम व्यास के अनुसार भक्ति और जाति में बैर है—

व्यास जाति तजि भक्ति कर, कहत भागवत टेरि।

जातिहिं : भक्तिहिं ना बने, ज्यों केरा ढिग बैरि।

—व्यास वाणी, पृ0 186

वे निश्चित रूप से जाति और जनेऊ से व्यक्त होने वाली ऊँच-नीच तथा जाति-भेद की भावना को भक्ति-मार्ग में स्थान नहीं देते थे—

भक्ति में कहा जनेऊ जाति,

—व्यास वाणी, पृ0 99

गोपियों का आदर्श मानना तथा अन्य मान्य भक्तों के साथ गणिका का स्मरण करना जो कवियों ने बराबर किया है, इनसे प्रकारान्तर से स्त्रियों का भक्ति-मार्ग में समानाधिकार स्वीकृत होता है।

भक्तों की प्रशंसा तथा उनके लक्षण— भक्त के लिए गुजराती में नरसी मेहता ने सामान्यतः 'वैष्णव' शब्द का प्रयोग किया है। उनके अनुसार वैष्णव का जीवन धन्य है क्योंकि वह अपना ही नहीं, अपने परिवार तथा पड़ोसी सभी का उद्धार करता है।

भक्तों के सुयश का वर्णन भक्त कवियों ने बार-बार किया है। सूरसागर के प्रथम स्कंध में सूर के इस सम्बन्ध के अनेक पद मिलते हैं। लक्षण न देकर सूर ने भक्त के महत्व को ही प्रकट किया है। वे भक्त को इसलिए श्रेष्ठ मानते हैं कि वह भगवान से सम्बन्धित है। भगवान से भक्त अधिक है ऐसी धारणा उनमें नहीं मिलती—

1. हरि के जन सब ते अधिकार।(सू0 सा0, पृ0 5)
2. हरि जू के जन की अति ठकुराई।

   महाराज ऋषिवर सुरनर मुनि देखत रहे लजाई।(सू0 सा0, पृ0 6)

भक्त-प्रशंसा में राधावल्लभीय कवि हरिराम व्यास के भी अनेक पद मिलते हैं जिनमें परम्परागत रूप में मान्य अजामिल, ध्रुव आदि भक्तों के उल्लेख के साथ भक्तों के श्रेष्ठ गुणों का अनुकथन है। व्यास के अनुसार भक्त कभी दुखी नहीं होते और उनको कभी माया व्याप्त नहीं होती।

1. सुनियत कबहुँ न भक्त दुखारो।(व्यास वाणी पृ0101)
2. माया भक्त न लगतै जाई।(वही,105)

भक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को भक्त का पथ पहले ग्रहण करना चाहिए और उसकी जूठन भी खाना चाहिए। जो ऐसा नहीं करते थे वे नारकीय जीव हैं क्योंकि भक्त के पीछे भगवान तथा गंगा चलती है। वस्तुतः साधु भक्त की चरण-रज के द्वारा ही करोड़ों पतितों का उद्धार हो जाता हैं—

जूठन जो न भक्त की खात।

तिनके मुख सूकर कूकर के भक्षि अभक्षि पोषत गात।

.....

हरि भक्तनि पाछै आछै डोलत हरि गंगा अकुलात।

साधु चरनरज मांझ व्यास से कोटिनि पतित समात।

—वही, पृ0 103-104

भक्ति रस— शास्त्रीय रूप में भक्ति के लिए 'रस' शब्द का प्रयोग कदाचित ही किसी कवि ने किया हो परन्तु भावात्मक दृष्टि से 'भक्ति रस' शब्द का प्रयोग ब्रजभाषा ही नहीं, गुजराती के कवियों ने भी अनेक बार किया है। गुजराती में नरसी तथा केशवदास ने इसका प्रयोग किया है—

नरसी—भूतल **भक्ति** पदारथ मोटुं

.....

अे **रस** नो स्वाद शंकर जाने के जाणी शुक जोगी रे।

कोई अेक जाणे ब्रज नी गोपी भणे नरसैयों भोगी रे।

—पद 1

केशवदास— योग श्रृंगार अध्यात्मक ज्ञान।

केवल **भक्ति रस** भगवान।

—मथुरालीला

नरसी ने 'भक्ति रस' के ही नहीं, उसी भाव के अन्य शब्द 'प्रेम रस' तथा 'लीला रस' का भी व्यवहार किया है।

ब्रजभाषा में हरिराम व्यास ने भक्ति रस की उत्पत्ति के लिए भाव अनिवार्य माना है—

भाव बिना न **भक्ति रस** उपजै यह सब सन्त बतावत।

—व्यास वाणी, पृ0 159

हितहरिवंश सहज **प्रेम रस** की सर्वश्रेष्ठ मानते हैं—

1. सहज **प्रेम रस** सांचे पाक |

—श्री हित चैरासी सेवक वाणी, पृ0 52

2. जे हरिवंस **प्रेम रस** झिले।

क्यों सोहै लोगनि में मिले।

—वही, पृ0 53

भाव-पक्ष

कृष्ण-काव्य में आत्मपरक भावाभिव्यक्ति

काव्य में अभिव्यक्त सभी भाव वास्तव में कवि द्वारा ही अनुभूत होते हैं परन्तु अभिव्यक्तीकरण में किसी वाह्य माध्याम को स्वीकार करने, न करने के कारण सामान्यतः अभिव्यक्ति के दो रूप हो जाते है। एक दशा में कवि अपने द्वारा अनुभूत भावों को वैयक्तिकता के आग्रह के साथ उत्तम पुरुष में ही अभिव्यक्त करता है और दूसरी दशा में अपने से इतर कल्पित अथवा यथार्थ वास्तुओं तथा व्यक्तियों के माध्यम से। शास्त्रीय शब्दावली में पहली दशा में आश्रय का स्थान वह स्वयं ही ले लेता है और कभी-कभी अपने को ही आलम्बन भी बना लेता है, दूसरी दशा में आलम्बन और आश्रय दोनों उससे पृथक रहते हैं। पहली अवस्था में उसकी अभिव्यक्ति अन्तर्मुखी होती है, दूसरी अवस्था में वहिर्मुखी। अभिव्यक्ति के इसी द्विधा स्वरूप् के आधार पर पहले प्रकार का काव्य **आत्मविषयात्मक** (Subjective Poetry) कहलाता है और दूसरे प्रकार का काव्य **वाह्यविषयात्मक** (Objective Poetry) । आत्मपरक काव्य को कोटि में कृष्ण कवियों द्वारा लिखित वे ही पद, वे ही अंश आते है जिनमें उन्होंने—

(क) आत्मनिवेदन, दैन्य, दास्य, सख्यादि भावों की अभिव्यक्ति की है।

(ख) विविध कृष्ण-लीलाओं में स्वयं को दर्शक या पात्र के रूप में भाग लेते हुए चित्रित किया है अथवा अपने ही किसी अनुभव को कृष्ण-लीला से सम्बद्ध कर दिया है।

वाह्यविषयात्मक भावाभिव्यक्ति

किसी भी कवि की वास्तविक महत्ता भावानुभूति की गहराई एवं व्यापकता से आँकी जाती है और उसके काव्य की सफलता भावों के सूक्ष्म, सशक्त तथा संवेदनीय निरूपण में निहित रहती है। कवि का हृदय किस वस्तु से प्रेरणा पाकर कब, कहाँ, कितना भावुक हो उठे इसके लिए कोई विधान नहीं बनाया जा सकता। यह तो कवि विशेष की संवेदनशीलता, मनोवृत्ति और स्वाभाव के आश्रित रहता है । फिर भी कुछ स्थितियाँ, कुछ स्थल ऐसे अवश्य होते हैं जहाँ भावुक कवियों का हृदय विशेष रूप से रम जाता है। ऐसे स्थलों को 'भावमय स्थल' कहा जा सकता है। वाह्यविषयात्मक काव्य में ऐसे स्थलों का विशेष महत्व होता है।

कृष्ण-काव्य में भावमय स्थल— कृष्ण-काव्य भावों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध काव्य है। जीवन का एक विस्तृत खंड उसकी आधारभूमि रहा है। शैशव, कैशोर्य और तारुण्य की अगणित सूक्ष्म एवं गहन अनुभूतियों का विशाल संचय उसमें अत्यंत सहज रूप में उपलब्ध हो जाता है। वात्सल्य और श्रृंगार की जन सीमाओं का स्पर्श कृष्ण-भक्त कवियों ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसी दशा में थोड़े से भावमय स्थलों को चुन कर अलग निकालना सरल नहीं है। फिर भी विवेचन की सुविधा के लिए निम्नलिखित भावमय स्थल प्रधान रूप में चुने जा सकते हैं—

1. कृष्ण की बाल लीलाएँ— बालस्वभाव और वात्सल्य
2. रास, दान, मान और पनघट लीलाएँ

3. संयोग वर्णन

4. विप्रलंभ तथा भ्रमरगीत

आत्मनिष्ठ काव्य में कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी दोहरे ढंग से होती है। कुछ बातों को तो वह अपनी कहकर व्यक्त करता है और कुछ को अपनी भावना में रंगकर। आत्मीयता के विस्तार की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। अतएव आत्म-भावाभिव्यक्ति का अत्यन्त व्यापक अर्थ ग्रहण करते हुए एक मत ऐसा भी है जो समस्त कृष्ण-काव्य को आत्मविषयात्मक काव्य की कोटि में रखता हैं। लेकिन सीमित अर्थ लेने पर पूर्वोक्त अंश ही वास्तव में इस कोटि में आते हैं। यहाँ इसे सीमित अर्थ में ही ग्रहण किया गया है।

आत्मविषयात्मक कथनों को काव्य की मार्मिकता प्रदान करने में विशेष कठिनाई होती है क्योंकि भावों के साधारणीकृत होने में 'अहं' की सीमाएँ बाधा बन कर आ खड़ी होती हैं। यदि अनुभूति इतनी गहरी, इतनी तीव्र न हुई कि उन्हें पार कर जाय तो इस प्रकार का सारा काव्य व्यक्ति का संकुचित प्रभावहीन परिचय मान बनकर रह जाता है। किन्तु सूर, मीरां आदि जिन भक्त कवियों ने इस प्रकार के पदों का सृजन किया है उनकी स्थिति इससे भिन्न है। उनके लिए भक्ति का आवेग ही अहं की सारी सीमाओं का पर्यवसान करता हुआ हृदय को निर्मल बनाकर आराध्य के चरणों में अर्पित करने का एक मात्र उपाय था। प्रायः कहीं भी उसका आत्मनिवेदन अहं की संकुचित अभिव्यक्ति नहीं बना। उनके वैयक्तिक अनुभव से संयुक्त कथन भी किसी न किसी रूप में इतने भाव संवलित हैं कि कोई भी उन्हें परिचय मात्र नहीं कह सकता। कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा लिखे गये आत्मविषयात्मक पद श्रेष्ठतम काव्य की कोटि तक पहुँच जाते हैं।

सूरदास के प्रथम स्कंध में संकलित सूरदास के अनेक पद उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ब्रजभाषा में सूर के अतिरिक्त अन्य कई अष्टछापी कवियों ने आत्मनिवेदन के पद रचे हैं, अन्य सम्प्रदायों के हरिराम व्यास, गदाधर भट्ट, श्री भट्ट तथा हरिदास आदि के पदों में ऐसे उद्गार मिलते हैं किन्तु सूर का भाव-जगत इतना विस्तृत है कि वे अकेले ही सबका प्रतिनिधित्व करते हैं। साथ ही उनकी जैसी मार्मिकता एवं विविधता भी अन्यत्र दुर्लभ है। मीरां की स्थिति इस विषय में सूर से भी अधिक महत्वपूर्ण है। कारण यह कि उनका लगभग समस्त काव्य आत्मविषयात्मक है। मीरां ने प्रायः सब कुछ लीलागान के रूप में न लिखकर आत्मानुभूत संवेदन के रूप में लिखा है। वैयक्तिकता का स्वर उनके पदों में, मणियों में सूत्र की तरह व्याप्त है।

जिस प्रकार आराध्य एवं आराधक के बीच सम्बन्धों के कई रूप हैं उसी प्रकार उनके अनेक स्तर भी होते हैं। दास्य, दैन्य आदि भावों के एक स्तर पर एक प्रकार के उद्गार तथा दूसरे स्तर पर दूसरे प्रकार के उद्गार मिलते हैं जिनका आधार स्नेह और तन्मयता का अतिरेक है। आराध्य की ओर जिसके प्रेम में जितनी उत्कटता होगी वह कवि उतने ही उच्च स्तर से, उतनी ही मार्मिकता से पूर्ण उद्गार व्यक्त करेगा। इन उद्गारों के और भी सूक्ष्मतर भेद होते हैं जो कवि की वैयक्तिक संवेदनशीलता, अभिव्यंजनाशक्ति तथा स्वाभाव विशेष पर आधारित रहते हैं।

आत्मनिवेदन—आत्मनिवेदन की भावना सूर, मींरा और नरसी तीनों में प्राप्त होती है किन्तु तीनों की अपनी-अपनी विशेषता स्पष्ट रूप से पृथक झलकती है, तीनों का आत्मनिवेदन न्यूनाधिक अंशों में दैन्य से संयुक्त और दास्य की ओर उन्मुख है। फिर भी किसी में दास्य भाव अप्रधान है, किसी में प्रेम की कातरता है, किसी में दैन्य की विह्वलता और किसी में प्रगल्भता, हठ, खीझ तथा उसके बाद भी अडिग विश्वास।

यह आत्मनिवेदन की वृत्ति वस्तुतः विशुद्ध प्रेम से उत्पन्न होती है और उसी से पुष्ट भी होती है। प्रेम के मूल में जो भाव होगा, वही आत्मनिवेदनात्मक काव्य में प्रतिबिम्बित होगा।

सूर ने प्रधानतः अपने को दास या सेवक और कृष्ण को अपना स्वामी स्वीकार किया है। नाथ, प्रभु, स्वामी आदि शब्दों से आराध्य को संबोधित अथवा विशेषित करना तथा चरण-शरण प्राप्ति की कामना करना इसी का द्योतक है। वस्तुतः कृष्ण का स्वामित्व-लाभ करके ही सूरदास का दासत्व सार्थक सिद्ध होता है। वे भले-बुरे जैसे भी हैं कृष्ण के ही हैं। उन्हें छोड़कर किसी और के द्वार पर नहीं जा सकते। वे कृष्ण के खरीदे हुए गुलाम हैं और जब कोई ऐसा कहता है तो उसे सुन कर उनका हृदय तृप्त हो जाता है। कृष्ण रुष्ट भी हो जाँय तो भी वे द्वार छोड़ने वाले नहीं। जहाँ तक वैयिक्तक भावाभिव्यक्ति का प्रश्न है, उन्होंने दास्य और माधुर्य को सर्वदा पृथक् रक्खा है। एक दास को स्वामी के श्रृंगारिक अथवा दाम्पत्य जीवन में प्रवेश पाने का कोई अधिकार नहीं होता, वह उसकी मर्यादा के विरुद्ध है, अतएव कृष्ण की श्रृंगारिक क्रीड़ाओं का वर्णन सूर ने सखियों के माध्यम से किया है। स्वयं सखी बनने अथवा सखी-भाव अपनाने का प्रमाण उनके काव्य में नहीं मिलता। उन्होंने नरसी की तरह भक्ति में अपने पुरुषत्व का पर्यवसान नहीं किया। उनका दास्यभाव अगर उन्मुख हो सका, तो सखा-भाव की ही ओर हो सका, सखी-भाव की ओर नहीं।

सूर के सेवक-सेव्य भाव का संयोग दैन्य से हुआ और दैन्य एवं विनय का जितना गंभीर, विविध एवं विस्तृत रूप सूर में उपलब्ध होता है, उतना कृष्ण-काव्य के अन्य किसी कवि में नहीं मिलता। भावातिरेक में विनय का भाव लुप्त हो जाता है और उसका स्थान प्रगल्लभता, ओज तथा हठ ग्रहण कर लेते हैं। दास्यभाव के अन्तर्गत इस प्रकार की भाव-परिणित भी सारे कृष्ण-काव्य में दुर्लभ है। सूर के इस प्रकार के आत्मनिवेदन में भावना का स्तर क्रमशः उच्च से उच्चतर होता हुआ भाव-विकास की चरमसीमा को स्पर्श कर लेता है। सूर का आत्मनिवेदन विनय से प्रारम्भ होता है किन्तु वह विनय भी साधारण कोटि के विनय भाव से भिन्न है। अपने पापों के प्रति अतिशय जागरूक होने के कारण सूर को विनती करते भी लाज लगती है। अपने को वे सब पतितों का सरताज समझते हैं और उन्हें विश्वास है कि कृष्ण जैसे उद्धारकर्ता के लिये भी उनका उद्धार सरल कार्य नहीं है—

विनती करत मरत हौं लाज।

नख सिख लौं मेरी यह देही है पाप की जहाज।

.....

पाछे भयो न आगे ह्वै है सब पतितन सरताज।

नरकौ भज्यो नाम सुनि मेरो पीठि दई यमराज।

अबलौं नान्हे रून्हे तार् यो ते सब वृथा अकाज।

सांचे विरद सूर के तारत लोकन लोक अवाज।

—सू0 सा0, पृ0 7

सब पतितों के 'सरताज' अथवा 'नायक' होने का भाव उनके हृदय में गर्व का संचार करके उन्हें अत्यन्त प्रगल्भ बना देता है। यह प्रगल्भता लाक्षणिक है और इसमें अत्यधिक दीन एवं पापी होने की ध्वनि छिपी हुई है।

वस्तुतः उसी की मार्मिक व्यंजना के लिये कवि की भावना ने अभिव्यक्ति का यह रूप ग्रहण किया है। इसके पहले अनेक पदों में उन्होंने असमर्थता, दोषमयता निरीहता तथा शरण-साधना के भाव व्यक्त किये हैं। जब भावुक हृदय उनसे परितुष्ट न हो सका तो भावना ने यह रूप ग्रहण किया और सूर कह उठे—

हरि हौं सब पतितन पतितेश।

—वही, पृ0 17

अथवा

हरि हौं सब पतितन को नायक।

—वही, पृ0 18

पर इस प्रकार के लाक्षणिक गर्व से भी कृष्ण को जब वे उन्मुख होता हुआ नहीं देखते तो उन्हें आराध्य के मनोभाव पर शंका होती हैं और वे स्पष्ट पूछने लगते हैं।

मोसों बात सकुच तजि कहिये।

कत ब्रीड़त, कोउ और बातवहु वाही के ह्वै रहिये।

कैधौं प्रभु पावन तुम नाहीं के कछु मोमैं भोलो।

तौ हौं अपनी फेरि सुधारौं वचन एक जो बोलो।

—वही, पृ0 16

सूर द्वार पर बड़ी देर प्रतीक्षा करते हैं पर जब इस आरोप का भी कोई उत्तर नहीं पाते तो कृष्ण के पतितपावन नाम की निस्सारता उन्हें प्रतिभासित होने लगती है—

पतितपावन हरि विरद तुम्हारो कौने नाम धर् यो।

और अन्त में वे हठपूर्वक अपने उद्धार किये जाने के अधिकार के लिये लड़ने को तैयार हो जाते हैं—

आजू हौं एक एक करि टरिहौं।

कै हम ही कै तुम ही माधव अपुन भरोसे लरिहौं।

हौं तौ पतित सात पीढ़िन को पतितै ह्वै निस्तरिहौं।

अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हैं विरद बिनु करिहौं।

—वही

ऐसा हठ, ऐसा आग्रह, ऐसी प्रगल्लभता उसी में हो सकती है जिसे एक तो अपने आराध्य पर चरम विश्वास हो, दूसरे अपने भक्ति पर अनन्त आस्था। सूर में दोनों ही वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं, इसीलिए उनकी वाणी में इस प्रकार का भाव-सौन्दर्य आ सका।

सूर को कृष्ण की कृपा प्राप्त करने की इतनी उत्कट अभिलाष क्यों है, इसका रहस्य भी उनके एक पद से ज्ञात हो जाता है। वास्तव में सूर की कृष्ण का विरह असह्य है। उनके हृदय की जलन बिना करुणा के जल से सिंचे शान्त नहीं होना चाहती, इसलिए वे हर प्रकार से अपने 'गोपाल' की कृपा प्राप्त करना चाहते हैं—

हृदय की कबहुँ न जरनि घटी।

बिनु गोपाल बिथा या तनु की कैसे जात कटी।

.....

सूर जलधि सिंचे करुणानिधि निज जन जरनि मिटी।

—वही,पृ09

इस प्रकार सूर के काव्य में अपने आराध्य के प्रति एक ऐसी तीव्र विश्वास-भावना, तथा अपनी भक्ति के प्रति एक ऐसी प्रगाढ़ आस्था मिलती है जो अन्य कृष्ण-भक्त कवियों में दुर्लभ है।

मीरां को भाव-धारा में सूर की आत्मभावाभिव्यक्ति से भिन्न एक विचित्र प्रकार की स्त्री-सुलभ सुकुमारता एवं व्यापक आत्मीयता मिलती है जो समस्त कृष्ण-काव्य का श्रृंगार है। पुरूष होकर स्त्री-भाव की उपलब्धि के प्रयास में जो अस्वाभाविकता नरसी के काव्य में दिखाई देती है, वह मीरां के पदों में सर्वथा अप्राप्य है। इस दिशा में मीरां नरसी से कहीं आगे प्रतीत होती हैं। नरसी गोपी अथवा सखी-भाव की ही प्राप्ति कर पाते हैं परन्तु मीरां कृष्ण का चिंतन विह्वल प्रणयिनी बनकर करती हैं और उन्हें प्रियतम एवं पति के रूप में स्वीकार करती हैं। साथ ही उनकी भावना में नरसी को ऐन्द्रिकतामूलक विलास-वृत्ति के स्थान पर सुकुमार स्निग्ध प्रेम-वृत्ति के दर्शन होते हैं। मीरां की सुप्रसिद्ध पंक्तियों से यह भाव स्पष्टतया प्रकट होता है—

मेरे तो निरधर गोपाल दूसरो न कोई।

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।

.....

अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।

अब तो बेलि फैल गयी आणंद फल होई।।15।।

—मीराबाई की पदावली, पृ0 6

'गिरधर' के प्रति मीरां का यह वैयिक्तक प्रेम-भाव उन्हें आत्म-समर्पण की उस स्थिति तक पहुँचा देता है, जहाँ वे अपने सारे जीवन-व्यापार को प्रिय के ही आश्रित छोड़कर अनन्त सुख का अनुभव करती हैं—

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।

मेरी उनकी प्रीत पुराणी उण बिनि पल न रहाऊँ।

जहाँ बैठावे तितही बैठूं, बेंच तौ बिक जाऊँ।

—वही, पृ0 7

इन पंक्तियों में वह प्रेमातिरेक झलकता है जिसके आवेग में व्यक्ति का सारा अहं एक तिनके की तरह बह जाता है। अपने प्रिय का असीम प्रेम ही मीरां को ऐसी 'दरद दिवाणी' बना डालता है जिसका दर्द संसार में कोई नहीं जान सकता। जितनी तीव्रता मीरां को पूर्वरागजन्य प्रेम की अनुभूति में है, उससे भी अधिक तीव्रता उनकी विरह की अनुभूति में लक्षित होती है। विरह की नागिन ने उनकी सारी काया को विषाक्त कर दिया है और रह-रह कर वेदना की लहरें उठती हैं—

रमैया बिन नींद न आवै।

कहा करुं कित जाऊं मोरी सजनी वेदन कूण बुलावै ।

विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै।

—वही, पृ0 29

वियोग की यह चरम विह्वलता एक ओर तो उनको सूर की तरह प्रगल्भ बना देती है और वे उपालंभ में कृष्ण के लिये 'निरमोहिया' अथवा 'धूतारा जोगी' जैसे शब्दों तक का प्रयोग कर डालती है, दूसरी ओर उनमें निरीहता एवं असहायता का भाव उत्पन्न होता है जिसके कारण वे नरसी की तरह कृष्ण की दासी बनने की कामना करने लगती है।

डारि गयो मन मोहन पासी।

आंबा की डाल कोयल इक बोलै मेरी मरण अरु जग केरी हांसी।

विरह की मारी मैं बन बन डोलूं, प्रान तजूं करवत ल्यूं कासी।

मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।

—वही, पृ0 26

मीरां के पदों में अधिकतर इसी प्रकार के वैयक्तिक प्रणय एवं विरह की अनुभूति व्यक्त हुई है और इस प्रकार उनके काव्य में आत्मभावाभिव्यक्ति की मात्रा सबसे अधिक मिलती है। इसीलिए सूर की तुलना में मीरां में लीलागान की प्रवृत्ति का प्रायः अभाव मिलता है। यत्रतत्र ब्रज की कुछ लीलाओं के वर्णनों का अपवादों को छोड़कर मीरां के समस्त पद आत्मनिष्ठ काव्य की ही कोटि में आते हैं और उनमें भी मधुर भाव की ही प्रधानता है।

मीरां ने कृष्ण को प्रणयी के ही रूप तक सीमित न रखकर पतितोद्धारक एवं भक्तवत्सल भगवान के रूप में भी स्मरण किया है और यहाँ वे सूर, नरसी आदि भक्त कवियों के साथ समान धरातल पर स्थित दिखायी देती है—

हरि तुम हरो जन की पीर।

.....

बूड़तो गजराज राख्यौ कियौ बाहर नीर।

दासी मीरा लाल गिरधर चरण कंवल पै सीर।

—वही, पृ0 25

परन्तु इस प्रकार के पद मीरां ने अधिक नहीं रचे। उनकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति कृष्ण के प्रति अपने प्रेम निवेदन के रूप में ही हुई है।

कृष्ण लीलाओं से आत्म सम्बन्ध—अनेक कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में अपने को कृष्ण लीलाओं से सम्बद्ध कर देने की एक विचित्र प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह भी कवि के व्यक्तित्व का ही एक रूप है, अथवा इसे उसकी आत्माभिव्यक्ति का प्रकार-विशेष कहा जा सकता है। भाव की तीव्रता में कवि की आन्तरिक इच्छा कल्पना द्वारा वास्तव का रूप धारण करके उसकी वाणी के माध्यम से प्रत्यक्ष होकर उसे एक अलौकिक संतोष प्रदान करती है। कदाचित् इसी कारण भावप्रवण कवियों ने इस प्रकार के वर्णन किये हैं। उनको यथार्थ रूप में ग्रहण करना वस्तुतः उन्हीं की भावना के साथ अन्याय करना है। नरसी मेहता में यह प्रवृत्ति सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वाधिक रूप में व्यक्त हुई है |विपत्तियों और विरोधों से घिरे हुए जीवन में उन्हें जब कभी अप्रत्याशित सहायता प्राप्त हुई तो उन्होंने उस भावातिरेक में भगवतत्प्रेरित ही नहीं, वरन् स्वयं भगवद्दत्त भी माना है। हुण्डी,झारी तथा हार आदि के प्रसंग संभवतः इसी मनोवृत्ति को व्यक्त करते हैं | नरसी की यह मनोवृत्ति तीव्रतर होकर उनकी उन कई रचनाओं में प्रकट हुई है जहाँ वे स्वयं को कृष्ण-लीलाओं में भाग लेते हुए चित्रित करते हैं।

सूरदास में भी यह प्रवृत्ति उपलब्ध होती है किन्तु इतने विकसित रूप में नहीं। उन्होंने अन्य लीलाओं का दर्शन तो राधा अथवा गोपियों की वृत्ति को आत्मसात कर के किया परन्तु कृष्ण-जन्म के अवसर पर अपने को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करने का लोभ वे भी संवरण न कर सके। उनके ढाढी के पद वस्तुतः इसी मनोवृत्ति के परिचायक है।(सू0सा0, 131)

मीरां के कतिपय पदों में यही भावतिरेक वास्तव का रूप लिए बिना अपने मूल में ही व्यक्त हुआ है | इसीलिए मीरां जो स्वप्न देखती हैं उसे स्वप्न ही कहती हैं परंतु उस स्वप्न पर उन्हें किसी भी सत्य से अधिक आस्था है—

माई म्हाने सुपने में परण गया जगदीस।

सोती को सुपना आविया जो सुपना विस्वा बीस।

मीरां को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जनम के भाग।

सुपने में म्हाने परण गया जी, होगया अचल सोहाग।

—मीरा की पदावली, पृ0 12, पद 27

स्वप्न नहीं यह उनके जीवन का चरम सत्य था—भाव सत्य, जिसके आधार पर उन्होंने 'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई' नितान्त निर्भीकता से कह डाला और आजन्म उसी भाव का निर्वाह किया। उनका सारा काव्य इसी से ओतप्रोत है। यहाँ भी मीरां की जो अत्यन्त आन्तरिक भावना थी वही इस प्रकार व्यक्त हो सकी।

कृष्ण की बाल लीलाएँ

कृष्ण की बाल-लीलाओं से सम्बन्धित भावों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। कारण यह है कि कृष्ण का व्यक्तित्व नंद यशोदा के पारिवारिक जीवन तक ही सीमित न रहकर एक व्यापक सामाजिक रूप धारण कर लेता है। कृष्ण समस्त ब्रजमंडल की भावनाओं के केन्द्र बन जाते हैं। ब्रज के सब ग्वालबाल, गायें और गोपियाँ कृष्ण से सम्बद्ध हैं। नंद महर के घर होने वाली कृष्ण विषयक प्रत्येक बात, प्रत्येक घटना सारे ब्रज में व्याप्त हो जाती है और परस्पर भाव-सम्बन्धों और भाव-प्रतिक्रियाओं को गहनतर बनाती चलती है। कृष्ण के अपने बाल-स्वाभाव और चेष्टाओं के अतिरिक्त, यदि बलराम और ग्वालबालों के साथ उनको क्रीड़ाओं में भावों का एक मिलता है तो गोपियों के साथ दूसरा और नंद यशोदा के साथ तीसरा। भावों की इस विविधता की समाप्ति यही नहीं हो जाती। कृष्ण को यशोदा और गोपियों के बीच एक नये ही प्रकार का भाव-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जिससे कभी वे कृष्ण का पक्ष लेकर यशोदा से लड़ने आती हैं और कभी खीझ कर उलाहना देने। इस सारे भाव-विस्तार का केन्द्र एकमात्र कृष्ण की बाल-लीलाएँ ही हैं जिनके आश्रय से मानवीय भावों के विविध रूपों की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति कवियों ने की है।

मानवीय भावों के साथ कृष्ण के लोकोत्तर रूप का मिश्रण—कवियों द्वारा कृष्ण की बाललीलाओं के चित्रण में एक विशेषता और परिलक्षित होती है और वह है सामान्य मानवीय भावों के साथ लोकोत्तर एवं अलौकिक रूप का सम्मिश्रण। रस की दृष्टि से देखने पर इस प्रकार के वर्णन रसास्वादन में बाधक सिद्ध होते हैं परन्तु इसके साथ ही लौकिकता को सम्बद्ध कर देने से एक से एक ऐसी रहस्यमयता उत्पन्न हो जाती है जो आश्चर्य, विस्मय तथा कुतूहल की सृष्टि करके आलंबन के प्रति एक विचित्र आकर्षण जगा देती है जिससे उक्त दोष आवृत हो जाता है। इसीलिए कृष्ण-भक्त के हृदय में ऐसे वर्णनों से जो अनुभूति जाग्रत होती है वह रस संचार में बाधक न होकर एक प्रकार से सहायक ही होती है। माहात्म्य-ज्ञान के साथ उसे कृष्ण की लीलाएँ और भी अधिक आकर्षक प्रतीत होने लगती हैं।

कृष्ण की बाललीलाओं के वर्णन में कवियों ने मानवीय भावों के चित्रण के साथ रहस्यात्मकता का पग-पग पर मिश्रण किया है। यही नहीं इस प्रकार की रहस्यानुभूति उनके वर्णन का एक प्रधान अंग रही है जिसकी ओर इंगित करना वे कभी नहीं भूलते।

अनेक असुरों के वध की अलौकिक घटनाएँ इस भाव के साथ एक सामंजस्य उत्पन्न कर देती हैं क्योंकि उनकी पृष्ठभूमि में इस प्रकार के वर्णन और भी कम अस्वाभाविक प्रतीत होते जाते हैं। प्रत्येक असुर को पराजित करने के साथ ब्रजवासियों का विश्वास कृष्ण की अलौकिक शक्ति पर दृढ़तर होता चलता है। जिस वातावरण और जिन परिस्थितियों में ब्रजवासियों का चित्रण किया गया है उसका लक्ष्य कृष्ण के लोकोत्तर रूप की स्थापना ही रही है। समस्त कृष्ण-काव्य का प्रधान उद्देश्य भी मानवीय अनुभूतियों का स्पर्श करते हुए उन्हें लोकोत्तर चेतना की उपासना में केन्द्रित कर देना ही रहा है। कृष्ण का अलौकिक चरित उनकी अपार शक्ति का

स्वयं परिचायक है, अतएव उनके लौकिक चरित के चित्रण में अलौकिकता की व्यंजना का अपेक्षाकृत विशेष ध्यान रक्खा गया है। कृष्ण के लिए सर्वत्र प्रभु, स्वामी, पुरुषोत्तम, परब्रह्म, आदि ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया गया है जो उनके माहात्म्य के द्योतक है।

मृत्तिका-भक्षण तथा यमलार्जुन-मोक्ष के प्रसंग में कृष्ण के विराट रूप का भागवत के अनुसार जो वर्णन कवियों ने किया है उसका निर्देश वस्तु-विश्लेषण के साथ किया जा चुका है। यहाँ वे प्रसंग उल्लेखनीय हैं जहाँ माखनचोरी, दधिमंथन आदि सामान्य मानवीय चेष्टाओं के साथ कवियों ने अपनी इच्छा द्वारा अलौकिकता का मिश्रण किया है। दधिमंथन के वर्णन में सूर लिखते हैं—

जब मोहन कर गही मथानी।

परसत कर दधि माट नेति चित उदाधि सैल वसुधा भय मानी।

कबहुँक अहुठ परग करि वसुधा कबहुँ देहरी उलंघि न जानी |

कबहुँक सुरमुनि ध्यान न पावत कबहुँ खिलावत नंद की रानी।

कबहुँक अमर खीर नहिं भावत कबहुँ मेखला उदर समानी।

कबहुँक आर करत माखन को कबहुँक भेष दिखाइ बिनानी।

कबहुँक अखिल उदर नहि तर्पित कबहुँक दल माखन रुचि मानी।

सूरदास प्रभु की यह लीला परत न (निग) महि शेष बखानी।

—सू0सा0, पृ0 149

प्ररमानंददास भी इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हैं।

सिव विरंचि मुनि देवता जाको अंत न पावैं।

सो परमानन्द ग्वालि को हँसि भलो मनावै।

रसखान के प्रसिद्ध छंद 'ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं' में कृष्ण के लौकिक तथा अलौकिक चरित के विचित्र संयोग की ओर संकेत है |

कृष्ण की बाललीलाओं के प्रसंग में इस प्रकार के कथन इसलिए भी विशेष रूप में मिलते हैं कि वस्तुतः सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, पूर्णकाम ब्रह्म का अज्ञ, अशक्त,क्षुधातुर बालक के सदृश्य आचरण करना सबसे अधिक विरोधपूर्ण प्रतीत होता है | वैसे कृष्ण की मानवीय श्रृंगार-लीलाओं के प्रसंग में भी इस प्रकार का मिश्रण मिलता है परंतु बाललीलाओं में अधिक उपलब्ध होता है |

कृष्ण-जन्म— कृष्ण-जन्म- कृष्ण को परब्रह्म स्वीकार कर लेने पर उनका जन्म अथवा प्राकट्य साधारण घटना न रहकर एक महान् अभूतपूर्व आनन्दोल्लास का पर्व बन जाता है। कृष्ण-काव्य में इस अपार असीम आनन्द को शब्दों में बाँधने का अद्भुत प्रयास किया गया है। अन्य कवियों की अपेक्षा अष्टछाप के

कवियों ने इस विषय को विशेष भावुकता एवं कौशल से चित्रित किया है क्योंकि कृष्ण का बाल-रूप ही उनकी उपासना का प्रमुख केन्द्र था। सूर के लीलागान की प्रेरणा पहले पहल इसी स्थल पर मूर्तिमती हो उठी थी।

आनन्द की पहली लहर यशोदा के हृदय में आती है जब जागने पर वह अचानक 'नवनिधि' को अपने अंक में पाती है। उस समय की उसकी दशा के वर्णन में सूर द्वारा अनुभवों की योजना दर्शनीय है—

जागी महरि पुत्र मुख देखत पुलक अंग उर में न समाई।

गद्गद कंठ बोल नहिं आवै हर्षवंत ह्वै नंद बुलाई।

—सू0सा0, पृ0 127

उल्लास के अतिरेक में उसे किसी के सामने व्यक्त करके सह-अनुभव की भावना मानव-मनोविज्ञान का सुपरिचित सत्य है। नंद से अधिक यशोदा का और कौन हो सकता था जिसे वह अपने हृदय से फूटते हुए आनन्द स्त्रोत को दिखाती। लज्जा हर्षातिरेक में बह जाती है और वह स्वयं नंद से दौड़ आने के लिए व्यग्रता से कह उठती है।

आनन्द की दूसरी लहर नंद के हृदय को सराबोर कर जाती है—

दौरि नंद गये सुतमुख देख्यो सो शोभा सुख बरनि न जाई।

—वही

नंद अपनी वृद्धावस्था और पद को भूलकर ग्वालों के साथ नाच उठते हैं—

नाचत महर मुदित मन कीनो ग्वाल बजावत तारी।

—वही

अक्षत, चंदन, दूब, बंदनवार, आदि से पर्व खिल उठता है। बधाई दही और हल्दी छिड़क कर दी जाती है।

आनन्द की तीसरी लहर ब्रजवासियों के हृदय में उमड़ती है। काव्य की दृष्टि से यह स्थल अत्यन्त मनोरम है। ब्रजवासी प्रसन्नता से एक दूसरे से पुकार पुकार कर कहने लगते हैं—

आजु बन कोऊ जिनि जाइ।

सबै गाइ और बछरा समेत सब आनहु चित्र बनाइ।

ढोटा है रे भयो महरि के कहत सुनाइ सुनाइ।

सबहि घोष में भयो कोलाहल आनन्द उर न समाइ।

कत हौ गहर करत रे भैया वेगि चले उठि धाइ।

अपने अपने मन को चीत्यौ नैननि देखो आइ।

एक फिरत दधि दूब बँधावत एक रहत गहि पाइ।

एक परस्पर करत बधाई एक उठत हँसि गाइ।

तरुण किशोर वृद्ध अरु बालक बैठ चौगुने चाइ।

सूरदास सब प्रेम मगन भये गनत न राजाराइ।

—वही

व्यक्ति के मनोभावों के चित्रण में सूर को गहरी पैठ है ही, साथ-साथ समूह की भावनाओं को अंकित करने में भी उनकी क्षमता अपरिसीम है।

आनन्द की चौथी लहर का वर्णन सूर ने गोपियों के भावातिरेक को अंकित करके अपने प्रसिद्ध पद 'ब्रजभयो महरि के पूत जब यह बात सुनी' में किया है। जन्म के अवसर पर होने वाले लोकाचारों और उनके पीछे उमड़ने वाले भाव-समुद्र दोनों को सूर ने अत्यन्त सूक्ष्मता से अभिव्यक्ति प्रदान की है। इतना ही नहीं ढाढी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करने का लोभ वे संवरण न कर सके और इस प्रकार अपने व्यक्तित्व को वर्ण्यवस्तु के साथ उन्होंने घुला मिला दिया। इसे आनन्द की पाँचवीं लहर कह सकते हैं—

नंद जू मेरे मन आनंद भयो हौं गोवर्धन ते आयो।

तुमरे पुत्र भयो मैं सुनिकै अति आतुर उठि धायो।

.....

जब तुम मदन मोहन करि टेरो इहि मुनिकै घर जाऊं।

हौं तो तेरो घरको ढाढी सूरदास मेरो नांऊ।

—सू0सा0, पृ0 131

कृष्ण-जन्म पर बधाई के पद परमानंददास, नंददास आदि अन्य अनेक ब्रजभाषा के कवियों ने रचे परन्तु सूर की अनुभूति तीव्रतम लगती है।

बाल-स्वभाव—शिशु सुलभ चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं के स्वाभाविक अंकन की ओर अनेक कवि प्रवृत्त हुए। कुछ आधार भागवत ही में मिल गया किन्तु कवियों ने अपनी कल्पना और भावना से उसका कई गुना अधिक विस्तार कर लिया। शिशु-स्वभाव की सरलता, भोलापन, चंचलता, हठ तथा सहज प्रसन्नता सभी कुछ इतनी कुशलता से अंकित किया गया है कि उसे देख कर आश्चर्य होता है। कृष्ण-काव्य की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यही है कि कवियों ने लोक-सामान्य मानव-स्वाभाव के विविध रूपों को अत्यन्त सूक्ष्मता से आत्मसात् और मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। सूर इस क्षेत्र के सरताज हैं किन्तु ब्रजभाषा में परमानन्ददास और गुजराती में भालण ने पर्याप्त भावमयता से कृष्ण के बाल-स्वभाव का अंकन किया है।

सूर के कृष्ण इतने भोले हैं कि मणिखचित आँगन में अपने प्रतिबिम्ब को दूसरा बालक समझ कर पकड़ने दौड़ते हैं और उसे 'लवनी' लेकर खिलाते हैं।

—सू0 सा0, पृ0 144, 145।

यशोदा यह कह कर कि दूध पीने से चोटी बढ़ेगी, कृष्ण को दूध पिलाती हैं। कृष्ण एक ओर दूध पीते जाते हैं दूसरी ओर बालों को टटोलते जाते हैं कि चोटी बढ़ी या नहीं—

कजरी को पय पियहु लाल तेरी चोटी बढ़ै।

.....

पुनि पीवत ही कच टकटोवै झूठै जननि रढ़ै।

—वही, पृ0 153

और कुछ समय बीत जाने पर भी जब चोटी बढ़ती नहीं दिखायी देती तो खीझ कर पूछ उठते हैं—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।

किती बार मोहिं दूध पियत भये यह अजहुँ है छोटी।

तू जु कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।

—वही

सोचने पर उनको समझ में यह आता है कि चोटी इसलिए नहीं बढ़ रही क्योंकि यशोदा 'काचो दूध पियावत पचि-पचि देत न माखन रोटी।'

सूर के कृष्ण में चंचलता और बाल-सुलभ हठ का पूर्ण समावेश हुआ है। जहाँ यशोदा कृष्ण को नहलाने के लिए कहती हैं वे लोट जाते हैं। बहुत मनाने पर भी नहीं मानते—

जसुमति जबहिं कह्यो अन्हवावन रोइ गये हरि लोटत री।

लेत उबटनो लै आगे दधि कहि लालहिं चोटत पोटत री।

—सू0सा0 पृ0 155

चंद खिलौने का वर्णन कई कवियों ने किया है पर सूर ने कृष्ण की जिस भोली चतुरता का परिचय दिया है वह अन्यत्र नहीं मिलता। वस्तुतः सूर के बाल कृष्ण का व्यक्तित्व अनूठा है। वे इतने भोले हैं कि चन्द्रमा को पास ही समझते हैं और इतने चतुर भी कि जलपात्र के चन्द्रमा से बहलते नहीं। (सू0सा0, पृ0 156)।

सूर ने कृष्ण के बाल-सुलभ सारल्य को अन्य समवयस्क बालकों के बीच रखकर उनके खीझने खीझाने, हारने जीतने और चिढ़ाने के स्वभाव के साथ जिन मनोवैज्ञानिक एवं कलात्मक रूप से चित्रित किया है वह अद्वितीय है।

खेलते खेलते बलराम और ग्वाल बाल मिलकर कृष्ण को खिझाते हैं। कृष्ण रोते हुए माता के पास जाकर बलदाऊ की शिकायत कर देते हैं। सूरदास ने इस स्थल को भाव की दृष्टि से अत्यंत मार्मिक बनाकर पूर्ण सफलता से अंकित किया है। (वही, पृ0 159)

सखाओं की बातें तो कृष्ण को याद नहीं रहती पर सबसे अधिक चोट उनके हृदय पर बलराम की बात से लगती है इसीलिए वे उन्हीं की शिकायत करते हैं और सारे सखाओं को बिगाड़ने का आरोप भी उन्हीं पर लगाते हैं। यही नहीं उस खीझ को माता पर उतारते हुए उसे ही पक्षपाती कह डालते हैं। उनके हृदय को वास्तविक शान्ति तब मिलती है जब माता उन्हें अपना पुत्र मान लेती हैं और बलराम को धूर्त कह देती है—

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।

मोसों कहत मोल को लीन्हो तोहिं जसमुति कब जायो।

कहा कहौं यहि रिसि के मारे हौं खेलन नहि जातु।

पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु।

गोरे नंद यशोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर।

चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर।

तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै।

मोहन को मुख रिसि समेत लखि जसुमति सुनि-सुनि रीझै।

सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत।

सूर श्याम मो गोधन की सौं हौं माता तू पूत।

—सू0सा0, पृ0 159

कुछ ही पंक्तियों में कृष्ण, बलराम, सखा और यशोदा, सबके हृदयों के भावों की अकृत्रिम संश्लिष्टता और सजीवता के साथ मूर्तिमान कर दिया गया है। बालस्वाभाव का ऐसा मनोग्राही वर्णन समस्त कृष्ण-काव्य में अलभ्य है।

बालस्वाभाव में सूर की ही नहीं परमानंददास की भी काफी गहरी पैठ है। एक बेर बेचने वाली की आवाज सुनते ही कृष्ण अपनी नन्हीं सी अंजलि में आँगन में सूखते हुए धान भर कर उतावली से उसे बेरों के बदले देने ठुमक ठुमक चल पड़ते हैं। एक ही चित्र बाल-स्वाभाव की सूक्ष्म अनुभूति का प्रमाण है। एक बालक में अनुकरण की प्रकृति तीव्रतम होती है। वह बड़ों के व्यवहार की नकल करता है जो उसके शिशु रूप के साथ और भी मनोरम लगने लगता है—

कोउ मैया बेर बेचन आई।

सुनत ही टेर नंद रावरि में लई भीतर बुलाई।

सूकत धान परे आँगन में कर अंजुलि बनाई।

ठुमक ही ठुमक चलत अपने रँग गोपी जन बलि जाई।

लिए उठाय रिझाय करि मुख चुम्बन न अघाई।

परमानंद स्वामी आनन्द बहुत बेरि जब पाई।

—डॉ.दी. गुप्त के निजी पद संग्रह से पद संग्रह से, पद सं027

बालक की अनुकरण-वृत्ति का इससे भी अधिक मनोरम चित्र सूर ने अंकित किया है। नंद और कृष्ण एक साथ भोजन करने बैठे। जो कुछ नंद खाते हैं वही कृष्ण भी खाना चाहते हैं पर खाना आता नहीं। नंद की देखा देखी मिर्च खा लेने पर कृष्ण के आँसू भर आते हैं और वे रोते हुए बाहर उठ भागते हैं। तब रोहणी माता मीठा कौर देकर चुपा लेती हैं। (—वही,पृ0161)

यही नहीं बढ़े ग्वालों की देखादेखी कृष्ण अपने नन्हें हाथों से काली सफेद गायों को नाम ले ले कर बुलाने की चेष्टा भी चेष्टा भी करते हैं—

बाँह उँचाइ काजरी धौरी, गैयन टेरि बुलावत। (सू0 सा0, पृ0 154)

इस प्रकार के वर्णन नितान्त मौलिक है। कवि की अनुभूति लोक-जीवन में डूबकर प्रतिदिन घटित होने वाली सामान्य से सामान्यवस्तु को चुन लाती है और कृष्ण से उसे सम्बद्ध करके एक ओर तो कृष्ण के प्रति अपने घनीभूत आकर्षण को व्यक्त करती है, दूसरी ओर काव्य में लोक-हृदय को रसमग्न करने की अद्‌भुद क्षमता उत्पन्न कर देती है। यह विशेषता न्यूनाधिक गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कृष्ण-काव्य में उपलब्ध होती है। एक अन्य उदाहरण से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी।

बालक को 'हौआ' या 'हाऊ' कहने से डर लगता है | माताएँ इस प्रकार बालकों को डरा कर उनको अनुचित काम करने से वर्जित करती हैं। यह लोक जीवन में प्राप्त होने वाला सामान्य सत्य है। अनेक कवियों ने कृष्ण के साथ इसे सम्बद्ध करके बाल-स्वभाव के चित्रण में स्वाभाविकता एवं सजीवता उत्पन्न की है।

सूर ने इस प्रसंग में दो प्रकार की मनस्थितियों का वर्णन किया है। एक ओर यशोदा 'हाऊ' का नाम लेकर कृष्ण को बन में दूर जाने से वर्जित करती है, दूसरी ओर बलराम कृष्ण को तमाशा दिखाने का बहाना करके बन में ले जाते हैं और वहाँ 'हाऊ' काट खायगा' कह कर उन्हें डरा देते हैं—

1. दूरि खेलन जानि जाहु लला बन मेरे 'हाऊ' आयो है।(सू0 सा0 पृ0 160)

2. मैया बहुत बुरी बलदाऊ।

कहन लगे बन बड़ो तमासो सब मौडा मिलि आऊ।

मोहूँ की चुचुकारि गये लै जहाँ सघन बन झाऊ।

भागि चले कहि गयो वहाँ ते काटि खाइहैं हाऊ।(वही, पृ0 201)

वय-विकास—नंद यशोदा आदि को पूर्ण आसक्ति के केन्द्र-बिन्दु होने के कारण कृष्ण की लीलाओं की तरह उनके वय-विकास को व्यक्त करने वाली प्रत्येक स्थिति भाव की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना के रूप में चित्रित मिलती है। हर चेष्टा हृदय को हिलोर देती है, हर संस्कार एक उत्सव, एवं पर्व समझ कर आमोद-प्रमोद से आपूरित कर दिया जाता है। जरा सी प्रतिकूल परिस्थिति महान चिन्ता का कारण बन जाती है और निवारित हो जाने पर तत्काल द्विगुणित आनन्दोल्लास के रूप में परिणत हो उठती है। इस तरह की

भावाभिव्यक्ति कवियों की अनुभूति को गंभीरता और अभिव्यक्ति की कुशलता दोनों को व्यक्त करती है। अष्टछाप के कवियों, विशेषतः सूर में इस सम्बन्ध में विशेष सूक्ष्म दृष्टि परिलक्षित होती है जिसका बहुत कुछ श्रेय पुष्टिमार्गीय उपासना के स्वरूप को दिया जा सकता है क्योंकि उसकी सारी रूपरेखा कृष्ण की दिनचर्या और वय-विकास पर आधारित है।

कृष्ण का उलट जाना, घुटनों चलना, देहली पार कर जाना, यशोदा द्वारा चलना सीखना, डगमगाकर चलना फिर दौड़ने लगना, दूध के दाँत निकलना, तुतला कर बोलना, गायों को बुलाना, 'बाबा' 'भैया' कहने लगना, आदि उनके वय-विकास के साथ घटित होने वाली अनेकानेक बातों को कवियों ने अत्यन्त स्वाभाविक एवं भावापूर्ण ढंग से व्यक्त किया है और इस प्रकार कृष्ण के बाल-जीवन के चित्रण को सार्वंगीणता एवं सम्पूर्णता प्रदान करने की प्रवृत्ति प्रकट की है।

कृष्ण अभी बहुत छोटे हैं। यशोदा बहुत दुलार प्यार से यत्न पूर्वक जब लोरी गाकर सुलाती है तो सोते हैं। जब शिशु कुछ महीनों का हो जाता है तो सोते-सोते उनके होंठ फड़कने लगते हैं या उसे हँसी आने लगती है। सूर की दृष्टि वय-विकास के इस प्रथम सोपान के सौन्दर्य पर टिक जाती है—

यशोदा हरि पालने झुलावै।

हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कुछ गावै।

मेरे लाल की आउ निदरिया काहे न आन सुवावै।

तू काहे न बेगि सी आवै तोको कान्ह बुलावै।

कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।

सोवति जानि मौन ह्वै रहि-रहि करि-करि सैन बतावै।

इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरे गावै।

जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंदभामिनि पावैं।

—सू0 सा0, पृ0 133

'मेरे लाल की आउ निदिरिया' कहने में मातृहृदय की जो कोमल स्निग्धता व्यक्त होती है वह लक्षित करने योग्य है। सूर के उक्त पद में शिशु को सुलाती हुई माता की मनस्थित, भावों एवं अनुभावों का जो श्रृंखलाबद्ध चित्रण है वह उनकी काव्य-शक्ति की प्रौढ़ता की व्यक्त करता है। शिशु के हँसने से उत्पन्न होने वाली प्रसन्नता कितनी व्यापक भावभूमि के साथ व्यक्त करता है। शिशु के हँसने से उत्पन्न होने वाली प्रसन्नता कितनी व्यापक भावभूमि के साथ व्यक्त की गयी है।

विकास की अगली स्थिति का प्रत्यक्षीकरण सूर की सूक्ष्म अर्न्तदृष्टि ही कर सकी। शिशु कुछ विकसित होने पर अपनी चेष्टा से उलट जाने में सक्षम होने लगता है। पहली बार जब उसकी यह क्षमता व्यक्त होती है तो माता-पिता का हर्षमग्न होना स्वाभाविक है। एक तो सूर का यह चित्रण पूर्णतया मौलिक है, दूसरे वे उसके साथ उत्पन्न होने वाले भावों को चित्रत करने में भी पूर्ण सफल हुए हैं।

यशोदा कृष्ण को पालने में 'पौढ़ा' कर दही मथने चली गयी। नंद आये और उन्होंने ज्योंहि कृष्ण को उलटा देखा, हर्षित हो उठे। लगे यशोदा को बुलाने। यशोदा ने कृष्ण को उलटे देखा तो वह भी झूम उठी। चूम चाटकर बलायें लेने लगी। सारे ब्रज में यह समाचार फैल गया और घर-घर से ब्रज-नारियाँ कृष्ण को देखने आने लगीं। घर-घर आनन्द बधाई होने लगी। कृष्ण साढ़े तीन महीने के हो गये—

हरखे नंद टेरत महरि।

आइ सुत मुख देखि आतुर डारिदै दधि टहरि।

मथति दधि यसुमति मथानी ध्वनि रही घर गहरि।

श्रवण सुनति न महरि बातैं जहाँ तहाँ गयीं चहरि।

यह सुनति तब मातु धाई गिरे जाने झहरि |

हँसत नंद मुख देखि धीरज तब कह्यो ज्यों ठहरि |

श्याम उलटे परे देखे बढ़ी शोभा लहरि |

सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत ढहरि |

—सू0सा0, पृ0 137

दूध के दाँत निकलने, देहरी में देह अटकाने आदि का वर्णन भी सूर ने इसी प्रकार अद्वितीय रूप में किया है। बालचरित-वर्णन में सूर की भावाभिव्यक्ति की संश्लिष्टता सरलता विशेष रूप से दृष्टव्य है। उदाहरण रूप में कृष्ण को यशोदा द्वारा चलना सिखाने का वर्णन लिया जा सकता है :

सिखवत चलन जसोदा मैया।

अरबराइ कर पाणि गहावत डगमगाइ धरणी धरै पैया।

कबहुँक सुन्दर बदन विलोकति उर आनँदभरि लेत बलैया।

कबहुँक बल कौ टेरि बुलावति इहिं आँगन खेलो दुहु भैया।

कबहुँक कुल देवता मनावति चिरजीवै मेरो बाल कन्हैया।

सूरदास प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नँदरैया।

—सू0सा0, पृ0 145

सूरदास की सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन को स्वाभाविकता देने वाले अन्य अंश भी नहीं छूटे। नंद भी कृष्ण को चलना सिखाते हैं। कृष्ण पहले दो-दो पग चलते हैं फिर डगमगाकर रह जाते हैं, फिर चलने लगते हैं। इन बातों के चित्रण से उनका वर्णन अत्यधिक विस्तृत एवं सूक्ष्म हो गया है जो उनकी अनुभूति की गंभीरता का परिचायक है। इसी प्रकार संक्षेपतः ही सूर ने भी कृष्ण की तोतली बोली पर यशोदा की मुग्धता चित्रित की है, ऐसी मुग्धता जिसमें अधूरी बोली को पूरा करने का प्रश्न ही नहीं उठता—

अल्प दशन तोतरावत बोलत छवि चित हू न जात विचारी।

—सू0सा0, पृ0 141

बालछवि— कवियों ने बाल कृष्ण में अलौकिक शक्ति के साथ अलौकिक एवं अपरिसीम सौन्दर्य की भी भावना की है अतएव कृष्ण की बालक्रीड़ाओं के साथ ही साथ उनकी मनोहारिणी और प्रतिक्षण नवीन आकर्षण उत्पन्न करने वाली छवि का भी पग-पग पर अंकन किया है। कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होने की वृत्ति प्रायः समस्त कृष्ण कवियों में पायी जाती है। कुछ में तो वह इतनी आवेगमयी एवं प्रगाढ़ है कि कृष्ण के किसी भी चरित, किसी भी लीला का वर्णन बिना उनकी अनिंद्य छवि के वर्णन के संभव ही नहीं हो सका है। कवि की दृष्टि रह-रह कर बाह्य व्यापारों से हटकर कृष्ण के मुख के मुख और शरीर-श्रृंगार पर जा टिकती है। कथावस्तु की गति रूपाकर्षण के आगे शिथिल पड़ जाती है। कवि रूप-वर्णन करके कभी तो स्वयं ही मुग्ध हो लेता है, कभी वह गोपियों के माध्यम से उन्हें रूपासक्त चित्रित करके सुखानुभूति प्राप्त करता है। कवियों द्वारा रचे गये कृष्ण के ये रूप-चित्र दो प्रकार के होते हैं, स्थिर और गतिशील। स्थिर रूप-चित्रों में शरीर के किसी अंग अथवा किसी मुद्रा का, जीवन की गतिशीलता से, एक प्रकार से पृथक् करके वर्णन किया जाता है और गतिशील रूप चित्रों में जीवन की गतिशीलता के साथ। फलतः पहले प्रकार के रूप-चित्रों में उपमा, उत्प्रेक्षादि के द्वारा सीधे ढंग से रूपालेखन और उसके प्रभाव को व्यक्त कर दिया जाता है। दूसरे प्रकार के चित्रों में गतिशीलता के साथ विविधता और अनेकरूपता भी आ जाती है, जिसके कारण उनका आलेखन संश्लिष्ट एवं संगुफित रूप से ही हो पाता है। सूरसागर बाल-छवि के विविध प्रकार के वर्णनों से आपूरित है। ब्रज तथा गुजराती के अन्य अनेक काव्यों में कृष्ण की बाल-छवि का सुन्दर वर्णन मिलता है।

हाथ में मक्खन लिये आँगन में घुटनों चलते कृष्ण की रूप-माधुरी का पान करके सूर ने अद्‌भुत रूप-चित्रों की सृष्टि की है। इनमें सादृश्यमूलक अलंकारों के आश्रय से वस्तुगत सौन्दर्य को व्यक्त किया गया है। साथ ही उसके दर्शन से दर्शक में होने वाली विस्मृति, आह्लाद एवं आत्मतल्लीनता की ओर भी इंगित कर दिया गया है। जिन वस्तुओं में रूपात्मकता भी है जैसे मुख, दाँत आदि उनके सौन्दर्य के साथ अरूपात्मक वस्तुओं—जैसे तोतली वाणी और किलकन आदि—का भी सौन्दर्यांकन मिलता है। यह रूप-चित्र स्थिर है और अभिव्यक्ति ऋजु।

गतिशील रूप-चित्रण उस स्थल पर मिलता है जहाँ कवियों ने बाल-कृष्ण के नृत्य आदि का वर्णन किया है। इन विशेषताओं के साथ बालक की अनुकरण वृत्ति तथा यशोदा की मुग्ध, शिक्षण में लीन मनोदशा का समावेश करके सूर ने चित्र की ओर भी सजीवता एवं गतिशीलता प्रदान कर दी है।

माखनचोरी—भाव की दृष्टि से देखा जाय तो माखनचोरी शैशव से लेकर किशोरावस्था तक की समस्त कृष्णलीलाओं में प्रमुख रही है। कवियों को कृष्ण के इस रूप ने विशेष आकर्षित किया है और परिणामस्वरूप उनकी उर्वर कल्पना ने अनेकानेक नवीन परिस्थितियों एवं भावस्थितियों की उद्भावना कर डाली। मूलतः भागवत पर आधारित होकर भी यह प्रसंग बहुत सी मौलिक एवं नवीन अनुभूतियों से समृद्ध हो गया। माखनचोर कृष्ण के चोरी करने के बहाने, चतुरता, भोली मुखमुद्रा, यशोदा के प्रति गोपियों के उपालंभ, उत्तर-प्रत्युत्तर, चोरी के निमित्त दंडित किये जाने पर गोपियों में सहानुभूति का उद्रेक और दंडित करने वाली माता को खीझ एवं पश्चाताप इत्यादि के आलेखन और तत्सम्बन्धों भावों के सूक्ष्म एवं स्वाभाविक चित्रण के द्वारा गुजराती तथा ब्रज दोनों के कवियों ने अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है।

माखनचोरी की इतनी सरलता का कारण यह है कि कवियों द्वारा वह सामान्य चोरी से नितान्त भिन्न प्रेम और आकर्षण के भावों से संयुक्त कर दी गयी है। साधारण चोरी में चोर के प्रति न तो आकर्षण होता है, न स्वयं अपनी वस्तु के चुरा लिये जाने की लालसा होती है और न चोर को दंडित होते देख कर दया और प्रेम ही उमड़ता है। पर माखनचोर कृष्ण के प्रति गोपियों के हृदय में यह सभी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। सूर ने तारुण्यावस्था की चेष्टाओं का भी समावेश इस किशोरलीला में ही करके सरसता को और भी परिवर्धित कर दिया है। उपालंभों में भी उन्होंने अनेकानेक मन स्थितियों का आलेखन किया है। एक ही बात के भाव-भेद से अनेक रूप प्रदर्शित किये हैं।

कृष्ण की चोरी करने की वृत्ति से खीझने वाली गोपियों के हृदय में उनके प्रति गहरी रीझ भी छिपी हुई है, इसको सूर ने परिलक्षित किया है—

सूर— ग्वालिनि उरहन के मिस आइ।

नंदनंदन तनु मनु हरि लीनो बिन देखे क्षण रह्यो न जाइ। (सू0सा0, पृ0 172)

उपालंभों से गोपियों द्वारा जिन भावनाओं की अभिव्यक्ति की गयी है वह भी बहुत समानान्तर है। जो कुछ कहती है और जैसे कहती हैं, दोनों में ही पर्याप्त समानता है यद्यपि ब्रजभाषा के कवियों ने उपालंभ के अन्तर्गत आने वाली भावनाओं में अधिक तीव्रता ही नहीं प्रदर्शित की है वरन भावभूमि को भी अधिक विस्तृत कर दिया है। वस्तुतः उपालंभ की कई स्थितियाँ हैं। पहले तो गोपियाँ कृष्ण के विविध प्रकार से माखन चुराने की शिकायत करती हैं और उनकी आदत को बिगाड़ने का दोष यशोदा पर आरोपित करती हैं। इस स्थल पर गोपियों की भावना इस सीमा तक पहुँच जाती है कि वे ब्रज ग्राम को छोड़ देने की बात भी कह डालती हैं। सूर के उपालंभ भाव की इस सीमा को स्पर्श कर लेते हैं—

सूर— अपनौ गाँउ लेहु नंदरानी।

बड़े बाप की बेटी ताते पूतहिं भले पढ़ावति बानी।

सखा भीर लै पैठत घर में आपु खाइ तौ सहिए।

मैं जब चली सामुहे पकरन तबके गुण कह कहिए।

—सू0सा0, पृ0 174

उपालंभ की दूसरी स्थिति वह है जहाँ गोपियों की शिकायत सुनकर यशोदा कृष्ण को दंड देती हैं। कृष्ण को रस्सी में बँधा, और यशोदा को हाथ में छड़ी लिये देखकर गोपियाँ दूसरे प्रकार से उलाहने देने लगती हैं। वे यशोदा को क्रूर और निर्दय तक कह डालती हैं क्योंकि एकलौते बेटे को वृद्धावस्था में पाने वाली कौन ऐसी माँ होगी जो उसे खाने-पीने की बात पर मारे-डाँटे। यह भी तब जब कि घर में दूध, दही और मक्खन की खान हो। इस प्रकार की उपालंभ-भावना भी सूर में तीव्रतम रूप में मिलती है। यशोदा द्वारा जो उत्तर दिलाये गये हैं उनमें भी वही भाव है। (सू0 सा0, पृ0 198, मो0 पदा0 द्वितीय भाग, पृ0 4)

इसके बाद जब एक गोपी कृष्ण के खाये हुए मक्खन को अपने घर से लाकर पूरा कर देने को कहती है तो यशोदा की सहनशक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है |

(क) कहौ तौ मानत ल्याऊँ घर ते।

जा कारण तू छोरति नाहीं लकुट न डारति कर ते।

-सू0 सा0, पृ0 179

(ख) कहन लगी अब बढ़ि बढ़ि बात।

ढोटा मेरो तुमहिं बँधायो तनकहिं माखन खात।

अब मोहिं माखन देत मँगाये मेरे घर कछु नाहीं।

–वही

विषयगत भावनाओं के पूर्ण विस्तार को देखते हुए सूर का भाव-चित्रण अद्वितीय लगता है। कृष्ण का जो रूप उन्होंने माखनचोरी के प्रसंग में व्यक्त किया है वह एक ओर तो नितान्त भोला है और उसमें शिशुता की झलक मिलती है, दूसरी ओर उसमें तारुण्य की चतुरता और रसग्राहिता भी प्रदर्शित की गयी है। किशोरवस्था के दोनों छोर सूर ने छूने की चेष्टा की है यद्यपि कहीं-कहीं असंगति भी आ गयी है। उसके परिहार के लिए उन्हें अलौकिकता का आश्रय लेना पड़ा है। कृष्ण सहसा आयु में बढ़कर गोपियों के प्रेमभाव को तृप्त करते हैं और फिर चमत्कार से पाँच वर्ष के बन जाते हैं। कृष्ण के दोनों रूप सूर ने अत्यन्त आकर्षक ढंग से व्यक्त किये हैं—

मैया मैं नाहीं दधि खायो।

ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।

देखि तुही सीके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो।

तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो।

मुख दधि पोंछि कहत नँदनंदन दोना पीठि दुरायो।

—सू0सा0, पृ0 176

इस पद में भोले कृष्ण चतुर बनने के प्रयास में और भी भोले लगते हैं। परन्तु एक ग्वालिनी की आलिंगनादि के द्वारा तृप्त करने के बाद चतुर कृष्ण जब भोले बनने का प्रयास करते हैं तो और भी चतुर ज्ञात होते हैं—

झूँठहिं मोहिं लगावति ग्वारि।

खेलत मैं मोहिं बोलि लियो है दोउ भुज भरि दोनों अँकवारि।

मेरे कर अपने कुच धारति आपुहिं चोलीं फारि।

माखन आपुहिं मोहिं खवायो मैं कब दीन्हों ढारि।

कहा जानै मेरो वारो भोरो झुकी महरि दै दै मुख गारि।

सूर श्याम ग्वालिनि मन मोह्यो चितै रही इकटकहि निहारि।

—सू0 सा0, पृ0 172

यशोदा द्वारा कृष्ण को माखनचोरी न करने की सीख देने में माता की जिन भावनाओं का अंकन सूर न किया हैः

कन्हैया तू नहिं मोहिं डेरात।

षटरस धरे छाँड़ि कत पर घर, चोरी करि करि खात।

बकति बकति तोसों पचि हारी नेकहुँ लाज न आई।

ब्रज परगन सरदार महर तू ताकी करत नन्हाई।

पूत सपूत भयो कुल मेरो अब मैं जानी बात।

सूरश्याम अबलौं तोहि बकस्यो तेरी जानी घात।

—सू0सा0, पृ0 175

तुलसी ने उससे अधिक सूक्ष्म भावग्रहणशीलता का परिचय दिया हैः

छांडो मेरे ललित ललन लरिकाई।

ऐहैं सुत देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई।

डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि, हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई।

उबटों, न्हाहु, गहौ चोटिया, बलि, देखि भलो वर करहि बड़ाई।

—कृष्णगीतावली, पद 13

यशोदा के इन शब्दों के पीछे कवि के मानव-मनोविज्ञान की सूक्ष्म परख व्यक्त होती है।

गोचारण— कृष्ण के गोचारी रूप के प्रति भी कवियों ने अत्यधिक आसक्ति का परिचय दिया है। वास्तव में राजसी वेश की अपेक्षा कृष्ण का सरल वन्य वेश ही कवियों को अधिक आकर्षक लगा। भागवत के 'वर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारम्' के अनुरूप् कृष्ण को मोर के पंखों का मुकुट धारण किये हुए नटवर वेश में निरूपित करके सूर, मीरां आदि अनेक कवियों ने उनके इस रूप के प्रति अपनी विशेष आसक्ति व्यक्त की है। (श्रीम0 भा0, पृ0 260)।

गोचारण के प्रसंग में ग्वालबालों के बीच, छाक जीमते हुए, गायों को बुलाते, खेलते और सायंकाल धूल भरे ब्रज को लौटते कृष्ण के विविध मनोभावों एवं रूपचित्रणों का सरस आलेखन ब्रजभाषा-काव्य में उपलब्ध होता है।

सूरदास ने एक नवीन प्रसंग का समावेश करके छाक देने के लिए कृष्ण को खोजने में लीन यशोदा द्वारा भेजी हुई ग्वालिन की आतुरता का जो अंकन किया है वह भी कम सराहनीय नहीं है—

छाक लिये शिर श्याम बुलावति।

ढूँढति फिरति ग्वारि नीके करि कहुँ भेद नहिं पावति।

टेर सुनति काहू की श्रवणनि, तहीं तुरत उठि धावति।

पावति नहीं श्याम बलरामहिं व्याकुल ह्वै पछितावति।

वृन्दावन फिरि फिरि देखति है बोलि उठे तहँ ग्वाल।

सूर श्याम बलराम इहाँ है, छाक लेहु किन लाल।

—सू0 सा0, पृ0 195

इसके अतिरिक्त कृष्ण के द्वार पर जाकर उन्हें गोचारण के लिए ग्वाल-बाल जो कुछ कहकर बुलाते हैं और जिस आतुरता से कृष्ण बिना मुँह धोये खाते से उठ भागते हैं उन सबका चित्रण जितनी कुशलता से सूर ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है—

द्वारे टेरत हैं सब ग्वाल कन्हैया आवहु बार भई।

आवहु वेगि बिलम जनि लावहु गैयाँ दूरि गईं।

इह सुनतहि दोऊ उठि धाये कछु अँचयो कछु नाहीं।

कितिक दूरि सुरभी तुम छाँड़ी वनतो पहुँची आँहीं।

ग्वाल कह्यो कछु पहुँची ह्वैहैं कछु मिलिहैं मगमाँहीं।

सूर श्याम बल मोहन भैया भैयन पूछत जाहीं।

—सू0 सा0, पृ0 194

इस प्रकार के पारस्परिक संवादों से युक्त लोक-सामान्य जीवन के सहज, सरस और पूर्णतया मौलिक प्रसंगों की उद्भावना तथा उनका भावपूर्ण अंकन सूर की ऐसी विशेषता है जो ब्रजभाषा के अन्य कवियों में दुष्प्राप्य है। सूरसागर में ऐसे एक नहीं अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं जिनका परिचय देना भी यहाँ संभव नहीं है।

नंद, वसुदेव, यशोदा और देवकी के उद्गार—कृष्ण काव्य में पुत्र-प्रेम का चरम उत्कर्ष नंद, वसुदेव, यशोदा और देवकी की मनोभावनाओं में मिलता है। नंद और यशोदा की वात्सल्यमयी भाव-वृत्ति का निरूपण तो बालकृष्ण के उपासक कवियों द्वारा प्रायः किया गया है परन्तु वसुदेव और देवकी के हृदय की भावनाओं का मर्मस्पर्शी आलेखन गुजराती कृष्ण-काव्य में ही मिलता है। ब्रजभाषा के कवियों की तरह नंद-यशोदा के हृदय की अभिव्यक्ति तक ही अपने को सीमित रखकर गुजराती कवियों ने वसुदेव और देवकी के मनोभावों की उपेक्षा नहीं की है। ब्रजभाषा में सूरदास तक ने कृष्ण के ऐश्वर्य-ज्ञान से देवकी के हृदय के सहज मातृत्व को अभिभूत करके उसके प्रति एक प्रकार का उपेक्षा-भाव ही प्रदर्शित किया है। 'दीनदयालु भक्तभयहारी' कृष्ण के कहने मात्र से पुत्र से बरसों के लिए बिछुड़ती माता का विलाप रुक जाता है—

कहि जाको ऐसो सुत बिछुरै सो कैसे जीवै महतारी।

करि विलाप न देवकी सों कहि दीनदयालु भक्तभयहारो।

—सू0 सा0, पृ0 126

कंसवध के अनन्तर जब कृष्ण-बलराम उनसे मिलते हैं उस समय भी सूर ने उनके हर्षातिरेक की अभिव्यक्ति के साथ न्याय नहीं किया है। उनको प्रसन्नता होती है और वे उस आवेग में कंस का भंडार भी लुटा देते हैं परन्तु कृष्ण द्वारा प्रबोध पाने पर शीघ्र ही शांत भी हो जाते हैं—

क. तब वसुदेव हरषित गात।

श्याम रामहिं कंठ लाये हरषि देवे मात।

—सू0 सा0, पृ0 601

ख. फूले मात पिता दोउ आनंद बढ़ाय कै।

कंस को भँडार सब देत हैं लुटाई कै।

—वही

गुजराती कवियों में भालण, नरसी और प्रेमानंद ने प्रमुख रूप से देवकी की मर्मव्यथा को पहचाना है और उसे पर्याप्त भाववेग के साथ अभिव्यक्ति भी प्रदान की है। देवकी को सबसे बड़ा दुःख यह है कि पुत्र तो उसने जाया है परन्तु उत्सव और बधाई यशोदा के द्वार पर होगी। माता होकर भी उसे मातृत्व के अधिकारों एवं सुखों से वंचित रहना पड़ेगा। उसके भाग्य में कृष्ण को जन्म देना भर लिखा था। उनके पालन-पोषण करने और पास रखने के लिए उसे तरसना होगा और दूसरे यह सुख, उसके जीते जी ही, पायेंगे। यही उसकी मर्मव्यथा है और उसकी करुण कथा।

सूर ने कृष्ण से वियुक्त नंद और यशोदा की दशा का जितना भावपूर्ण अंकन किया है उतना अन्य किसी भी कवि ने नहीं किया। इस क्षेत्र में एकमात्र भालण ही कुछ अंशों में उनसे प्रतिस्पर्धा करते हैं। दोनों के भाव-निरूपण में बहुत कुछ समानता उपलब्ध होती है परन्तु भावानुभूति के क्षेत्र में सूर से उनकी किसी प्रकार समता नहीं की जा सकती। सूर के भाव-वर्णन में उमड़ते हुए समुद्र की लहरों का आवेग है। सूरसागर में सागर शब्द की यर्थाथता ऐसे ही स्थलों से सिद्ध होती है।

सूर की यशोदा किसी दशा में कृष्ण-बलराम को अक्रूर के साथ भेजने को उद्यत नहीं होती। अत्यन्त भोले भाव से वह अक्रूर से राजअंश का धन लेकर वयस्क महर के साथ मथुरा लौट जाने को कहती हैं। उसकी समझ ही में नहीं आता कि नगर से बालकों को क्यों ले जाया जा रहा है—

अपनो लाग लेहु लेखो करि जे कछु राजअंश के दाम।

और महर ले संग सिधारैं नगर कहा लरिकन को काम।

—सू0 सा0, पृ0 581

पर जब कृष्ण स्वयं अपने मुँह से मथुरा जाने की बात कहते हैं तो यशोदा को वियोग प्रत्यक्ष और असह्य हो उठता है, वह तत्काल मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं। इस दशा का वर्णन सूर ने जिन शब्दों में किया है वे अत्यधिक भावोत्पादक हैं—

जिहि मुख तात कहत ब्रजपति सों, मोहि कहत है माइ।

तिहि मुख चलन सुनत जीवति हौं विधि सों काह बसाइ।

को कर कमल मथानी धरिहै को माखन अरि खैहै।

वर्षत मेघ बहुरि ब्रज ऊपर को गिरिवर कर लैहै।

हौं बलि बलि इन चरन कमल की इहईं रहौ कन्हाई।

सूरदास अवलोकि यशोदा धरणि परी मुरझाई।

—वही,पृ0502

कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं का जिस रूप में यशोदा ने स्मरण किया उससे उनके प्रति उसकी गहन आसक्ति की व्यंजना होती है। कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् यशोदा की दिशा और भी अधिक चिन्त्य हो जाती है। उसके प्राण कृष्ण से पुनर्मिलन की आशा में ही शरीर नहीं त्यागते। वह रह रह कर सोचती है कि यदि कृष्ण सचमुच न लौटे तो वह यमुना में डूबकर अवश्य अपने प्राण त्याग देगी—

मनौं हौं ऐसे ही मरि जैहौं।

जो न सूर कान्हा अइहै तौ जाइ यमुन धँसि लैहौं।

—वही, पृ0 587

नंद और दशरथ की भावस्थिति के साम्य और वैषम्य की ओर भी सूर का ध्यान गया पर उन्होंने इसका प्रयोग यशोदा द्वारा नंद को दिये गये उपालंभ में किया है। वहाँ वह इतने तीखे ढंग से प्रयुक्त हुआ है कि नंद उसे सुनते ही मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं—

कहूँ कहनि सुनी नहीं दशरथ की करनी।

यह सुनि नँद व्याकुल ह्वै परे मुरछि धरनी।

—सू0 सा0, पृ0 606-7

कृष्ण से बिछुड़ते हुए नंद की मनोदशा का चित्रण सूर ने भी पर्याप्त मार्मिकता से किया है। सूर के कृष्ण भालण के कृष्ण से कम कठोर हैं। वे माता-पिता विषयक तथ्य को नंद से कटुता से नहीं कहते। एक ओर वे नन्द के स्नेह को स्मरण रखने का आश्वासन देकर उसका तिरस्कार नहीं करते, दूसरी ओर मिलन-वियोग की अनिवार्यता और माया-मोह की निस्सारता का, ज्ञान द्वारा प्रतिपादन करके समझने की चेष्टा भी करते हैं। भावविभोर नंद के नेत्रों में यह कठोर कथन फिर भी आँसू भर लाता है।

(—सू0 सा0, पृ0 605)

कृष्ण जब विदा देने लगते हैं तो उनके शब्दों को सुनकर नंद की जो दशा होती है उसके चित्रण में सूर द्वारा भावों-अनुभावों की संयोजना द्रष्टव्य है—

उठे कहि माधो इतनी बात।

होहु विदा घर जाहु गुसाईं माने रहियो नात।

ठाढ़ो थक्यो उतर नहिं आवै लोचन जल न समात।

भये बलहीन खीन तनु कंपित ज्यो बयारिवश पात।

धकधकात मन बहुत सूर उठि चले नंद पछितात।

—सू0सा0,पृ0606

यशोदा की भावस्थिति नंद की अपेक्षा और भी हृदयद्रावक रूप में चित्रित की गयी है। कृष्ण बलराम के बिना उसकी व्याकुलता प्रतिक्षण बढ़ती जाती है। नंद के वापस लौटने की प्रतिक्षा में अत्यन्त उत्कंठित होकर वह बार-बार मार्ग की ओर देखती रहती है। जब नंद को आते देखती हैं तो कृष्ण के पाने की लालसा से उन्हें सबसे आगे आकर आतुरता से भेंटती हैं।

और जब यशोदा को विश्वास हो जाता है कि नंद वास्तव में अकेले ही लौट आये हैं, कृष्ण-बलराम मथुरा में ही रह गये हैं तो उसकी सारी उत्कंठा, आतुरता, लालसा और व्याकुलता एक ही क्षण में तीव्रतम आक्रोश और आवेश में परिणत हो जाती है। नंद को वह एक के बाद एक उपालंभ देने लगती है जो कटु से कटुतर हो जाते हैं। यशोदा का मातृत्व उसके अन्दर निहित पत्नीत्व से प्रधान हो उठता है और वह नंद के जीवित लौट आने पर भी व्यंग्य कर डालती है। मनोवैज्ञानिकतया सूर का यह भाव-वर्णन मानव-हृदय में उनकी एक विशेष तीव्र अन्तर्दृष्टि एवं पैठ का परिचायक है—

क. उलटि पग कैसे दीन्हों नंद।

छाँडे कहाँ उभय सुत मोहन धिग जीवन मतिमंद।

कै तुम धन-यौवन-मदमाते कै तुम छूटे बंद।

—वही, पृ0 607

ख. यशोदा कान्ह कान्ह के बूझै।

फूटि न गई तिहारी चारौ कैसे मारग सूझै।

इक तनु जरो जात बिन देखे अब तुम दीने फूक।

यह छतिया मेरे कुँवर कान्ह बिनु फाटि न गयी द्वै टूक।

धिग तुम धिग वै चरण अहो पति अधबोलत उठि धाये।

सूर श्याम बिछुरन की हम पै देन बधाई आये।

—वही

कृष्ण के बिछुड़ने पर स्वयं नंद यशोदा को बधाई देने आये हैं, यह कथन कितना व्यंग्पूर्ण और कटु है। कृष्ण ने चलते समय क्या कहा इस उत्सुकतावश यशोदा नंद से प्रश्न करती परन्तु भावावेग में प्रश्न तो भूल जाता है और मन का आक्रोश उपालंभ बन बन कर पुनः व्यक्त होने लगता है—

नंद हरि तुमसों कहा कह्यो।

सुनि सुनि निठुर वचन मोहन के क्योंकरि हृदय रह्यो।

छाँडि सनेह चले मंदिर कत दौरि न चरन गह्यौ |

फाटि न गयौ बज्र की छाती कत यह शूल सह्यो।

सुरति करत मोहन की बातैं नैनन नीर बह्यो।

सुधि न रही अति गलित गात भयो जनु डसि गयो अह्यो।

कृष्ण छाँड़ि गोकुल कत आये चाखन दूध दह्यो।

तजे न प्राण सूर दशरथ लौं हुतो जन्म निबाह्यो।

—सू0सा0, पृ0 607

नंद की सहनशक्ति व्यंग्य पर व्यंग्य सुनते सुनते समाप्त हो जाती है और वे परिस्थिति को स्पष्ट करने अथवा अपनी सफाई देने का प्रयास न करके यशोदा को ही दोषी ठहराते हैं। पति-पत्नी के बीच आवेश के क्षणों में परस्पर दोषारोपण की वृत्ति अत्यन्त स्वाभाविक होती है। सूर ने उसे भी परखा है। नंद कहते हैं—

तब तू मारिबोई करति।

रिसनि आगे कहि जो आवत अबलै भाँड़े मरति।

रोस कै कर दाँवरी लै फिरति घर-घर धरति।

कठिन हिय करि तब जो बाँध्यो अब वृथा करि मरति।

नृपति कंस बुलाइ पठयो बहुत के जिय डरति।

इह कछू विपरीत मो मन माँझ देखी परति।

होनहारी होइहै सोइ अब यहाँ कत अरति।

सूर तब किन फेरि राखे पाइँ अब केहि परति।

—वही

आवेश दूर हो जाने के बाद दम्पति उत्तरदायित्व को परस्पर मिलकर स्वीकार करते हैं।

कोमल चरण कमल कंटक कुश हम उनपै वन गाय चराई।

—वही, पृ0 610

सूर की यशोदा मथुरा जाने की भी इच्छा व्यक्त करती हैं पर देवकी के प्रति ईर्ष्याभाव उनमें उदित नहीं होता वरन उसके विरुद्ध दैन्य की प्रधानता हो जाती है—

हौं तौ माइ मथुरा ही पै जैहौं।

दासी ह्वै वसुदेवराइ की दरशन देखत रैहौं।

—सू0 सा0, पृ0 611

परिस्थिति की सारी विषमता को आत्मसात् कर लेने के बाद दीनता और दुख की एक गहरी छाया यशोदा के मन को छा लेती है। देवकी से अब उसे ईर्ष्या नहीं होती और वह अपनी करुणा को अपने भीतर ही सहेज समेट कर 'धाय' का पद स्वीकार कर लेती है। अब 'धाय' होने में ही उसे संतोष है, क्योंकि इसी नाते कृष्ण से अपना सम्बन्ध तो वह व्यक्त कर लेती है। इस भावस्थिति को सूर ने देवकी के प्रति यशोदा के संदेश रूप में व्यक्त किया है,

संदेसो देवकी सों कहियो।

हौं तौ धाइ तुम्हारे सुत की कृपा करत ही रहियो।

यदपि टेव तुम जानत उनकी तदपि मोहिं कहि आवै।

प्रातहि उठत तुम्हारे कान्ह को माखन रोटी भावै।

तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते।

जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती क्रम-क्रम करि-करि न्हाते।

सूर पथिक सुनि मोहि रैनि दिन बढ़्यो यो रहत उर सोच।

मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत संकोच।

—सू0 सा0, पृ0 612

यशोदा द्वारा अपने को 'धाय' मानने की बात देवकी के प्रति कहे जाने में जो मार्मिकता है वह उसके कृष्ण के प्रति कहे जाने की मार्मिकता से कहीं अधिक तीव्र है। अपने साहचर्य और प्रेम को सूर की यशोदा अत्यन्त दैन्य और दुख के साथ व्यक्त करती है। उसका शब्द शब्द व्यंजना से पूर्ण है। उद्धव के ब्रज में आने पर

नंद-यशोदा का हृदय पुनः पुत्र-वियोग से अभिभूत हो उठता है। सूरदास ने भ्रमरगीत के प्रसंग में भी इनके वातसल्यपूर्ण उद्गारो का इसी प्रकार निरूपण किया है।

उद्धव के आने पर सूर ने नंद और यशोदा की मानसिकता स्थिति का जो चित्रण किया है वह अपूर्ण प्रतीत होता है यद्यपि सामान्यतः दोनों के मनोभावों की अभिव्यक्ति कर दी गई है। वृद्ध दम्पति की पहली जिज्ञासा यह होती है कि क्या कृष्ण कभी हमारा स्मरण करते हैं, साथ ही उन्हें वासुदेव के वास्तविक रूप को न समझने पर पश्चाताप भी होता है—

कबहिं सुधि करत गोपाल हमारी।

पूछत नंद पिता ऊधो सो अरु यसुदा महतारी।

बहुतै चूक परी अनजानत कहा अबके पछिताने।

वासुदेव घर भीतर आये मैं अहीर कै जानै।

—सू0 सा0, पृ0 647

उद्धव कृष्ण का भावभय संदेश यशोदा से कहते हैं परन्तु सूर ने उसकी कोई प्रतिक्रिया यशोदा के मानस में प्रदर्शित नहीं की। संदेश में कृष्ण की कोमल भावना का अत्यन्त मार्मिक अंकन है।

कृष्ण के प्रेम और ऐश्वर्य-ज्ञान से अभिभूत नंद अपनी असमर्थता, अज्ञान तथा दोषमयता पर गंभीर रूप से पछताने लगते है और उद्धव के आगे कृष्ण का एक बार ही दर्शन पाने के लिए विलख उठते हैं—

हमते कछु सेवा न भई।

धोखे धोखे रहे धोख ही जाने नाहिं त्रिलोकमई।

चरण पकरि करि विनती करिबो सब अपराध क्षमा कीबे।

ऐसो भाग होइगो कबहुँ, श्याम गोद में लीबे।

कहै नंद आगे ऊधो के एक बेर दरशन दीबे।

सूरदास स्वामी मिलि अबकै सबै दोष गत कीबै।

—वही

उद्धव को विदा करते समय यशोदा के अन्तस्तल में उठने वाली भावनाओं की भालण और सूर दोंनों ने व्यक्त किया है परन्तु निश्चय ही प्रेमानंद की सी मार्मिकता वह उत्पन्न नहीं कर सके। देवकी के प्रति संदेश कहलाते हुए भालण की यशोदा पुत्र-सुख के गत क्षणों की स्मृति में विभोर होकर कृष्ण की प्रत्येक मनोमोहक क्रीड़ा का ध्यान करने लगती है। उस सुख को पाने के लिए पुनर्जन्म धारण करने की लालसा उसके हृदय में भी उत्पन्न होती है। सूरदास की यशोदा नाना प्रकार से अपना देख समझकर अंत में कृष्ण को अपना आशीर्वाद कहला भेजती है। साथ ही वह घी-भरी दोहनी और मुरली आदि भी देती है जिससे उसके हृदय को वेदना की प्रीति का परिचय मिलता है।

कहियौ यशुमति को आशीस।

जहाँ रहो तहाँ नंदलाड़ियो जीवो कोटि बरीस।

मुरली दई दोहिनी घृत भरि ऊधो लइ शीस।

यह घृत तौ उनही सुरभिन को जो प्यारी जगदीश।

—सू0सा0, पृ0 714

रास, दानमान और पनघट लीलाएँ

1. **रासलीला—** रास को सामान्यतः कवियों ने आनंद-उल्लास, नृत्य-संगीत तथा प्रेम-मिलन के महापर्व के रूप में वर्णित किया है। कुछ कवियों ने उसकी विराटता एवं आध्यात्मिकता पर विशेष बल दिया है। बहुत कम कवि ऐसे हैं जिन्होंने अलौकिक नृत्यगीतमय आनंद की सहज स्थिति के बीच उदासी, दुख, उत्सुकता, विरहकातरता, उद्विग्नता तथा तन्मयता आदि मानवीय भावों के लिए भी स्थान खोज निकाला हो और स्वतन्त्रता के साथ उनका विस्तार किया हो। सूरदास तथा नंददास ने ऐसा ही किया है।

ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने रास-वर्णन में दृश्य-निरूपण की अपेक्षा भाव-निरूपण की ओर कम ध्यान दिया है। फिर थोड़ा-बहुत जो भाव-निरूपण इन कवियों ने किया है वह भागवत के आश्रित और अनुकरणमूलक होने के कारण विशेष महत्व नहीं रखता। जैसा निर्देश किया जा चुका है, सूरदास तथा नंददास की स्थिति इनसे भिन्न है। भागवत का आधार लेते हुए भी भाव-चित्रण में इन कवियों ने पर्याप्त स्वतन्त्रता से काम लिया है और अनुकरण करते हुए भी अपनी अनुभूति से भावों का अधिकाधिक विस्तार किया है।

रास का प्रारम्भ कृष्ण के वेणुवादन से होता है। उनकी वंशी में चराचर को विमुग्ध कर देने की शक्ति है, गोपियाँ तो योंहि कृष्ण पर अनुरक्त रहीं। कात्यायनीव्रत के द्वारा उन्होंने कृष्ण को प्राप्त करने का उपक्रम भी किया। अर्धरात्रि में ज्योत्स्ना के शत आवरणों को वेधती हुई जब अपार सम्मोहन लिये प्रिय की वंशी मधुर स्वर से उनका आवाहन करती है तो उन्हें एक विचित्र प्रकार का आह्लाद-मिश्रित उन्माद होता है जिसमें सारा गृह-काज, सारी लोक-लाज तिरोहित हो जाती है, कृष्ण के पास जा पहुँचने की उतावली वे सारे कार्य अधूरे छोड़ देती हैं अथवा उन्हें विपरीत ढंग से करने लग जाती है। भागवतकार ने गोपियों की इस मनःस्थिति को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है—

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः।

पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः।।5।।

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः।

शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योंऽपास्य भोजनम्।।6।।

लिम्पन्त्यः प्रिमृजन्त्योऽन्या अंजन्त्यः काश्च लोचने।

व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः।।7।।

—दशमस्कंध, अध्याय 29

सूरदास ने परिस्थिति को आत्मसात् करके गोपियों की आतुरता एवं व्याकुलता को जो अभिव्यक्ति प्रदान की है वह भागवत की मुखापेक्षिणी मात्र नहीं है। आभूषणों की अस्तव्यस्तता का जो संकेत भागवत में है उसे अत्यंत स्वाभाविकता एवं मौलिकता से उन्होंने स्पष्ट किया है।

सुनि मुरली-सबद ब्रजनारि।

करति अंग श्रृंगार भूली काम गयी तनु मारि।

चरण सों गहि हार बाँध्यो नैन देखत नाहिं।

कंचुकी कटि साजि लहँगा धरति हिरदय माहिं।

चतुरता हरि चोरि लीन्हीं भई भोरी बाल।

सूर प्रभु रति काम मोहन रासरुचि नंदलाल।

—सू0सा0,पृ0431

यही नहीं, कृष्ण के आकर्षण के समक्ष संसार के समस्त आकषणों एवं सम्बन्धों के प्रति जो उपेक्षा-भाव गोपियों के हृदय में उत्पन्न होता है उसका वर्णन सूर, ने भी अत्यन्त कुशलता के साथ किया है।

चली बन वेणु सुनत जब धाइ।

मात पिता बंधन इक त्रासत जाति कहाँ अकुलाइ।

सकुच नहीं, शंका हू नाहीं रैनि कहाँ तुम जाति।

जननी कहति दई की घाली काहे को इतराति।

मानति नहीं और रिस पावति निकसी नातो तोरि।

जैसे जलप्रवाह भादौं को सो को सकै बहोरि।

ज्यों कैंचुरी भुजंगम त्यागत मात पिता यों त्यागे।

सूर श्याम के हाथ बिकानी अलि अंबुज अनुरागे।

–वही

जाती हुई गोपी की जननी के भावावेगमय शब्दों को अत्यन्त स्वाभाविक रूप में व्यक्त करके परिस्थिति को सजीवता प्रदान की गयी है तथा अनेक सटीक उपमाओं के भाव को विशेष बल मिला है।

अस्तव्यस्त गोपियाँ जब कृष्ण के समीप पहुँची तो उन्होंने प्रेम की परीक्षा लेने के उद्देश्य से घर वापस लौट जाने के लिए कहा। जिसके लिए गोपियों ने माता, पिता, पति, पुत्र सभी को त्याग निशीथ में निर्जन वन के बीच आना स्वीकार किया उसी के मुख से इस प्रकार के कठोर शब्द सुनकर उनका सारा उल्लास शिथिल हो गया और वे दुःख से कातर हो उठीं। कवियों ने गोपियों की इस मर्म-वेदना को परखा। सूरदास ने उनके हृदय की अनन्य प्रीति को भावविह्वल उद्गारों के द्वारा व्यक्त किया। इस आकस्मिक प्रहार से आहत गोपियों को स्तंभित एवं शिथिल शरीर की अवस्था की अभिव्यक्ति प्रदान करने में नंददास ने भी पर्याप्त तन्मयता प्रदर्शित की है। उनके वर्णन में भाव-मुद्राओं के साथ अनुभावों तथा उपमाओं का विचित्र संगुफन मिलता है–

क. श्याम उर प्रीति मुख कपट बानी।

युवती व्याकुल भईं धरणि सब गिरि गईं।

आश गई टूटि नहिं भेद जानी।

—सू0 सा0, पृ0 433

ख. तुम पावत हम घोष न जाहिं।

कहा जाइ लैहैं हम ब्रज में, हम यह दरशन त्रिभुवन में नाहिं।

तुमहू ते ब्रज हित कोऊ नहिं कोटि कहौ नहिं मानैं।

काके पिता मात हैं काके काहू हम नहिं जानै |

काके पति सुत मोह कौन को घर हैं कहा पठावत।

कैसो धर्म, पाप है कैसो, आश निराश करावत।

हम जानै केवल तुमही की और वृथा संसार।

सूर श्याम निठुराई तजिये तजिये वचन विसार।

—सू0 सा0, पृ0 434

ग. सुनहु श्याम अब करहु चतुरई क्यों तुम वेणु बजाइ बुलाई।

विधि-मरजाद लोक की लज्जा सबै त्यागि हम धाई आईं।

—वही

नंददास ने इस अवसर पर कृष्ण के शब्दों की गोपियों पर होने वाली प्रतिक्रिया का अनुभावों द्वारा चित्रण किया है—

जब पिय कह्यो घर जाहु, अधिक चित चिंता बाढ़ी ।

पुतरिन की सी पाँति रहि गई इक-टक ठाढ़ी ।

दुख के बोझ छवि सींव ग्रीव, नै चलो नाल सी ।

अलक अलिन के भार नमित मनु कमल माल सी |

हिय भरि विरह हुतास, उसासनि संग आवत झर ।

चले कछू मुरझाइ मधुभरे अधर बिंब बर।

तब बोली ब्रज-बाल, लाल मोहन अनुरागी।

सुन्दर गदगद गिरा गिरधरहिं मधुरी लागी।

—नंददास, पृ0 163

गोपियों की उदासी एवं दुख का परिहार तब होता है जब कृष्ण उनके साथ रास करना स्वीकार कर लेते हैं। सूर ने इस अवसर पर गोपियों की प्रसन्नता का जैसा अंकन किया है वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं किया। कृष्ण और गोपियों के मन की मुख्य अभिलाषा मूर्त होने जा रही थी अतएव भाव के साथ अनुभाव और अनुभाव के साथ चेष्टाएँ स्वतः प्रकट हो उठीं—

हरि मुख देखि भूले नैन।

हृदय हरषित प्रेम गदगद मुख न आवत बैन।

काम आतुर भजी गोपी हरि मिले तेहि भाइ।

प्रेमवश्य कृपालु केशव जानि लेत सुभाइ।

परस्पर मिलि हँसत रहसत हरषि करत विलास।

उमँगि आनंदसिंधु उछल्यो श्याम के अभिलाष।

मिलति इक इक भुजनि भरि भरि रास रुचि जिय आनि।

तेहि समय सुख श्याम-श्यामा सूर क्यों कहै गानि।

—सू0सा0, पृ0 436

जैसे निरूपित किया जा चुका है, उत्सुकता तथा अतुरता के भाव के कारण आभूषणों एवं वस्त्रों की विपर्यस्तता का वर्णन तो अनेक कवियों ने किया है, परन्तु विपर्यस्त वस्त्राभूषणों के कारण उत्पन्न एक नवीन भावस्थित का वर्णन सूर के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नहीं किया है—

रास रुचि जबहिं श्याम मन आनी।

करहु श्रृंगार सँवारि सुन्दरी हँसत कहत हरि वानी।

जो देखे अँग उलटे भूषण तब तरुनिन मुसुकानी।

बारंबार देखि पिय को मुख पुनि युवति लजानी।

—सू0 सा0, पृ0 436

वस्तुतः परिस्थिति के अनुकूल भावों की योजना तथा भावों के अनुकूल परिस्थिति की योजना अपनी मौलिक कल्पना एवं अंर्तदृष्टि के आधार पर करते जाना सूर का स्वाभाव है। जितनी पूर्णता से भाव और स्थिति को वे आत्मसात् कर पाते हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है। गुजराती तथा ब्रजभाषा का कोई कवि इस दिशा में उनकी समानता नहीं कर पाता। उक्त प्रसंग इसका एक उदाहरण है। सारे सूरसागर में ऐसे अगणित उदाहरण मिलते हैं। रास के प्रसंग में ही कई कवियों ने राधाकृष्ण के ब्याह का वर्णन किया है परन्तु सूर की तरह इस अवसर पर कंकण खोलने के साथ व्यंग्य-परिहास एवं आनंद के मनोभावों का संयोजन किसी ने नहीं किया है—

नहिं छूटे मोहन डोरना हो।

बड़े हो बहुत बछोरियो हो ये गोकुल के राइ।

की कर जोरि करौ बिनती कै छुवौ श्री राधाजी के पाइं।

यह न होइ गिरि को धरिबो हो सुनहुँ कुँवर गोपीनाथ।

आपन को तुम बड़े कहावत काँपन लागे हैं दोउ हाथ।

बहुरि सिमिटि ब्रज सुन्दरी मिलि दीन्हीं गाँठि बनाइ।

छोरहु वेगि कि आनहु अपनी यशुमति माइ बुलाइ।

—सू0 सा0, पृ0 442-43

रास के बीच जब कृष्ण अंतर्ध्यान हो जाते है उस समय गोपियाँ पुनः विरह-वेदना तथा दुख से कातर हो उठती हैं। उनकी यह कातरता इस सीमा पर पहुँच जाती है कि वे लता, द्रुम, पशु-पक्षी आदि सभी चेतन, अचेतन पदार्थों से कृष्ण का पता पूछने लगती हैं। भागवत में दशम स्कंध के तीसवें अध्याय में इस प्रकार का वर्णन है जिसका निर्देश वर्ण्य-वस्तु के प्रसंग में किया जा चुका है। अनेक कवियों ने भागवत का अनुकरण करते हुए गोपियों की इस मनःस्थिति का चित्रण किया है परन्तु इसमें नंददास को अद्वितीय सफलता मिली है। कृष्ण को खोजती हुई गोपियों के हृदय के साथ जितनी तन्मयता उनके हृदय की हो सकी है उतनी अन्य किसी कवि में नहीं मिलती। नंददास की रासपंचाध्यायी का यह स्थल भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से श्रेष्ठतम काव्य की कोटि में रक्खा जा सकता है। उनका वर्णन किसी प्रकार अनुकरणामूलक प्रतीत नहीं होता—

ह्वै गई विरह विकल मन, बूझत द्रुम बेली बन।

को जड़ु को चैतुन्य कछु न जानत विरही जन।

हे मालति ! हे जाति ! जूथिके ! सुनि हित दै चित।

मानहरन, मनहरन लाल गिरिधरन लहे इत।

हे केतकि, इत तैं चितये, कितहुं पिय रूसे।

किधौं नंदनंदन मंद मुसकि तुम्हरे मन मूसे।

हे मुक्ताफल वेलि धरे मुक्ताफल माला।

देखे हैं नैन विसाल, मोहना नंद के लाला।

हे मंदार उदार, बीर करबीर महामति।

देखे कहुँ बलबीर धीर, मनहरन, धीरगति।

हे चंदन, दुखकंदन सब की जरनि जुड़ावहु।

नंदनंदन, जगवंदन, चंदन हमहिं बतावहु।

पूछहु री इन लतनि फूलि रही फूलन जोई।

सुन्दर पिय कर परस बिना अस फूल न होई।

हे सखि, हे मृगबधू, इनहि किन पूछहु अनुसरि।

डहडहे इनके नैन अबै कहुँ देखे हैं हरि।

—नंददास, पृ0 167-68

उद्धरण की दूसरी पंक्ति कालिदास के मेघदूत की उचित **'कामर्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनेषु'** से स्पर्धा करती है। फूलों से लदी हुई लता को देख कर कहना कि बिना प्रिय के स्पर्श के ऐसी प्रफुल्लता हो ही नहीं सकती, प्रेमी के भावविभोर हृदय के भोले विश्वास का परिचायक है। इसी तरह मृगवधू के डहडहे नेत्रों ने अवश्य प्रिय को देखा होगा, इसी कारण उनमें डहडहापन है, जैसी भावनाएँ भी अत्यन्त सरल एवं निश्छल प्रेम को ही व्यक्त करती है।

दानलीला—दही बेचने मथुरा जाती हुई गोपियों से कर रूप में कृष्ण का दधि-दान माँगना दानलीला की मुख्य घटना है जिसका विस्तार करके कवियों ने भावाभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त क्षेत्र खोज लिया। वाह्यतः दान के औचित्य को लेकर वाद-विवाद का सूत्रपात होता है जो भावातिरेक की सीमा पर पहुँच कर मुक्त संघर्ष का रूप धारण कर लेता है, परन्तु सारे वाद-विवाद, सारे संघर्ष के अन्तर्गत विशुद्ध एवं प्रगाढ़ प्रेम की एक विचित्र अन्तस्सलिला प्रवाहित होती रहती है जिसको रसमय अभिव्यक्ति कहना ही प्रायः कवियों का लक्ष्य रहा है। सूर ने अपनी दानलीलाओं के श्रृंगारमयी भावभूमि को स्पष्ट आध्यात्मिक संकेतों से संयुक्त करके उच्चतर बनाने का सफल प्रयास किया है और साथ ही भावनाओं की सूक्ष्मतम अनुभूतियों को अनेकानेक रूपों में प्रकट करते हुए उन्हें चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। गुजराती तथा ब्रजभाषा के सभी कवि इस क्षेत्र में उनसे बहुत पीछे छूट गये हैं यद्यपि भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से सूर तथा अन्य कवियों में पर्याप्त समानता है और भाववस्तु भी प्रायः एक सी ही है।

कृष्ण की ओर से दान मांगे जाने पर गोपियों को आश्चर्य होता है, क्योंकि उनके ब्रज में ऐसा कभी हुआ ही नहीं। वे कृष्ण के अधिकार प्रर्दशन पर तीव्रतम व्यंग्य कर उठती हैं। कृष्ण की पिछली सारी करतूतें उन्हें याद आती हैं। भावावेग में वे विविध प्रकार से कृष्ण की आलोचना करने लगती हैं। उनके व्यंग्य वचनों तथा उपालंभों के पीछे से उनके हृदय का वास्तविक सत्य झलकता रहता है। कवियों ने गोपियों की इस मनोदशा को परखने और व्यक्त करने की पूरी चेष्टा की है। इस सम्बन्ध में जो वाद-विवाद कवियों ने कराया है उसकी वचन-वक्रता तथा भाव-भंगिमा दर्शनीय है।

सूर की 'ग्वालि' ज्योंही यह जान पाती कि दान की याचना कृष्ण ने की त्योंहि उसकी भावमुद्रा व्यंग्यात्मक हो जाती है—

तब हँसि बोली ग्वालि नाम जब कान्ह सुनायो।

चोरी भरयो न पेट आनि अब दान लगायो।

कालिहि घर घर डोलते खाते दही चुराइ।

राति कछू सपनो भयो प्रात भई ठकुराइ।

हमहि कहत हौ चोरटी आपु भयो हौ साहु।

चोरी करत बड़े भये मही छाक लै खाहु।

—सू0सा0, पृ0 297-98

निषेध के पीछे स्वीकृति, 'नाही' के पीछे 'हाँ' छिपाये रखना स्त्री-स्वभाव की प्रसिद्ध विशेषता है। बाहर बाहर कृष्ण के दान माँगने से खीझने वाली ग्वालिनी भीतर भीतर उन पर कितनी अनुरक्त हैं, इसे सूर के निम्न पद में अत्यन्त कुशलता से व्यक्त किया है—

भोरहिं ते कान्ह करत मोसों झगरो।

औरन छाँड़ि परे हठ हमसों दिन प्रति कलह करत नहिं डगरो।

अनवोहिनी तनक नहिं दैहौं ऐसेहि छीनि लेहु बरु सगरो।

सब कोउ जात मधुपुरी बेचन कौने दियो दिखावहु कगरो।

अंचल ऐंचि ऐंचि राखत हौ जान देहु अब होत है दगरो।

मुख चूमति हंसि कंठ लगावति आपुहिं कहति न लाल अचगरो।

सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यो छाँडहु दियो परत नहिं पगरो।

परम मगन है रही चितै मुख सबते भाग याहि को अगरो।

—सू0 सा0, पृ0 299

'ऐसेहि छीनि लेहु बरु सगरों' कहने से दही के छीने जाने से उत्पन्न होने वाली सुखानुभूति और तदर्थ स्वीकृति की पूर्ण व्यंजना होती है जिसे कवि ने अन्तिम पंक्तियों में बहुत स्पष्ट कर दिया है।

दूध-दही का दान मांगने के पीछे कृष्ण का जो वास्तविक भाव था बाद में वह प्रकट हो जाता है। वे दधिदान के स्थान पर यौवनदान लेने का संकल्प करते हैं ओर प्रगल्भ ग्वालिनों को पूरी तरह अपने वश में करना चाहते हैं—

जोबनदान लेउँगो तुमसों।

जाके बल तुम बदति न कहुहि कहा दुरावति हमसों।

ऐसो धन तुम लिये फिरति हौ दान देत सतराति।

अतिहि गर्व ते कह्यो न मोसों नित प्रति आवत जात।

कंचन कलश महारसभारे हमहूँ तनक चखावहु।

सूर सुनहु करि भार मरति कत हमहिं न मोल दिवावहु।

—सू0सा0, पृ0 299

यहाँ अभिधा के द्वारा सीधे-सीधे अभिप्राय प्रकट किये जाने से काव्य-सौन्दर्य में जो हानि हुई है, अन्यत्र इसी अभिप्राय को व्यंजना द्वारा अत्यंत सुन्दर रूप में प्रस्तुत करके सूर ने एक प्रकार से उसका परिहार कर दिया है।

कृष्ण 'जोवनदान' अथवा 'अंग अंगनि को दान' स्पष्टतया न माँग कर कनक-कलश, हंस- के हरि आदि उपमानों के द्वारा अंग-प्रत्यंग के दान लेने को व्यंजना करते हैं। (सू0सा0, पृ0 311)

गोपियाँ कृष्ण के इस पहेली जैसे कथन को समझ नहीं पातीं। वे चकित हो उठती हैं, क्योंकि दूध-दधी को छोड़कर इन वस्तुओं का न कभी उन्होंने व्यापार किया, न वे आसपास कहीं दिखाई ही दे रही हैं।

जब वह पूरी तरह असमर्थ हो जाती है तब कृष्ण उन्हें प्रत्येक उपमान का उपमेय बताकर वास्तविक अभिप्राय समझाते हैं। ज्यों ही गोपियों की समझ में कृष्ण का अभिप्राय आता है त्योंहि वे पुनः खीझ कर व्यंग्य करने लगती हैं—

मांगत ऐसे दान कन्हाई।

अब समुझी हम बात तुम्हारी प्रकट भई कछु धौं तरुनाई।

यहि लालच अँकवारि भरत हौ हार तोरि चोली झटकाई।

अपनी ओर देखि धौं लीजै ता पाछे कीजै बरिआई।

सखा लिये तुम घेरत पुनि पुनि बन भीतर सब नारि पराई।

सूर श्याम ऐसो न बूझिये इनि बातनिं मर्यादा जाई।

—सू0सा0, पृ0 311

फिर तकरार बढ़ जाती है। गोपियाँ यशोदा के पास उलाहन देने जाती है और यशोदा 'मेरो हरि कँह दसहि वरष को तुम यौवन मद उदमानी' कह कर सारा दोष गोपियों के ही सिर मढ़ देती हैं। इन उपालंभों में सूर ने भावों का अंकन अत्यन्त कौशल से किया है। कल्पना द्वारा सारा प्रसंग रचकर विविध मानवीय भावों को उसमें ग्रथित कर देने की उनमें जो क्षमता है उसका पूरा परिचय उनकी दान-लीलाओं से मिल जाता है।

उपालंभ देने वाली इन गोपियों के बीच सूर ने एक ऐसी भाव भरी गोपी को खोज लिया जो यौवनदान की बात सुनकर संकोच और लाज से मरी जा रही है। वैसे ही लोग उसका उपहास करते थे, जब यह सुनेंगे तो वे सचमुच कृष्ण से उसके प्रेम-संबंध को समझ जायेंगें। उसकी अनुनय पूर्ण मनोदशा दर्शनीय है—

श्यामहि बोलि लियो ढिग प्यारी।

ऐसो बात प्रगट कहुँ कहिये सखनि मांझ कत लाजनि मारी।

एक ऐसेहि उपहास करत सब तापर तुम यह बात पसारी।

जातिपाँति के लोग हँसहिगे प्रगट जानिहैं श्याम भतारी।

लाजनि मारत हौ कत हमको हाहा करति जाति बलिहारी।

सूर श्याम सर्वज्ञ कहावत मात पिता सों दयावत गारी।

—सू0सा0, पृ0 312

दान के प्रसंग में कृष्ण और गोपियों का झगड़ा बातों तक ही सीमित नहीं रहता है। उसमें आलिंगन, स्पर्श, चुम्बन तथा हाथापायी तक की स्थिति आ जाती है। उपर्युक्त पदों से सूर की असाधारण कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है। रति के साथ उत्साह का सम्मिश्रण रतिवर्णन में अनेक कवियों ने किया है परन्तु दान के साथ उसे सम्बद्ध करके श्रृंगार के अन्तर्गत वीर रस का पूरा वातावरण प्रस्तुत कर देना वस्तुतः एक विचित्र भाव-योजना है। दान के प्रसंग में राधा-कृष्ण का प्रेम और रोषपूर्ण संघर्ष सूरदास ने भी चित्रित किया है परन्तु उसमें ओज के स्थान पर कोमलता की तथा रोष के स्थान पर प्रेम की प्रधानता मिलती है।(वही,पृ0308) जिन कवियों ने युद्ध और संघर्ष को दान के मूल भाव के बहुत अनुकूल नहीं समझा उन्होंने कृष्ण में इतनी विनम्रता प्रदर्शित की है कि वे याचक बनकर प्रिया के चरणों में अपना शीश तक रख देते हैं। ध्रुवदास ने कृष्ण की मनोदशा का इसी रूप में चित्रण किया है—

प्रिय प्रवीन रस प्रेम में कह्यो सहचरी कीन।

दान मान रस छाँड़ि कै सीस पगन तर दीन।।17।।

गौड़ीय कवि माधवदास ने राधा को इतना स्नेह-वियोग चित्रित किया है कि संघर्ष की स्थिति आने ही नहीं पाती। कृष्ण के हाथ का स्पर्श होते ही वह पूर्णतया प्रेमविह्वल हो जाती हैं और अनेकानेक अनुभाव प्रकट होने लगते हैं।(मा0,वा0,पृ0 74,75)

दधिदान और यौवनदान देने के अनन्तर ग्वालिनों में जो प्रेमोन्माद उत्पन्न होता है और जो विसुधि उनके मन पर छा जाती है उसका वर्णन सूर ने अत्यंत स्वाभाविक रूप से किया है। दही बेचनेवाली ग्वालिन प्रेमजन्य विस्मृति की अवस्था में कभी वृक्षों के हाथ दही बेचने लगती है, कभी दही का नाम ही भूल जाती है और 'दही लो, दही लो' न कह कर 'कृष्ण लो, गोपाल लो' आदि कहने लगती है—

तरुणी श्याम रस मतवारि।

प्रथम जोवन रस चढ़ायो अतिहि भई खुमारि।

दूध नहिं, दधि नहीं, माखन नहीं, रीतो माट।

महारस अँग अँग पूर् यो कहाँ घर कहाँ घाट।

—सू0 सा0, पृ0 324

ख. या घर में कोउ है नांहीं।

बार बार बूझति वृक्षन को गोरस नैहौ कि नांहि।

आपुहि कहति लेहु नाहीं दधि और द्रुमन तर जाती।

मिलति परस्पर विवश देखि तेहि कहति कहा इतराती।

ताको कहति आपु सुधि नाहीं सो पुनि जानत नाहीं।

सूर श्याम रस भरी गोपिका बनते यों बितताहीं।

—वही

ग. कोऊ माई लैहे री गोपालहिं।

दधि को नाम श्यामसुन्दर रस बिसरि गई ब्रजबालहिं।

मटुकी शीश फिरत ब्रजबीथिन बोलत बचन रसालहिं।

उफनत तक्र चहूँदिशि चितवति चित्त लाग्यो नँदलालहिं।

हँसति रिसाति बोलावति बरजति देखहु उलटी चालहिं।

सूर श्याम बिनु और न भावै या विरहनि बेहालहिं।

—वही, पृ0 326

कृष्ण-प्रेम से उत्पन्न विस्मृति की उस मनोदशा का जिसमें ग्वालिन दही का नाम भूल कर उसके स्थान पर कृष्ण का नाम लेने लगती है, ब्रजभाषा के अन्य कवियों चतुर्भजदास तथा मीरां—ने भी किया है। (काँकरौली के पदसंग्रह से, 2 : 1: 18, मो0 पदा0, पृ0 61)

दानलीला के अन्तर्गत सूर ने कृष्ण के ऐश्वर्य की और भी कई बार संकेत किया है। ऐसा करके उन्होंने दान की सामान्य भावभूमि को आध्यात्मिक संकेत देकर उच्चतर बनाना चाहा है जिसकी ओर इंगित किया जा चुका है परन्तु संकेतात्मकता के स्थान पर जहाँ उपदेशात्मकता आ गयी है वहाँ उनका काव्य शिथिल प्रतीत होने लगता है।

जब गोपियों खीझ कर गाँव छोड़ जाने की बात कहती हैं तो कृष्ण उन्हें विचित्र उत्तर देते हैं—

गाउँ हमारो छाँडि जाइ बसिहौ केहि केरे।

तीन लोक में कौन जीव नाहिन वश मेरे।

—सू0सा0, पृ0 297

इसी प्रकार गोपियाँ जब कृष्ण को 'लरिका' कहती हैं, उनकी 'कमरी' पर व्यंग्य करती या उनके माता-पिता की बात उठाती हैं तो भी वे ऐसे ही विचित्र उत्तर देते हैं जिनसे लीला का आध्यात्मिक अर्थ स्पष्ट हो जाता है।(—सू0सा0, पृ0 298,306,307)

गहरी भावधारा के बीच-बीच सूर ने इस प्रकार के कथनों की गूँथ दिया है। निश्चय ही इनसे मूल भाव को बल नहीं मिलता वरन् एक प्रकार का व्याघात ही होता है परन्तु जैसा कि बाल-लीलाओं के प्रसंग में लिखा जा चुका है, भक्तों के हृदय में वे अद्‌भुत रस का संचार भी करते हैं जिससे रस दोष का बहुत कुछ परिहार हो जाता है।

3. **मानलीला**—स्नेह व्यक्ति में अन्तर्निहितं अहं की तीव्रतम अभिव्यक्ति है। परन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसमें अहं की सारी तीव्रता विगलति होकर परस्पर समर्पण का रूप धारणा कर लेती है। प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों के हृदय एकीभूत होकर, शारीरिक द्वैत के रहते हुए भी, एक अद्‌भुत मानसिक अद्वैत की सृष्टि करते हैं जिसके कारण प्रत्येक अपने स्थान पर दूसरे को अपने जीवन का केन्द्र एवं आधार मानने लगता है। दोनों के बीच किसी तीसरे का प्रवेश दोनों को असह्य हो उठता है। समर्पण के साथ अधिकार भावना का भी विकास होता जाता है। मान अथवा रोष तभी उत्पन्न होता है जब काम्य वस्तु पर रहने वाले एकाधिकार में बाधा पड़ती है। **'कामत्कोधोभिजायते'** के द्वारा गीताकार ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को स्पष्टतया व्यक्त किया है | वस्तुतः रोष, क्रोध अथवा मान काम का ही परिवर्तित रूप है | मानलीला द्वारा इसी भाव सत्य को व्यक्त किया गया है | दाम्पत्य प्रेम में उदारता की अपेक्षा ईर्ष्या ही अधिक स्वाभाविक है | पहली प्रतिक्रिया उत्तेजना के रूप में ही होती है | परन्तु यह उत्तेजना 'रीति' स्थायी की उद्दीपक बनी रहती है। उसमें बाधक नहीं बनती, मान प्रेम-भाव को निखार देता है, राधा कृष्ण को अन्य स्त्री में अनुरक्त समझ कर रुष्ट हो जाती है। इसी मूल प्रसंग को लेकर कवियों ने पर्याप्त भाव विस्तार किया है। मान करने वाली राधा की मनोदशा, उसके मान के कारण उत्पन्न होने वाली कृष्ण की व्याकुलता तथा मनानेवाली दूती की भावनाएँ, सभी का अंकन कवियों ने पर्याप्त तन्मयता और कुशलता के साथ लिया है।

राधा के हृदय में ज्योंहि संदेह उत्पन्न होता है, वह व्यंग्यपूर्वक कटु शब्द कहती हुई कृष्ण से अपना हाथ छुड़ा लेती है; एकांत में जाकर सारे आभूषण उतार डालती है और सारे क्रोध के निश्वास भर-भर कर आँसू, बहाने लगती है। सूर ने मानिनी राधा की मनोदशा का सूक्ष्मतर अंकन किया है। उसकी भाव-मुद्रा तो अधिक कुशलता के साथ प्रस्तुत करते हुए रोष और विरह दोनों को एक साथ अभिव्यक्त किया है—

आज हठि बैठी मान किये।

महाक्रोध रस अंश तपत मिलि मनु विष विषम पिये।

अधमुख रहति विरह व्याकुल सिख मूरि मंत्र नहि मानै।

मूक न तजै सुनि जाति ज्यों सुधि आये तनु जानै।

कबहुँक धुकति धरनि श्रम जलभरि महाशरद रवि सास।

इकटक भई चित्र पूतरि ज्यों जीवन की नहिं आश।

—सू0 सा0 पृ0 487-88

क्रुद्ध व्यक्ति, जिसके प्रति क्रोध है उसको, कटु शब्द कहने के साथ साथ समझाने वाले का भी तिरस्कार करता है क्योंकि वह समझाने वाले को अपराधी का समर्थक मान लेता है। इस मनोभाव को सूर के द्वारा पूरी तरह विकसित रूप में अभिव्यक्ति मिली है—

वादि बकति काहे को तू कत आई मेरे घर।

वे अति चतुर कहा कहिये जिन तोसी मूरख

तनु वेधत लैन पठाई वचनन शर।

उतकी इत इतकी उत मिलवति समुझति नाहिन

को ही प्रीति रीति तू को है गिरिवरधर |

सूरदास प्रभु आनि मिलेंगे छै हैं पग अपने कर |

—सू0सा0पृ0 487

राधा जिस दूती की इस प्रकार भर्त्सना करती है उसके मनोभावों को भी सूरदास ने व्यक्त किया है—

ज्यों ज्यों मैं निहोरे करौं त्यौं त्यौं यों बोलति है री अनोखी रूसनिहारी |

बहियाँ गहत सतराति कौन पर, मग धरी उंगरी कौन पै होत पीरी कारी |

कौन करत मन तोसी और न त्रिय आन हठ दूरि करि धरि मेरे कहे आरी |

सूरदास प्रभु तेरो पथ जोवत तोहिं रट लागी मदन दहत तनु भारी |

—वही

दूति चतुर है अतएव भर्त्सना का प्रतिशोध करती हुई भी अपने उद्देश्य की पूर्ति का ध्यान रखती है और मनाने के निमित्त अंत तक कृष्ण की व्याकुलता का उल्लेख कर ही डालती है |

कवियों ने दूतियों द्वारा जो कुछ जिस ढंग से कहलाया है वह मनोवैज्ञानिकतया अत्यन्त उपयुक्त है | रूठी हुई राधा को मनाने के लिए वे कभी कृष्ण की एकनिष्ठा, व्याकुलता तथा निर्दोषिता का बखान करती हैं, कभी ऋतु के उद्दीपक स्वरूप का वर्णन करके क्रोध के कारण सुप्त कामभाव को जगाने का प्रयास करती हैं, और जब यह सब सफल नहीं होता तो वे यौवन की क्षणभंगुरता पर बार-बार बल देकर जीवन के आनंद को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण रूप में पा लेने की इच्छा उत्पन्न करने की चेष्टा करती हैं | समस्त प्रकृति में तीव्र एवं व्यापक मिलन भावना दिखा कर राधा के मन में मिलनेच्छा उत्पन्न कराने का भाव सूर की मौलिक काव्यशक्ति का परिचायक है | इसी शक्ति के आधार पर सूर यौवन की क्षणिकता की तुलना 'अंजुरी' के 'जल' और 'बदरी की छांही' से कर सके |

राधा को मनाने के लिए उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त कवियों ने कृष्ण के द्वारा अपने एश्वर्य का स्वयं वर्णन कराया है जो सारी भावस्थिति को अलौकिक धरातल पर ला देता है | मानलीला में सूर ने कृष्ण के लोकोत्तर स्वरूप को अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रकट किया है |(—सू0सा0पृ0 518)

राधा के मान करने से कृष्ण की जो दशा होती है, सूर, ध्रुवदास तथा माधवदास ने उसका पूरा चित्रण किया है | सूर के कृष्ण इतने दुखी होते हैं कि उनकी चेतना ही कुछ काल के लिए विलीन हो जाती है | मुकुट, पीताम्बर आदि का भी उन्हें ध्यान नहीं रहता—

यह सुनि श्याम विरह भरे |

कहुँ मुकुट कहुँ कटि पिताम्बर मुरछि धरणि परे |

—सू.सा.पृ.485

कृष्ण को राधा की कुंज मे प्रतीक्षा करनी होती है | जब तक राधा आ नहीं जाती तब तक एक एक क्षण का विलम्ब उनके लिए असह्य हो उठता है—

श्याम बन धाम मग वाम जोवैं |

कबहुँ रचि सेज अनुमान जिय जिय करत लता संकेत तर कबहुँ सोवैं |

एक छिन इक घरी, घरी इक याम सम, याम वासरहु ते होत भारी |

मनहिं मन साध पुरवत अंग भाव करि धन्य भुज धनि हृदय मिले प्यारी |

कवहिं आवै साँझ, सोच अति जिय माँझ, नैन खग इंदुह्वै रहे दोऊ |

सूर प्रभु भामिनी वदन पूरणचंद्र रस परस मनहिं अकुलात वोऊ |

—सू.सा.पृ.488-89

ध्रुवदास ने भी सूर की ही तरह अत्यन्त मार्मिकता एवं स्वाभाविकता से कृष्ण की भावदशा का अंकन किया है | उनकी प्रतीक्षाकुलता को कवि ने अन्यतम अभिव्यक्ति प्रदान की है —

लुठत धरनि अँसुवनि भरनि बाढ़ी नदी अपार |

गहि रहे गुन एक नेह को राधा नाम अधार ||12||

मुकुट कहूँ बंसी कहूँ, भूषण कहूँ पटपीत |

मैन सैन लिये घेरिके ताते भये अति भीत ||13||

सेज कुंञ्ज भूषन बसन अरु फूलनि के हार |

देखि सबै अनखात हैं पावक की सी झार ||14||

तुव मग जोवत छिनहि छिन और न कछू सोहात |

पत्र पवन खरकत जबहिं उठि धावत अकुलात ||17||

—मानविनोदलीला

माधवदास ने कृष्ण की उन मनःस्थिति को सूक्ष्मता से आँका है जब वे मानिनी राधा को मानने का प्रयास भी करते जाते हैं और शरीर छूते हुए डरते भी जाते हैं।

आये सनमुख लाल लोचन सजल कीने, माला एक मल्ली की नवल कर लीने हैं।

आगे लै लै धरत करत मनुहार अति पाइन परत कर कैसे डारि दीने हैं।

मोहन मनावत उठावति चिबुक गहि, जतन बनावत न सौंहे दृग कीने हैं।

छुउ न सकत पै न रह्यो पुनि जात जिय अति अकुलात जैसे मीन जालहीने हैं।

—श्री माधुरी वाणी, पृ0 80

4. **पनघटलीला—** पनघटलीला की भाव-भूमि दानलीला की भाव-भूमि से बहुत समानता रखती है। दोनों में भाव-विकास भी प्रायः एक ही क्रम से होता है। जिस प्रकार दधि-दूध बेचने जाती हुई गोपियों को कृष्ण दान के बहाने से उसमें उलझते खिझाते हैं उसी प्रकार इसमें भी यमुना-जल भरने आने वाली गोपियों की कभी गागर फोड़ देते हैं कभी बाँह मरोड़ देते हैं; और भी अनेक प्रकार से वे गोपियों को मुग्ध कर लेते हैं। गोपियाँ भी कभी खीझ कर यशोदा के पास तक उपालंभ ले जाती हैं और कभी रीझ कर उसी घाट पर जल भरने आती हैं या जल भरना ही भूल जाती हैं। पारस्परिक स्नेह की अभिव्यक्ति इसमें भी अत्यंत स्वाभाविक रूप में की गई है। गुजराती तथा ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने राधाकृष्ण और गोपियों की पारस्परिक प्रीति का विकास चित्रित करने के लिए इस पनघट के प्रसंग की उपयुक्त पृष्ठभूमि समझ कर चुना है। सूर ने इसको अतिशय भाव-सम्पन्न बनाकर अन्य लीलाओं की सी पूर्णता प्रदान की है।

सूर के कृष्ण मथुरा के मार्ग की तरह पनघट को भी रोक रखते हैं। गोपियाँ बेचारी उन्हें देखते ही लौट जाती हैं। एक गोपी अनजाने जल भरने आ ही गई। ज्योंहि जल हिलोर कर उसने गागर भरी और सिर पर रखकर घर चली कि कृष्ण ने आकर ढरका दिया। उसने भी कृष्ण को 'कनक लकुटिया' छीन ली और 'समसरि' करते हुए कहा कि जब तक तुम मेरी गागर नहीं भरोगे तब तक लकुटिया नहीं मिलेगी। चतुर कृष्ण ने चीरहरण

के प्रसंग की स्मृति दिला कर उसे इतना भावविभोर कर दिया है कि उसे तन-बदन की सुध भूल गई, सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दीखने लगे। इस प्रकार उसकी तन्मयता चरम कोटि तक पहुँच जाती है।

सूर ने जिस प्रकार मौलिक कल्पना से इस भावमय गोपी की सृष्टि की उसी प्रकार उसकी एक सखी को उससे भी अधिक भावमयता प्रदान करके चित्रित किया है। कृष्ण की खोज में वह भी पनघट आती है और जल भर चुकने पर जब उसकी विकलता सीमा पर पहुँच जाती है तो अन्तर्यामी कृष्ण प्रकट हो कर उसे आलिंगन में भर लेते हैं। इस रूप में कृष्ण का स्नेह पाकर वह उन्मादिनी बन जाती है।

वह ग्वालिन अपने मनोभावों को स्वयं प्रकट करती है। सूर ने उसके आत्मकथन के द्वारा उसकी तन्मय अवस्था का और उत्कृष्ट निरूपण किया है—

आवत ही यमुना भरे पानी।

श्याम बरन काहू को ढोटा निरखि वदन घर गई भुलानी।

उन मो तन मैं उन तन चितयो तबहीं ते उस हाथ बिकानी।

उर धकधकी टकटकी लागी तनु व्याकुल मुख फुरत न बानी।

कहयो मोहन मोहनी तू कहि या ब्रज में नहिं मैं पहिचानी।

सूरदास प्रभु मोहन देखत जनु वारिधि जल बूँद हेरानी।

—सू0 सा0 पृ0 258

इस प्रसंग में यशोदा को दिये गये उपालंभो के रूप में गोपियों की भावनाओं का चित्रण कदाचित् सूर के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नहीं किया है। सूर उपालंभ के रूप में भावों के व्यक्त करने में विशेष पटु हैं और उनको यह पटुता पनघटलीला के अन्तर्गत किये गये भाव-निरूपण में भी परिलक्षित होती हैं।

यशोदा आवेश में उन्हें कृष्ण को दंडित करने का वचन दे देती है और आवेश में जो कुछ उलाहने में गोपियाँ नहीं भी कह जाती उसे भी कल्पित कर लेती है। यही नहीं, रोहणी को सुनाये बिना उसका आवेश उसे चैन नही लेने देता—

यशुमति यह कहिकै रिस पावति।

रोहिणि करति रसोई भीतर कहि कहि ताहि सुनावति।

गारी देत बहू बेटिन को वै धाई ह्यां आवति।

हा हा करति सबनि सों मैं ही कैसेहु खूँट छँडावति।

जाति-पांति सों कहा अचगरी यह कहि सूतहि धिरावति।

सूर श्याम को सिखवत हारी मारेहु लाज न आवति।

—वही, पृ0 260

उपालंभ सुनकर अपने कृष्ण पर खीझना भी उसके वात्सल्य का ही एक रूप है और सामने आ जाने पर क्षण भर में अपने पुत्र के शब्दों पर विश्वास कर लेना और उसे चूमचाट कर सब कुछ भूल जाना भी उसी भाव का दूसरा रूप है। पीछे छिपे कृष्ण अचानक सामने आकर गगरी फूट जाने का कारण ग्वालिनों का सर मटकाना बताते हैं और यशोदा का रोष कृष्ण से उलट कर ग्वालिनों पर ही जा केन्द्रित होता है। (वही, पृ0 260) भाव की यह परिणति पूर्णतया स्वाभाविक है, क्योंकि जिसके प्रति सहज स्नेह होता है उसकी बात पर सहज विश्वास भी आ जाता है और उसे दोष देने वाले पर सहज रोष भी।

यशोदा अन्त में कृष्ण को ग्वालिनों से उलझने के लिए वर्जित करती है, क्योंकि अब उसे कृष्ण की निश्छलता का पूरा विश्वास हो गया है। परन्तु कृष्ण कृष्ण ही बने रहते हैं। वे फिर पनघट पर जा पहुँचते हैं और कभी राधा की छाँह से अपनी छाँह छुवाकर सुख लेते हैं कभी उसकी गागर में कांकरी मार कर। सूर ने इस रूप में प्रसंग विस्तार करके भावों की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त क्षेत्र पनघटलीला में भी खोज लिया।

राधा-कृष्ण की पारस्परिक प्रेमभावना तथा तज्जन्य आत्मविस्मृति का एक अनुपम भाव-चित्र रसखान ने प्रस्तुत किया है—

भूल्यौ गृहकाज लोक-लाज मनमोहिनी की, भूल्यो मनमोहन को मुरली बजाइबो।

कहै रसखानि दिन द्वै मैं बात फैलि जैहे सजनी कहाँ लौ चंद हाथन दुराइबो।

कालि ही कलिंदीतीर चितयो अचानक ही दोउन सों दोउन को मुरि मुसुकाइबो।

दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ उन्हैं भूलि गैयाँ उन्हैं गागरि उठाइबो।

—सुजान रसखान, छन्द 60

इसी प्रकार ब्रजभाषा के अन्य अनेक कवियों ने पनघटलीला के प्रसंग में भावों का निरूपण पर्याप्त उत्कृष्टता से किया है | हरिराम व्यास की एक ग्वालिन इतनी प्रगल्भ है कि वह कृष्ण से उनका पीतपट 'इंडुरी' बनाने के लिए माँग बैठती है | सर पर गागर रखवा देने के बहाने वह एकान्त का संकेत करके स्वयं-दूतिका का कार्य भी करती हैं,फिर जब कृष्ण उसकी मनोकामना पूरी कर देते हैं तो सारी परिस्थिति को स्वयं स्मरण करके रह-रह कर सुखी होती है—

कान्ह मेरे शिर धरि गगरी |

यह भारी, पनिहारिन कोऊ मनसा पुजवत सगरी |

राति परी घरु दूरि डरु बाढ्यो मेरी सासु जनगरी |

देहु पीत पट करहुँ इंडुरी छांउहु छैल अचगरी |

अंचल गहि चंचल बने झगरत नगरत लट बगरी |

विहरत व्यासदास के प्रभुसौं ग्वालिनि सुख लै डगरी |

—व्यासवाणी,पृ0 509

कृष्ण काव्य में संयोग वर्णन

राधाकृष्ण तथा गोपियों की संयोग-लीलाओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। पूर्वोक्त रास, दान, तथा पनघट के प्रसंग भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार मान वियोग की एक अवस्था है परन्तु उसके भी प्रारंभ और अंत में संयोग का ही चित्रण मिलता है। इस प्रधान प्रसंगों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रसंग हैं जिनके माध्यम से कवियों में संयोगावस्था की विविध मनोदशाओं की अभिव्यक्ति की है। यहाँ उन्हीं पर विचार किया गया है | कवियों का लक्ष्य राधाकृष्ण के प्रेम का चित्रण करना रहा है अतएव पृष्ठ-भूमि को बहुधा गौण रक्खा गया है। कृष्ण किस गोपी से कहाँ, कैसे, कब, मिले इसको स्पष्ट न करके मिलने की उत्सुकता, मिलन-समय के मनोभावों, आंगिक चेष्टाओं तथा मिलनोपरान्त की विह्वलता आदि का चित्रण करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। मनोभावों के चित्रण के साथ साथ कहीं कहीं परिस्थिति की व्यंजना भी मिलती है। बहुत सी परिस्थतियाँ मनोभावों के कारण ही उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी परिस्थतियों में गोपियों की मानसिक अवस्था का चित्रण कवियों ने विशेष जागरूकता से किया है। ब्रजभाषा में सूर तथा गुजराती में नरसी ने संयोग से सम्बद्ध अनेकानेक मनोदशाओं का अपने अपने ढंग से मार्मिक निरूपण किया है।

गोदोहन के प्रसंग को लेकर सूर ने राधाकृष्ण के किशोर हृदयों में उत्पन्न होने वाले प्रथम स्नेहाकर्षण तथा स्वाभाविक स्नेह-विकास को जितनी कुशलता से अंकित किया है, वह सारे कृष्ण-काव्य में अद्वितीय है। सूर की भावयोजना संश्लिष्ट रूप में चलती है अतएव इस स्थल पर भी सूर ने राधाकृष्ण के मनोभावों का ही वर्णन नहीं किया है वरन् उनके साथ यशोदा, वृषभानुपत्नी तथा अन्य ब्रजवासियों की भावनाओं को भी व्यक्त किया है जिससे परिस्थिति विशेष की भावाभिव्यक्ति में पूर्णता आ जाती है तथा परस्पर के भावसंघात से नवीन भावों की सृष्टि होती चलती है। एक ही घटना विभिन्न व्यक्तियों के हृदय में विभिन्न भाव उत्पन्न करती है। सूर प्रत्येक के हृदय में पैठ कर प्रायः उसी के मुख से उसके भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करते जाते हैं। इस प्रकार की भावयोजना तथा ऐसा भाव-निरूपण गुजराती कृष्ण-काव्य में अलभ्य है। इसे वर्णन-शैली की विशेषता मात्र कह कर उपेक्षित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसका मूलभूत संबंध कवि की भावानुभूति से है। भावविस्तार की क्षमता वास्तव में भावानुभूति की गहराई का एक परिणाम होती है।

भोली चंचल राधा यशोदा के यहाँ खरिक में गाय दुहाने आई। कृष्ण से उसका प्रथम परिचय खेलने में हुआ। कृष्ण ने ही आँखों के इंगित से उसे खरिक में गाय दुहाने के छल से आने के लिए कहा। अनुरक्ता राधा कृष्ण के अनुराग की मिलनेच्छा के रूप में पहली पहली अनुभूति करके ही उन्मत्त हो जाती है। उसके किशोर हृदय में माता-पिता का भय भी व्याप्त है और तरुणाई के आगमन से पूर्व की मुग्ध प्रीति का उद्रेक भी। फलतः उसकी मनोदशा अत्यधिक उलझ जाती है—

नागरि मनहिं गई अरुझाइ।

अति विरह तनु भई व्याकुल घर न नेक सुहाइ।

श्यामसुन्दर मदनमोहन मोहिनी सी लाइ।

चित्त चंचल कुँवरि राधा खान पान भुलाइ।

कबहुँ बिलपति कबहुँ बिहँसति सकुचि बहुरि लजाइ।

मातु पितु को त्रास मानति मन बिना भई बाइ।

जननि सों दोहनी माँगति वेगि दे री माइ।

सूर प्रभु को खरिक मिलिहौं गये मोहिं बुलाइ।

-सू0 सा0, पृ0 205

इन कुछ ही पंक्तियों में सूर ने वय-संधि में उदय होने वाली अनेक भाव-संधियों को सजीव बना कर प्रस्तुत कर दिया है। इतनी उत्कंठा लिये राधा जब खरिक में आकर भी कृष्ण को नहीं पाती तो चकित भी होती है और विह्वल भी। उसके मन को तभी विश्राम मिलता है जब कृष्ण को आते देखती है। उसमें चतुरता का भी उदय होने लगता है। घर से चलते समय उसका कारण भी कल्पना से देती है, साथ ही शीघ्र आने का आश्वासन भी देती जाती है जिससे माता मना न कर दे। माता को खोजने आने के लिए वह बहाने से वर्जित करती आती है। गन्तव्य स्थान के छिपाने का साहस उसमें अभी नहीं है।

कृष्ण नागर है अतः पूरी तरह चतुर हैं। राधा के साथ प्रेम-क्रीड़ा करते समय जब यशोदा उन्हें देख लेती है तो क्षणमात्र में वे एक झूठ गढ़ लेते हैं। माता विश्वास कर लेती है कि श्रृंगार-क्रीड़ा न होकर बाल-विनोद था—

नीबी ललित गही यदुराई।

जबहि सरोज धरो श्रीफल पर तब यशुमति गइ आई।

तत्क्षण रुदन करत मनमोहन मन में बुधि उपजाई।

देखो ढीठि देति नहिं माता राखी गेंद चुराई।

काहे को झकझोरत नोखे चलहु न देउँ बताई।

देखि विनोद बालसुत को तब महरि चली मुसुकाई।

सूरदास के प्रभु की लीला का जानै इहि भाई।

—वही, पृ0 205-6

ऐसे चतुर कृष्ण भी राधा की प्रीति के कारण इतने विसुध हो जाते हैं कि गाय के स्थान पर बैल को दुहने लगते हैं और सखाओं की बातों पर ध्यान नहीं दे पाते—

दुहत श्याम गैयाँ बिसराई।

नोआ लै पग बाँधि वृषभ के दोहनी माँगत कुँवर कन्हाई।

—सू0 सा0, पृ0 243

जब सुधि आने पर वे राधा की गाय दुहते हैं तो प्रेमातिरेक के कारण एक धार दोहनी में छोड़ते हैं और दूसरी राधा के मुख पर। वयस्क सखियाँ इस अन्यतम प्रेम की अभिव्यक्ति को देखते ही कामपीड़ित हो उठती हैं और उन्हें भी गृहकाज भूल जाता है—

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।

एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।

मोहन करते धार चलत पय मोहनी मुख अतिहिं छवि गाढ़ी।

मनो जलधर जलधार वृष्टि लघु पुनि पुनि प्रेम चंद पर बाढ़ी।

सखी संग की निरखति यह छबि भई व्याकुल मन्मथ की डाढ़ी।

सूरदास प्रभु के बस भई सब भवनकाज ते भई उचाढ़ी।

—वही, पृ0 245

ज्यों त्यों दूध दुहना समाप्त होता है। राधा अपनी दोहनी माँगती है पर कृष्ण देते नहीं। प्रेमविभोर कृष्ण के हृदय में एक ओर अधिक से अधिक समय तक रोक रखने की लालसा है, दूसरे राधा की खिझाने में उन्हें और भी आनन्द आता है।

राधा के हृदय में भी जाने की तिलमात्र इच्छा नहीं है क्योंकि दोनों का प्रेम उभय पक्षी रूप में चित्रित किया गया है। सूर ने जितनी विह्वलता कृष्ण में दिखाई है उतनी ही राधा में, वरन् स्त्री होने के कारण राधा की विह्वलता को चरमसीमा तक पहुँचा दिया है। कृष्ण से बिछुड़ कर स्वयं जाना उसके लिए असह्य है। पैर घर की ओर नहीं उठते। दो-चार पग चलती है तो फिर मुड़ कर कृष्ण को देख लेती है—

क— चलन चहति पग चलत न घर को।

छाँड़त बनत नहीं कैसेहू मोहन सुन्दर वर को।

—वही

ख— मुरि चितवत नंदगली।

डग न परत ब्रजनाथ साथ बिनु विरह व्यथा मचली।

—वही

इस प्रकार राधा कृष्ण के बीच इतनी समीपता बढ़ जाती है कि उन्हें हार का व्यवधान भी असह्य हो उठता है। जो वस्तु उन दोनों के हृदय में अंतर बनाये रक्खे उसे कब तक धारण किया जा सकता है—

उतारत है कंठनिते हार।

हरि हर मिलत होत है अंतर यह मन कियो विचार।

—सू0 सा0, पृ0 206

ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने राधा तथा अन्य गोपियों में आत्मसमर्पण, निषेधात्मक स्वीकृति, तीव्रमिलनेच्छा, कृष्ण के प्रति अनन्य अनुरक्ति, लोकलाज, परिवार के भय तथा सास-ननद के प्रति खीझ अथवा उपेक्षा भाव का अनेक रूपों में अनेक प्रकार से वर्णन किया है। विशेष कर रीति-परम्परा के कवियों द्वारा दिये गये उदाहरणों में प्रायः ऐसे ही भावों का चित्रण मिलता है। इन कवियों ने एक ओर भावों के सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद दिखाकर उन्हें क्रमबद्ध करते हुए शास्त्रीयता प्रदान की, दूसरी ओर विविध गुणों, अलंकारों तथा उक्तियों से सजाकर कलात्मक भी बना दिया जिससे सौन्दर्यवृद्धि होने के साथ प्रायः कृत्रिमता भी आ गई है।

इस सब को प्रमाणित करने के लिए कुछ उदाहरण आवश्यक है। नरसी की गोपी कृष्ण को कंठहार बनाने तक की कामना करती है परन्तु देव की गर्विता नायिका ने अपने प्रिय को हृदय का हार बना कर तो सुख दिया ही, साथ ही आँखों में पुतली बना कर भी बसा लिया। यही नहीं, वह उसके अंग-प्रत्यंग में अंगराग की तरह रम चुका है—

आँखिन में पुतरी ह्वै रहैं, हियरा में हरा ह्वै सबै सुख लूटैं।

अंगनि संग बसैं अंगराग ह्वै, जीवते जीवनमूरि न फूटैं।

-भवानीविलास

अंगो को छूने से कृष्ण का निवारण करती हुई गोपियों की वाह्य निषेध से युक्त आन्तरिक स्वीकृति मतिराम की नायिका में, कुट्टमितहाव के रूप में, मिलती है—

नेकु नीरे जाय करि बातन बनाय करि,

कछु मन पाय हरि वाकी गही बहियाँ।

चैनन चरचि लई सैनन थकित भई,

नैनन में चाह करै बैनन में नहियाँ।।369।।

—रसराज

अनन्य आत्मसमर्पण के भाव को भी देव के द्वारा कहीं अधिक तीव्र अभिव्यक्ति मिली है—

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कोऊ,

कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं।

कैसो नरलोक परलोक वरलोकनि मैं।

कीन्ही हौं अलीक लोक लीकन ते न्यारी हौं।

तन जाउ मन जाउ 'देव' गुरुजन जाउ,

प्रान किन जाउ टेक टरत न टारी हौं।

वृन्दावनवारी वनवारी के मुकुटवारी,

पीतपटवारी वाहि मूरति पै वारी हौं।

भक्त कवियों ने इस प्रकार के भाव अपने पदों में प्रचुरता से व्यक्त किये हैं। रीति काव्य की भाव सम्पत्ति बहुधा अपने पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य पर आधारित है।

जिस प्रकार रमण से पूर्व की मनोदशाओं का सूक्ष्म वर्णन कवियों ने किया है उसी प्रकार रमण के समय की और उसके बाद की मानसिक स्थितियों को भी अंकित किया है। गुजराती में भालण और नरसी ने इनसे सम्बद्ध भावों की विशेष मनोयोग और रसात्मकता के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है। नरसी मेहता का तो यह सर्वाधिक प्रिय विषय है। राधा के सुरतोल्लास, सुरतान्तसुख और सुरत-संगोपन का विविध चेष्टाओं एवं अनुभावों से युक्त वर्णन दोनों कवियों ने पर्याप्त विस्तार से किया हैं। ब्रजभाषा काव्य में भी इस प्रकार के भाव उपलब्ध होते हैं और दोनों में साम्य भी कम नहीं हैं। गुजराती में इस तरह के भावों की अभिव्यक्ति प्रायः राधा के स्वानुभव के रूप में ही कराई गई है।

संगोपन के भाव को सूर ने अत्यन्त मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है। राधाकृष्ण रमण करके जब अपने-अपने घर जाते हैं तो दोनों की माताएँ प्रश्न कर उठती हैं और दोनों की माताएँ प्रश्न कर उठती हैं और दोनों ही सत्य को अपने-अपने ढंग से छिपाने का प्रयास करते हैं—

क. पीत उढ़नियाँ कहाँ बिसारी ?

यह तो लाल ढिगनि की औरै हैं काहू की सारी।

हौं गोधन लै गयो यमुनट तहाँ हुती पनिहारी।

भीर भई सुरभी सब बिडरीं मुरली भली सँभारी।

हौं लै गयो और काहू की सो लै गयी हमारी।

—सू0 सा0, पृ0 207

ख. जननी कहति कहा भयो प्यारी ?

एक बिटिनियाँ सँग मेरे थी कारे खाई ताहि तहाँ री।

मों देखत वह परो धरनि पर मैं डरपी अपने जिय भारी।

—वही

सूरदास के अतिरिक्त ब्रजभाषा में नायिकाभेद लिखने वाले कवियों ने इसी भाव को गुप्ता, लक्षिता, सुरतसंगोपना जैसी नायिकाओं में प्रदर्शित किया है। पर उनके उदाहरणों में सरसता नहीं आ पायी है प्रश्नोत्तर के रूप में व्यक्त करके सूर ने मूल भाव को अधिक सजीव बना दिया है। नरसी की राधा संगोपन का प्रयास नहीं करती और वह करती है लाज करते हुए भी काफी निर्लज्जता से सुरत सुख का वर्णन। वह भालण की राधा जैसी चतुर नहीं दीखती। निश्चय ही भालण के वर्णन में कोमल भावों को पर्याप्त रक्षा की गयी है जबकि नरसी ने इस

ओर ध्यान नहीं दिया है। उनके वर्णन से स्थूलता अधिक है। इस तरह के वर्णन ब्रजभाषा में भी उपलब्ध होते हैं। गुजराती और ब्रजभाषा के संभोग वर्णन में कहीं-कहीं आश्चर्यजक भाव-सादृश्य मिल जाता है।

इस प्रसंग में राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास ने एक अत्यंत मार्मिक आभ्यंतरिक सूक्ष्म अनुभूति को पकड़ लिया है। घनीभूत स्नेह होने पर दो स्नेहियों का मिलन कितना भी प्रागढ़ क्यों न हो, उसमें विरह की अनुभूति बनी ही रहती है। वे दो हैं इसलिए विरह बना रहता है और एक होना चाहते हैं इसलिए मिलन भी अखंड रहता है। इस सूक्ष्म मानसिक स्थित को कवि ने केवल दो पंक्तियों में बाँध दिया है।

विरह सँजोग छिनहिं छिन माँही।

जद्यपि ग्रीवन मेले बाहीं।।42।।

—नेहमंजरी

कृष्ण-काव्य में विप्रलम्भ तथा भ्रमरगीत

खंडिता गोपियों के भाव— जहाँ एक ओर कृष्ण राधा की ओर विशेष रूप से आकृष्ट दिखाये गये हैं वहाँ दूसरी ओर कवियों ने उनमें बहुनायकत्व अथवा अनेक गोपियों को सन्तुष्ट करने की भावना का भी प्रदर्शन किया है। तब तरुणी गोपियाँ उनको पाने के लिए व्याकुल रहती हैं। कृष्ण कभी इसके साथ रमण करते हैं, कभी उसके साथ। उनमें परस्पर ईर्ष्या अथवा सपत्नी-भाव उत्पन्न हो जाता है। एक को वचन देकर जब वे दूसरों के यहाँ रात बिताते हैं और प्रभात में अनेक रतिचिह्न लिये उसके पास लौटते हैं तो उसका खंडित प्रेम कटु एवं व्यंग्यपूर्ण शब्दों से उनका स्वागत करता है। एक एक रतिचिह्न उसकी ईर्ष्याविष्ट कल्पना को जागृत करने लगता है और उन कृष्ण को, जिनके लिए स्वयं सेज रचकर वह सारी रात प्रतीक्षा करती रही, तत्काल वहीं वापस लौटा देने के लिए उद्धत हो जाती है। परन्तु इतने आवेश के बाद भी जब कृष्ण क्षमा याचना के लिए एक कातर दृष्टि उसकी ओर डालते हैं तो वह क्षणमात्र में क्षमा ही नहीं कर देती वरन उनके रतिश्रमनिवारण के लिए अनेक उपक्रम भी करती है। कुछ गोपियाँ अंत तक कृष्ण को क्षमा नहीं करती और एक के बाद एक कटु से कटुतर व्यंग्य-वाक्य कहती जाती हैं। कुछ अत्यन्त स्निग्ध शब्दों के द्वारा अपना रोष प्रकट करती हैं और कुछ स्पष्टतया उग्र शब्दों का प्रयोग करते हुए कृष्ण की भर्त्सना करती हैं। इस प्रकार खंडिता गोपियों की मनोदशा की अभिव्यक्ति कवियों ने पर्याप्त सूक्ष्मता से की है यद्यपि वर्णन में रूढ़िगत एकस्वरता भी बराबर मिलती है। भावों के अंकन में अन्य स्थलों की तरह सूर की विशेष क्षमता यहाँ भी परिलक्षित होती है। कृष्ण की एक ही कातर दृष्टि से अभिभूत होकर क्षमा कर देने वाली जिस खंडिता गोपी की ओर संकेत किया गया है वह राधा को सुपरिचित सखी ललिता, सूर की भावमयी वाणी के द्वारा, नवीन रूप में सामने आती है। शाम से ही कृष्ण के लिए वह अतिशय प्रतीक्षाकुल है और सारी रात वैसी ही विह्वलता से बिता देती है—

साँझहि ते हरिपंथ निहारै।

ललिता रुचि करि धाम आपने सुमन सुगंधनि सेज सँवारै।

कबहुँक होत वारने ठाढ़ी कबहुँक गनति गगन के तारे।

कबहुँक आइ गली मग जोवति अजहुँ न आये श्याम पियारे।

वै बहुनायक अनत लुभाने और वाम के धाम सिधारे।

सूर श्याम बिनु विलपति बाला तमचुर शब्द जहँ तहाँ पुकारे।

—सू0 सा0, पृ0 472

उसकी यह विकलता स्वाभाविक है, क्योंकि कृष्ण उसे स्वयं वचन दे गये हैं। जब कृष्ण सवेरे रतिचिह्न लिये पधारते हैं तो वह और कुछ न कह कर दर्पण भर देख लेने का आग्रह करती है परन्तु जब वे संकोच के मारे उधर नहीं देखते तो ललित शब्दों में व्यंग्य करती है—

क. क्यों मोहन दर्पण नहिं देखत।

क्यों धरणी पग नखन करोवत क्यों हम तन नहिं पेखत।

क्यों ठाढ़े, बैठत क्यों नाहीं कहा परी हम चूक।

पीताम्बर गहि कह्यो बैठिये रहे कहा ह्वै चूक।

उघरि गयो उर ते उपरैना नखछत बिनगुन माल।

सूर देखि लटपटी पाग पर जावक को छबि लाल।

—वही, पृ0 473

ख. ऐसी कहौ रँगीले लाल।

जावक सों कहाँ पाग रँगाई रँगरेजिन मिलि है को बाल।

बंदन रंग कपोलन दीन्हों अधर अरुण भये श्याम रसाल।

माला कहाँ मिलि बिन गुन की उर छत देखि भई बेहाल।

सूर श्याम छबि सबै विराजी इहै देखि मोको जंजाल।

—वही

उसके प्रश्न भरे-सादे वाक्य व्यंग्य को तीक्ष्णतर बना देते हैं। बिना कृष्ण की क्षमायाचना भरी दृष्टि पाये उनका क्रम समाप्त नहीं होता।

काहे को कहि गये आइहैं काहे झूठी सौहै खाए।

ऐसे मैं जाने नहिं तुमको जे गुण करि तुम प्रगट देखाए।

भली करी दरशन हरि दीन्हें जन्म के ताप नशाए।

तब चितए हरि नेक त्रिया तन इतनेहि सब अपराध क्षमाए।

सूरदास सुन्दरी सयानी हँसि लीन्हें पिय अंकम लाए।

—वही

उसके लिए इतना ही बहुत है क्योंकि उसका प्रेम प्रेम का याचक है, वासना न मिली न सही। वह स्वयं कृष्ण का श्रम दूर करने के लिए नाना प्रकार के उपचार करती है। परस्त्रीरमण के चिह्नों का निवारण करके उस पर अपनी विजय घोषित करती है। घायल प्रेम एवं आहत अहंभाव अपनी क्षतिपूर्ति के लिए कितना जागरूक रहता है, इस तथ्य तक सूर की सूक्ष्म दृष्टि कितनी सरलता से पहुँच गयी है—

नैनकोर हरि हेरिकै प्यारी वश कीन्ही।

भाव कह्यो आधीन को ललिता लखि लीन्ही।

तुरत गयो रिस दूर ह्वै हँसि कंठ लगाए।

भली करी मनभावते ऐसेहु मैं पाए।

भवन गई गहि बाँह लै जागे निशि जाने।

अंग शिथिल निशि श्रम भयो मनही मन जाने।

अंग सुगंध मर्दन कियो तुरतहिं अन्हवाये।

अपने कर अंग पोंछिके मनसाध पुराये।

चीर अभूषण अंग दे बैठे गिरिधारी।

रुचि भोजन प्रिय को दियो सूरज बलिहारी।

—वही

एक खंडिता गोपी के भाव का विकास करके सूर ने एक पूरे प्रसंग की सृष्टि कर दी। साथ ही खंडिता के हृदय में रूढ़िगत आवेश का ही वर्णन न करके उस स्नेहातिरेक को भी प्रदर्शित किया है जिसकी गहराई में सारी ईर्ष्या, सारा मान और और सारा निषेध खो जाता है।

ब्रजभाषा में खंडिता के मनोभावों को अभिव्यक्ति प्रायः श्रृंगार रस के सभी कवियों ने की है। सूर और हरिराम व्यास के निम्नोक्त उद्धरण इसके प्रमाण है—

सूर— जावक रंग लग्यो भाल, वंदन भुज पर विशाल,

पीक पलक अधर झलक वाम प्रीति गाढ़ी।

क्यों आये कौन काज, नाना करि अंग साज,

उलटे भूषण श्रृंगार निरखत हौं जाने।

ताही के जाहु श्याम जाके निशि बसे धाम,

मेरे गृह कहा काम, सूरदास गाने।

—सू0सा0, पृ0 475

व्यास— आजु पिय राति न तुम कछु सोये।

कौन भामिनी के भवन जगे हरि जाके रस बस मोये।

रति रस उमगि चले नखशिख अँग नीरस अधर निचोये।

खंडित गंड पीक मुख को छवि अरुन अलस अति पोये।

जावक पीक मषी रस कुमकुम स्वाद वासना भोये।

लटकति सिर पगिया, लट विगलत सुन्दर स्वाँग सँजोये।

तन मन कारे हौंहि न गोरे कोटि वारि जो धोये।

खोटी टेव न तजत व्यास प्रभु मैं कै बार बिगोये।

—व्यासवाणी, पृ0 523

सूरदास ने खंडिताओं की ही मनःस्थिति को व्यक्त नहीं किया वरन कृष्ण के मनोभावों को भी स्पष्टता से अभिव्यक्ति प्रदान की है। सारे प्रसंग को उन्होंने लीला-रूप में ग्रहण किया है अतएव सारी भावनाओं की अंतिम परिणति आनन्द में होती है। कृष्ण बाह्यतः तो संकोच प्रकट करते हैं परन्तु अन्तर से गोपी के व्यंग्य वचन, उसका रोष, उसकी खीझ उनके मन में क्षोभ के स्थान पर एक विचित्र सुख की अनुभूति जगाते हैं जिसकी पुलक से उनका सारा शरीर सिहर उठता है—

श्याम त्रिया सन्मुख नहिं जोवत।

कबहुँ नैन की कोर निहारत कबहुँ वदन पुनि गोवत।

मन मन हँसत त्रसत तनु परगट सुनत भावती बात।

खंडित वचन प्यारी के पुलक होत सब गात।

इह सुख सूरदास कछु जाने प्रभु अपने को भाव।

श्रीराधा रिस करति निरखि मुख सो छवि पर ललचाव।

—सू0 सा0, पृ0 481

2. **कृष्ण का मथुरा-गमन—**कृष्ण-काव्य को प्रधान भावना प्रेम है और प्रेम की जितनी तीव्र अनुभूति मिलन में होती है उससे कहीं अधिक विरह में। विरह एक प्रकार से मिलनकाल में विकसित होने वाले प्रेम की गहनता एवं स्थिरता का प्रमाण है। कृष्ण के ब्रज से मथुरा जाने की बात उनके प्रेम में उन्मत रहने वाले ब्रजवासियों के लिए कितनी मर्मान्तक पीड़ा का कारण हो सकती है, इसको सूर के अनुभूतिशील हृदय ने पूरी

तरह पहचाना। उन्होंने अपने अपने स्वभाव के अनुसार समस्त कृष्ण-काव्य को संयोग वियोगमयी भावभूमि के बीच संधिस्थल जैसे इस प्रसंग को विशेष भाव-संकुल बना कर प्रस्तुत किया है। उनका भाव-निरूपण विस्तृत और गंभीर संवेदना उत्पन्न करने वाला है। कृष्ण को मथुरा ले जाने वाले अक्रूर के मनोभावों का सूक्ष्म आलेखन सूर ने पर्याप्त कुशलता से किया है। अक्रूर के हृदय में कृष्ण के चरणों का दर्शन पाने की अभिलाषा एवं उत्कंठा तथा उनके ऐश्वर्य-ज्ञान से उत्पन्न विनम्र भक्ति भाव भागवतकार ने भी प्रदर्शित किया है परन्तु सूर ने उसे और भी अधिक और संपूर्ण बना दिया है—

जब शिर चरण धरिहौं जाइ।

कृपा करि मोहिं टेकि लैहैं करन हृदय लगाइ।

अंग पुलकित वचन गदगद मनहिं मन सुख पाइ।

प्रेमघट उच्छलत ह्वै हैं नैन अंशु बहाइ।

कुसल बूझत कहि न सकिहौं बार बार सुनाइ।

सूर प्रभु गुण ध्यान अटक्यो गयो पंथ भुलाइ |

—सू0 सा0, पृ0 587

एक भावुक-हृदय व्यक्ति भाव-विभोर किस प्रकार कल्पनाशील बन जाता है और क्या सोचता है, यह सूर को भलि भाँति विदित है। सूर का उक्त पद भाव की दृष्टि से भागवत पर आधारित है परन्तु कृष्ण को रथ में बिठाकर मथुरा की ओर जाते समय अक्रूर के मन में होने वाले जिस अंतर्द्वन्द्व का चित्रण सूर ने किया है वह उनकी नितान्त मौलिक भावानुभूति का प्रमाण है। ब्रजवासियों को दुखी करके क्रूर कंस के पास कृष्ण को ले जाना उन्हें पाप कर्म लगता है, साथ ही उन्हें कंस का भय भी है। इस अंतर्द्वन्द्व से पीड़ित होकर उनका मन आत्मग्लानि से भर जाता है।

मनहिं मन अक्रूर सोच भारी।

जननि दुखित करी इनहि मैं लै चल्यो भई व्याकुल सबै घोष नारी।

अतिहि ए बाल भोजन नवनीत के जानि तिन्है लीन्हे जात दनुज पासा।

कुवलयामल्ल मुष्टिक चाणूर से कियो मैं कर्म यह अति उदासा।

फेरि लै जाउँ ब्रज श्याम बलराम को कंस लै मोहिं सब जीव मारै।

सूर पूरण ब्रह्म निगम नाहीं गम्य तिनहिं अक्रूर मन यह विचारै।

—सू0सा0, पृ0 587

किन्तु जहाँ सूर ने अक्रूर के मन में उठने वाली इन मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए स्थल खोज लिया वहाँ कृष्ण के ब्रह्मत्व का निरूपण करना ही उनका प्रधान लक्ष्य रहा है। यह भक्त कवियों की एक सहज प्रवृत्ति रही है।

कृष्ण के मथुरा-गमन का समाचार सुनकर सूरदास की गोप-गोपियाँ बहुत उदासी अनुभव करती हैं। गोपों में वैसी उत्तेजना नहीं प्रदर्शित होती।

सब मुरझानी री चलिबे की सुनत भनक।

गोपी ग्वाल नैन जन ढारत गोकुल ह्नै रह्यो मुँदचनक।

यह अक्रूर कहाँ ते आयो दाहन लाग्यो देह दनक।

सूरदास स्वामी के बिछुरत घट नहिं रैहैं प्राण तनक।

-सू0 सा0, पृ0 580

इसके अतिरिक्त सूर ने एक ऐसी गोपी की दशा का वर्णन किया है जिससे स्वयं कृष्ण ने अपने जाने की बात कही। जिसके केवल चलने की भनक सुनते ही गोपियाँ मुरझा जाती हों उसके स्वयं कहने पर कितनी गंभीर वेदना उस गोपी की हुई होगी, यह सूर की वाणी से ही व्यक्त हो सकता है। 'जल ज्यों बात बही' कह कर सूर ने उसकी अश्रुविगलित दशा की व्यंजना की है—

हरि मोसों गौन की कथा कही।

मन गह्वर मोहिं उतर न आयो हौं सुनि सोचि रही।

सुनि सखि सत्य भाव को बातैं विरह वेलि उलही।

करवत चिह्न कहे हरि हमको ते अब होत सही।

आजु सखी सपने मैं देख्यो सागर पालि ढही।

सूरदास प्रभु तुम्हारो गवन सुनि जल ज्यों जाति बही।

—सू0सा0, पृ0 580

सूरदास ने एक स्थल पर कृष्ण के वियोग में राधा को भी ठीक ऐसी ही पूर्व स्मृति-संकुल मनःस्थिति में चित्रित किया है। उसे भी मान करने का घना पश्चाताप हो रहा है—

मेरे मन इतनी शूल सही।

वै बतियाँ छतियाँ लिखि राखो जे नँदलाल कही।

एक दिवस मेरे गृह आये हौं ही मथत दही।

रति माँगत मैं मान कियो सखि सो हरि गुसा गही।

सोचति अति पछिताति राधिका मूर्छित धरनि ढही।

सूरदास प्रभु के बिछुरे ते व्यथा न जाति सही।

—सू0सा0, पृ0 638

कवियों द्वारा नंद और यशोदा आदि की मनोदशा का जो चित्रण किया गया है उसका परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है।

नरसी ने कृष्ण के ब्रज से बिछुड़ते समय धेनु-प्रेम को जिस रूप में व्यक्त किया है वह गुजराती काव्य में अद्वितीय है। जिस समय गायें कृष्ण के मथुरागमन का आभास पाती है, तत्काल 'हिंसारव' करती, बंधन तोड़ती, गौशाला फोड़ती निकल पड़ती हैं। कृष्ण भी उन्हें देखने के लिए अक्रूर के साथ गौशाला में जाते हैं। कृष्ण को देखते ही गायें चारों ओर से उन्हें घेर लेती हैं और प्रिय के हाथ का स्पर्श पाकर उनकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। वे यशोदा को बुलाकर गायों औार बछड़ों की दीन दशा दिखलाते हैं। गायें इस प्रकार कातर दृष्टि से कृष्ण को देखती हैं जैसे उन्हें रोकना चाहती हों। पीठ पर हाथ फेरते हुए आश्वासन देकर जब कृष्ण जाने लगते हैं तो वे बड़ी देर तक गर्दन उठा कर उन्हें देखती रहती हैं और अंत में निराश होकर पड़ रहती हैं।

ब्रजभाषा में सूर ने गायों की वेदना को व्यक्त किया ही है, साथ ही उनके स्वभाव का अधिक सूक्ष्म निरूपण किया है। उन्होंने कृष्ण से बिछुड़ती हुई गायों की दशा अंकित न करके बिछुड़ने के बाद उनकी वैसी कारुणिक अवस्था हो जाती है उसका अंकन किया है। प्रसंग-भेद अवश्य है परंतु यहाँ तुलना की दृष्टि से सूर का एक पद उद्धृत कर देना अनुचित न होगा—

मधुकर इतनी कहियहु जाइ।

अति कृशगात भई ए तुम बिनु परम दुखारी गाइ।

जलसमूह बरषति दोउ आँखें, हूँकति लीने नाँउ |

जहाँ जहाँ गोदोहन कीनो सूँघति सोई ठाँउ।

परति पछार खाइ छिनही छिन अति आतुर ह्वै दीन।

मानहु सूर काढ़ि डारी है वारि मध्य ते मीन।

—सू0 सा0 पृ0 711

नरसी के 'उँची डोक करी करी भाले रे' में जितनी स्वाभाविकता है उससे अधिक स्वाभाविकता नाम सुनते ही हूंकने और गोदोहन के स्थानों को जा जा कर सूंघने में है परन्तु जहाँ तक संवेदना का प्रश्न है, नरसी और सूर दोनों के वर्णनों में वह समान रूप से उपलब्ध होती है।

नरसी ने जिस प्रकार गायों की कातरता एवं उत्सुकता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है उसी प्रकार कृष्ण से बिछुड़ती हुई गोपियों की मनस्थिति को भी पूरी तरह अभिव्यक्ति किया है। सारी गोपियाँ कृष्ण से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। घर की बड़ी-बूढ़ी मना करती ही रह जाती हैं और वे भरे जल को ढरका कर सुनी-अनसुनी करती हुई जल भरने के बहाने घर से निकल ही पड़ती हैं—

आ आवी कही चाली गोपियो, जोई सासुं लढवा धाती रे।

भर्युं पाणी वृथा ढोली बहुवर, सुण्युं न सुण्युं करी जाती रे।।

—न0 कृ0 का0, पृ0 64

कृष्ण का रथ जब मथुरा की ओर चल पड़ता है तो वे राह में आ खड़ी होती हैं। कृष्ण की आज्ञा से अक्रूर रथ हाँकने में अपना पूरा कौशल प्रदर्शित करते हैं परन्तु गोपियाँ आगे-पीछे गिरती-पड़ती, उड़ती हुई धूल में भी रथ को पकड़ लेती हैं। चतुर राधा पहिये की कील निकाल कर रथारोहियों को पराजित कर देती हैं। भाववेश में वे अक्रूर को मारने और कृष्ण-बलराम को कुंज में उठा ले जाने के लिए उद्यत हो जाती हैं—

अक्रूर ने मारो बाँधो पछाडो, बे वीर कुंजे लीजे।

अबलाअे बलवता पकड्या नरसहिंयो घणु रीझे।

—वही, पृ0 69

गुजराती कवि नरसी की गोपियाँ भावुक होने के साथ ही क्रियाशील भी बनी रहती हैं। उनकी भावना उन्हें मिलन और दर्शन के लिए प्रयत्नरत रहने की प्रेरणा देती हैं। इनके विरूद्ध सूर की गोपियों का भावतिरेक उन्हें सारी परिस्थिति के प्रति विचित्र प्रकार से निश्चेष्ट, निष्क्रिय तथा जड़ बना देता है। वे केवल पश्चाताप, रुदन तथा क्रंदन करती रह जाती हैं। उसकी सारी चतुरता विरहानुभूति की गंभीर अश्रुधारा में बह जाती हैं। वे लाज त्याग कर कृष्ण को मथुरा जाने से रोकने की बात सोचती हैं पर जब अवसर आता है उनसे प्रेम के कारण बोला तक नहीं जाता, सारा शरीर रोमांच से भर जाता है—

गोपालहिं राखहु मधुबन जात।

लाज गहे कछु काज न सरिहैं बिछुरत नंद के तात।

रथ आरूढ़ होत बलि बलि गई होइ आयो परभात।

सूरदास प्रभु बोलि न आयो प्रेमपुलकि सब गात।

—सू0सा0, पृ0 584

कृष्ण रथ पर चढ़ कर चल भी देते हैं फिर भी उनसे गंभीर दुःखानुभूति के कारण कुछ करते ही नहीं बनता, जहाँ की तहाँ चितवत् खड़ी रह जाती हैं—

रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी।

हरि के चलत देखियत ऐसी मनहु चित्त लिखि काढ़ी।

सूखे बदन स्रवत नैनन ते जलधारा उर बाढ़ी।

कंधनि बाँह धरे चितवति दुम मनहु बेलि दव डाढ़ी।

नोरस करि छाँड़ी सुफलक सुत जैसे दूध बिन साढ़ी।

सूरदास अक्रूर कृपा ते सही विपति तनु गाढ़ी।

—वही, पृ0 585

कृष्ण से उनकी चेतना पूर्णतया आबद्ध रहती है। विसुधि एवं निष्क्रयता उसी का एक परिणाम है, उसकी न्यूनता अथवा अभाव का प्रमाण नहीं। बिछोह के अवसर पर उनके प्रेम में वासना की उष्णता तथा चपलता की गंध भी नहीं रह जाती। न तो वे नरसी की गोपियों की तरह मार्ग में ब्यूह बना कर उन्हें रोकने का प्रयास करती हैं न कुंज में ले जाकर रास-विलास के निमग्न होती हैं। जब उनके प्रेम का बल कृष्ण को नहीं रोक पाया तो बौद्धिक और शारीरिक बल का प्रकार वे क्यों करें। स्थूल चेष्टाएँ उनकी सुकुमार भावना के अनुकूल नहीं पड़ती। परन्तु सुकुमार हो कर भी उनकी भावना हृदय के गंभीरतर स्तरों तक व्याप्त दीखती है। रथ को देखने की लालसा, कृष्ण के प्रति अनुरक्ति एवं उनके साथ रहने की इच्छा उनमें किसी भी नरसी की गोपियों से कम प्रतीत नहीं होती। रथ कितनी दूर गया इसकी जिज्ञासा, रथ उनके कृष्ण को लेकर जा रहा है उसकी अनुभूति, रथ के साथ साथ धूल, पताका पवन आदि होकर मधुरा तक जाने की लालसा तथा सब के चले जाने पर मूर्छित होकर गिर पड़ना इसका प्रमाण है—

क - केतिक दूरि गयो रथ माई ?

नँद-नंदन के चलत सखी रो तिलको मिलन न पाई।

एक दिवस हौं द्वार नंद के नहीं रहति बिनु आई।

आजु विधाता मति मेरो गई भौन काज बिरमाई।

—सू0 सा0, पृ0 585

ख- सखी री वह देखौ रथ जात।

कमलनैन काँधे पर न्यारो पीत वसन फहरात।

—वही

ग - पाछे ही चितवन मेरे लोचन आगे पात न पाँइ।

मन लै चली माधुरी मूरति कहा करौं ब्रज जाइ।

पवन न भई, पताका अंबर भई न रथ के अंग।

धूरि न भई चरण लपटाती जाती वहँ लौं संग |

ठाढ़ी कहा करौं मेरी सजनी जिहि विधि मिलहि गोपाल।

सूरदास प्रभु पठै मधुपुरी मुरझि परी ब्रजबाल।

—वही

बचपन का प्रेम और रथ को धूल के कारण कृष्ण को भर आँख न देख पाने की विवशता उन्हें बहुत समय तक कचोटती रहती है—

अब तो हैं हम निपट अनाथ।

जैसे मधु तोरे की माखी त्यों हम बिनु ब्रजनाथ।

अधर अमृत की पीर मुई हम बाल दशा ते जोरि।

सो छिड़ाय सुफलक-सुत लै गयो अनायास ही तोरि।

जौंलगि पानि पलक मींड़त रही तो लगि चलि गये दूरि।

करि निरंध निबहै दै माई आँखिन रथ पथ धूरि।

—सू0 सा0, पृ0 610

बलराम और कृष्ण को अवश्य सूर ने नितान्त निस्पृह एवं निर्लिप्त रूप में चित्रित किया है। बिछोह का ऐसा अवसर भी उनके मन में किसी प्रकार के भाव उत्पन्न नहीं कर पाता—

व्याकुल भये ब्रज के लोग।

श्याम मन नहिं नेक आनत ब्रह्म पूरण योग।

कौन माता पिता को है, कौन पति को नारि?

हँसत दोउ अक्रूर के सँग नवल नेह बिसारि।

—वही, पृ0 580

3. **भ्रमरगीत**—कृष्ण-काव्य में भ्रमरगीत का प्रसंग ब्रजवासियों, विशेषकर गोपियों की मनोदशा की अभिव्यक्ति का अत्यन्त प्रधान केन्द्र रहा है। क्रमशः इसमें सैद्धान्तिकता का समावेश हो गया परन्तु उससे भावाभिव्यक्ति की क्षति न होकर कुछ उत्कर्ष ही हुआ है। गोपियाँ भक्ति एवं प्रेम का प्रतीक बन गईं। ज्ञान और योग के समर्थनकर्ता उद्धव को वे प्रायः अपनी गम्भीर प्रणयानुभूति और निश्चल आसक्ति से पराजित कर देती हैं। बौद्धिक तर्क की अपेक्षा वे अश्रु और उच्छवास का आश्रय लेती हैं जो उनके विरहविदीर्ण हृदय की सहज अभिव्यक्ति करती हैं। ऐसे कवि कम हैं जिन्होंने गोपियों के भावों के साथ कृष्ण के भावों का अंकन इस प्रसंग में किया हो। सूरदास ने कृष्ण के ब्रज-प्रेम का अंकन तो किया है किन्तु ब्रज और ब्रजवासियों के प्रति जो ममता कृष्ण व्यक्त करते हैं वह 'छल' के रूप में प्रकट होती है। निर्लिप्त कृष्ण उद्धव का ज्ञानगर्व नष्ट करने के निमित्त विपरीत भाव प्रदर्शित करते हैं।

उद्धव कृष्ण का संदेश ब्रज में लाते हैं इस वस्तु को तो कवियों ने सामान्यतः स्वीकार किया है परन्तु उसकी भावभूमि को कुछ ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार परिवर्तित एवं विस्तृत कर लिया है। भावाभिव्यक्ति के क्षेत्र में सूर की विशेषता यहाँ भी परिलक्षित होती हैं। उद्धव के मथुरा लौट आने पर गोपियों की दशा सुन कर कृष्ण के हृदय में वास्तविक उद्वेलन होता है। दुखी गोपियों के पास योग का संदेश भेज कर वे पछताते हैं—

सुनु उधो मोहिं नेक न बिसरत वे ब्रजवासी लोग।

तुम उनको कछु भली न कीनी निशिदिन दियो वियोग |

यद्यपि वसुदेव देवकी मथुरा सकल राज-सुख भोग |

तदपि मनहि बसत बसीवट ब्रज यमुना संयोग |

वे उत रहत प्रेम अवलंबन इतते पठयो योग |

सूर उसांस छाँड़ि भरि लोचन बढ्यो विरह ज्वर शोग |

—सू0 सा0, पृ0 725

कृष्ण की मनःस्थिति पूर्ववर्णित मनःस्थिति से विरोध उपस्थित करती है परन्तु विचार करने पर विरोध-विरोध न रहकर विरोधाभास सिद्ध होता है क्योंकि कृष्ण उद्धव की गोपियों के पास ब्रज-प्रेम की महिमा समझाने के लिए ही तो भेजते हैं। यह उद्देश्य उनके हृदय में अन्तर्निहित ब्रजप्रेम को व्यंजित करता है। सूर ने इसको उक्त पद में अभिव्यक्त किया है। यों सूर ने कृष्ण को कभी निर्लिप्त, निष्काम तथा निर्विकार रूप में चित्रित किया है और कभी उनमें भावों, अकामनाओं तथा मनोविकारों का भी प्रदर्शन किया है, इसमें सन्देह नहीं।

संदेश पाने से पूर्व ब्रजवासियों की मनोदशा— संदेश पाने से पहले ब्रजवासियों में जो आशामयी उत्सुकता उत्पन्न होती है उसको सूर ने पूरी तरह प्रत्यक्ष करके व्यक्त किया है। गोपियों की वृत्ति कृष्ण में इतनी रमी हुई है कि उन्हें उद्धव के आने का आभास अपने आप हो जाता हैः सुख-दुख का मिश्रित अनुभव होने लगता है और वे प्रिय के आगम को जताने वाले काग को खीर और पाग देने की कामना करने लगती है। —सू0 सा0, पृ0 645

भावमुग्ध अवस्था में गोपियाँ वेश-साम्य देख कर उद्धव को ही कृष्ण समझ लेती हैं। यह भ्रान्ति सारे ब्रजवासियों के हृदयों को आन्दोलित कर देती है। नंद, यशोदा, ब्रजललनाएँ तथा गोवृंद सभी प्रेम अन्य अनभावों से आपूरित हो जाते हैं। उनमें वितर्क का भी संचार होने लगता—

घर घर इहै शब्द पर् यो।

सुनत यशुमति धाइ निकसीं हर्षि हियो भर् यो।

नंद हर्षित चले आगे सखा हर्षत अंग।

झुंड झुंडन नारि हर्षित चलो उदधितरंग।

गाइ हर्षत पथ स्रवत थन हुँकरत गउ बाल।

उमँगि अंग न मात कोउ वृथ तरुन अरु बाल |

कोउ कहत बलराम नाहीं श्याम रथ पर एक।

कोउ कहत प्रभु सुर दोऊ रचित बात अनेक।

—सू0सा0 पृ0 646

इतनी आशान्वित उत्सुकता के बाद जब उन्हें ज्ञात होता है कि वस्तुतः कृष्ण नहीं हैं, उद्धव हैं तो वे तत्काल मूर्छित हो जाती हैं। यह मूर्छा कृष्ण के प्रति उनकी गहरी आसक्ति की परिचायक है। उन्हें लगा जैसे स्वप्न में पाया साम्राज्य छिन गया हो।

जबहिं कह्यो ए श्याम नहीं।

परी मुरझि धरणी ब्रजवाला जो जहँ रहीं सु तहीं।

सपने की रजधानी ह्वै गई जो जागी कछु नाहीं।

बारबार रथ और निहारहिं श्याम बिना अकुलाहीं।

—वही

कृष्ण की कुशल पूछते हुए भी उनका कलेजा काँपता रहता है। हर्ष के साथ ही आशंका उन्हें व्याप्त हो जाती है—

पूँछत कुशल नारि नर हरषत आये सब ब्रजवास।

सकसकात तन धकधकात उर अकबकात सब ठाढ़े।

—वही, पृ0 648

सूर की गोपियों में अप्रतिहत अबाध कृष्ण-प्रेम परिलक्षित होता है। कृष्ण के न आने की बात जान कर जो गहरी निराशा उन्हें होती है उसी के भीतर से कृष्ण की पाती में कुछ पा जाने की आशा फूट पड़ती है। आगन्तुक के प्रति जो आशामयी उत्सुकता उनमें उत्पन्न हुई थी वह पाती को देखकर पुनः जग उठती है। कृष्ण के हाथ के लिखे हुए अक्षर पाकर वे उतनी अधिक भावविह्वल हो जाती हैं कि आँसू बहाने के अतिरिक्त प्रिय के संदेश को पढ़ने की भी चेतना नहीं रहती। वे उसे बार बार हृदय से लगाकर आत्मविभोर हो जाती हैं—

निरखत अंक श्याम सुन्दर के बार बार लावत लै छाती।

लोचन जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई श्याम जू की पाती।

—सू0सा0, पृ0 649

संदेश की प्रतिक्रिया— उद्धव के द्वारा कृष्ण का ज्ञान, योग, तपस्या और निर्गुण ब्रह्म की उपसना का क्रूर संदेश पाकर गोपियों के स्नेहाप्लावित हृदय में जो प्रति-क्रिया होती है उसे कवियों ने कहीं स्वाभाविकता के साथ कहीं अतिरंजना के साथ, पूरा विस्तार देकर चित्रित किया है। एक तो यह प्रतिक्रिया अनेकमुखी होती है, दूसरे उतनी ही गंभीर जितनी गंभीर गोपियों की प्रीति है। दोनों ही बातें मानव-मनोविज्ञान के अनुकूल हैं। गोपियों का आक्रोश पहले पहल उन कृष्ण पर होता है जिन्होंने प्रीति करके धोखा दिया और ऐसा संदेश भेजा। भ्रमर को आधार बना कर वे अपना सारा आक्रोश कृष्ण की जैसी लंपटता, चंचलता, स्वार्थपरता, अस्थिर प्रीति तथा क्षणिक रसलुब्धता का बखान करती हुई प्रकारान्तर से व्यक्त कर डालती हैं। फिर वे उन उद्धव पर रुष्ट होती हैं जो ज्ञान का संदेश लाद कर ब्रज लाये। इसके बाद जब वे कृष्ण की आकस्मिक विरति का कारण

खोजती हैं तो उसकी वाग्धारा कुब्जा की ओर मुड़ जाती है और वे कृष्ण और कुब्जा के अवैध एवं अशोभन संबंध की कल्पना करके तीव्र से तीव्र व्यंग्य करने लगती हैं।

संदेश में कही हुई प्रत्येक बात का उन्हें भिन्न ही अर्थ प्रतिभाषित होने लगता है। वे एक के बाद एक प्रहार करके उस संदेश की धज्जियाँ उड़ाने लगती हैं। जिस पाती में संदेश लिख कर भेजा गया और जिसे प्रेम की पाती समझ कर उनका हृदय लहरा उठा था उसे वे पढ़तीं तक नहीं। कुछ कवियों ने इस तीव्र भावात्मक प्रतिक्रया को उसकी गंभीरता के साथ आत्मसात् न करके बौद्धिक रूप दे दिया है परन्तु अधिकतर काव्य में इसका भावात्मक रूप ही प्रकट किया गया है। सूर ने प्रतिक्रिया की गंभीरता तथा उसके बहुमुखी प्रसार की पूरी तरह अभिव्यक्त किया है। अन्य कवियों में इसकी आंशिक अभिव्यक्ति मिलती है। गुजराती तथा ब्रजभाषा के समस्त कृष्ण-काव्य में भ्रमरगीत सम्बन्धी भावनाओं के आलेखन में सूर का स्थान सर्वोपरि है।

सूर की गोपियों का प्रत्येक उद्गार सीधा हृदय से मिश्रित हुआ लगता है | इन उद्गारों में कवि ने सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदन की तीव्र से तीव्र अभिव्यक्ति प्रदान की है। वे कृष्ण के संदेश और संदेशवाहक का जी भर कर परिहास करती हैं, उन पर कठोर से कठोर व्यंग्य कसती हैं परन्तु इस सबके पीछे से उनके हृदय में रह रह कर लहराता हुआ गहरा भाव-समुद्र झलकता रहता है। कवि ने कदाचित् अपने हृदय की तीव्रतम अनुभूति से भ्रमरगीत सम्बन्धी पदों का निर्माण किया है। भाव में डूब कर उसी की कल्पना भावाभिव्यक्ति के अनगिनत प्रकार रचती जाती है जो अन्य कवियों के काव्य में नहीं मिलते।

कृष्ण के प्रति गोपियों का उपालंभ,, व्यंग्य और अनन्य प्रेम— 'यह पाती लै जाहु मधुपुरी जहाँ बसै श्याम सुजाती' कह कर सूर की गोपियाँ संदेश की व्यंग्यपूर्ण उपेक्षा करती हैं। कृष्ण के संदेश पर व्यंग्य करने के साथ ही सूर की गोपियाँ अपने भेजे संदेशों का स्मरण करने लगती हैं। उनका यह सोचना कि हो न हो क्रूर-हृदय कृष्ण ने उनके संदेशवाहक पथिकों को उल्टा-सीधा समझा दिया होगा, अत्यन्त स्वाभाविक लगता है।

सँदेसन मधुबन कूप भरे।

अपने तौ पठवत नँदनंदन हमरे फिरि न फिरे।

जेइ जेइ पथिक हुते ब्रज पुर के बहुरिन शोध करे।

कै वह श्याम सिखाय प्रबोधै कै वह बीच बरे।

—सू0सा0, पृ0 650

भ्रमर के माध्यम से कृष्ण पर आक्षेप करती हुई गोपियाँ सभी काली वस्तुओं को सदोष एवं निकृष्ट घोषित कर देती हैं। इस भाव को गुजराती तथा ब्रजभाषा दोनों में समान रूप से अभिव्यक्ति मिली है क्योंकि इसका मूल सूत्र भागवत को गोपियों के 'तदलमसितसख्यैः' में निहित है। कवियों ने सूत्रनिहित भाव को अधिक तीव्र एवं स्पष्ट करके व्यक्त किया है—

मधुकर यह कारे की रीति।

मन दै हरत परायो सरबस करै कपट की प्रीति।

ज्यों षटपद अंबुज के दल में बसत निशा रति मानि।

दिनकर उए अनत उड़ि बैठे फिरि न करत पहिचानि।

भवन भुजंग पिटारे पाल्यो ज्यों जननी जिय तात।

कुल करतूति जाति नहि कबहूँ सहज सुउसि भजि जात।

कोकिल काग कुरंग श्यामघन हमहिं न देखे भावैं।

सूरदास अनुहारि श्याम की छिनु छिनु सुरति करावैं।

—सू0 सा0, पृ0 677

ख. विलग मति मानहु उधो प्यारे।

वह मथुरा काजर को उबरी जे आवैं ते कारि।

तुम करे, सुफलक-सुत कारे, कोर मधुप भँवारे।

—वही

काले के अन्य अनेक दोष तो उक्त सभी कवियों ने दिखाये हैं, परन्तु वे प्रतिक्षण कृष्ण की स्मृति दिलाते हैं, इस रसमय दोष को सूर की ही अन्तर्दृष्टि ने देखा। साथ ही सारी मथुरा को 'काजर की उबरी' कह कर अक्रूर, उद्धव कृष्ण सब के प्रति व्यंग्य करना भाव की और भी व्यापक अनुभूति का परिचायक है।

इसी प्रकार कुब्जा के साथ कृष्ण के अनुचित एवं अनुपयुक्त संबंध की परिकल्पना करके गोपियों का हृदय आहत और विदीर्ण हो उठता है। आहत-स्नेह व्यक्ति के उद्गारों का जो रूप होता है वह कुब्जा को लेकर लिखे गये पदों में पूर्णतया व्यक्त हुआ है। सूर ने इस भावस्थिति को कुब्जा के मनोभावों का चित्रण करके और भी अधिक सजीव बना दिया है। अपने संदेश में राधा और गोपियों के प्रति वह मृदु कटु दोनों प्रकार के व्यंग्य करके कृष्ण पर अपना स्वत्व प्रदर्शित करती हैं और कृष्ण के ब्रज से विमुख होने का सारा दोष उन्हीं पर मढ़ देती हैं।(वही, पृ0643)

इस प्रकार की भाव-योजना करके सूर ने एक ओर तो कुब्जा को प्राणवत्ता प्रदान की, दूसरी ओर गोपियों के व्यंग्यपूर्ण उद्गारों के लिए अधिक उपयुक्त आधार प्रस्तुत किया जिसकी पृष्ठभूमि में गोपियों की सारी ईर्ष्या, सारा आक्रोश अधिक स्वाभाविक तथा मार्मिक प्रतीत होने लगता है। कृष्ण-काव्य के किसी अन्य कवि ने भावयोजना के क्षेत्र में ऐसी कुशलता प्रदर्शित नहीं की।

सूर की गोपियाँ कृष्ण के प्रति भावातिरेक में तीव्रतम व्यंग्य करती जाती हैं जिनमें कुब्जा, उद्धव तथा उनका योग और निर्गुण सभी आ जाता है परन्तु उसके बाद ही वे अत्यधिक खिन्न शिथिल होकर कभी अपनी त्रुटि खोजने लगती हैं, कभी सीधे-सीधे कृष्ण को कुब्जा के परित्याग की सलाह देने लगती हैं। इस प्रकार सूर ने गोपियों की भावाकुलता के अनेक स्तरों का स्पर्श किया है।।(वही, पृ0665-666)

सूर के काव्य में वे स्थल और भी अधिक मार्मिक हैं जहाँ उन्होंने गोपियों को गंभीर अनन्य अनुरक्ति को अत्यन्त सहज भाव से व्यक्त कर दिया है। गोपियों के सरल तर्क प्रेम की जटिल गति को पूरी तरह प्रकट कर देते हैं—

क- ऊधो मन न भये दस बीस।

एक हुतो सो गयो श्याम सँग, को अवराधे ईस ?

—सू0सा0, पृ0 670

ख- मन में रह्यो नाहिन ठौर।

नंद नंदन अछत कैसे आनिये उर और।

—वही

सूर ने गोपियों की एक अन्य सुकुमार भावना का चित्रण किया है। कृष्ण को देखने वाली आँखों से उन्हें देखनेवाले उद्धव को पाकर वे अपने को कृतार्थ मानती हैं। एक क्षण को उन्हें लगता है कि जैसे कृष्ण ही मिल गये।

ऊधो हम आजु भईं बड़ भागी।

जिन आँखिन तुम श्याम विलोके ते अँखियाँ हम लागी।

जैसे सुमन वास लै आवत पवन मधुप अनुरागी।

ज्यों दर्पन में दर्शन देखत दृष्टि परम रुचि लागी।

तैसे सूर मिले हरि हमको विरह व्यथा तनु त्यागी।

—सू0सा0, पृ0 645

इतने सरल सहज ढंग से गंभीरतम स्नेहानुभूति को कृष्णकाव्य में किसी भी अन्य कवि ने शब्दबद्ध नहीं किया।

नंददास की गोपियों में हृदय की अभिव्यक्ति इतनी स्वाभाविक नहीं हो पाई है, फिर भी एक स्थल पर उनके तर्कों का भोलापन दर्शनीय है—

जो मुख नाहिन हुतौ, कहौ किन माख खायो?

पाइन विन गोसंग कहौ को धन बन धायो?

—नंददास, पृ0 125

सूर ने राधा की मनोदशा को और भी अधिक सुकुमारता से चित्रित किया है। सूर की राधा इतनी भावुक है कि कृष्ण की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए वह अपनी सारी तक नहीं धुलाती—

अति मलीन वृषभानु-दुलारी।

हरि श्रमजल अंतर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी।

—सू0 सा0 पृ0 712

विरहिणी राधा की दशा से उद्धव अभिभूत हो जाते हैं। सूर ने उनके मुख से राधा की दशा का जो भी वर्णन कराया है वह गंभीर विरह की पूर्ण व्यंजना करता है।

चित दै सुनहु श्याम प्रवीन।

हरि तुम्हारे विरह राधा मैं जु देखी छीनं |

कंठ वचन न बोलि आवइ हृदय परिहस भीन।

नैन जलभरि रोइ दीनो ग्रसित आपद दीन।

—सू0 सा0, पृ0 719

4. **पुनर्मिलन**— सुदीर्घ वियोग के पश्चात कुरुक्षेत्र के ब्रजवासियों का कृष्ण से मिलन, भाव की दृष्टि से, अन्यतम घटना है परन्तु सूर और भालण के अतिरिक्त दोनों भाषाओं में कदचित् ही किसी कवि ने इस स्थिति की मार्मिकता का अनुभव किया हो। उसकी सफल अभिव्यक्ति का प्रश्न तो अनुभूति के बाद उठता है। उक्त दोनों कवियों ने भी पुनर्मिलन को विविध भाव-संकुल परिस्थिति का व्यापक चित्रण नहीं किया है। सूर ने राधा और रुक्मिणी के मनोभावों को विशेष अभिव्यक्ति प्रदान की है और भालण ने यशोदा के।

सूर ने रुक्मिणी के हृदय में राधा तथा अन्य ब्रजवासियों के प्रति एक सुकुमार जिज्ञासा-भाव का अंकन किया। अपने प्रिय के कृष्ण विगत जीवन और पूर्वपरिचित ब्रज की गोपियों के संबंध में उसे ममतापूर्ण उत्सुकता होती है। कृष्ण ब्रजवासियों की बात उठते ही भावावकुल हो जाते हैं और उनकी आँखों में जल भर आता है—

रुक्मिणी बूझति है गोपालहिं।

कहै बात अपने गोकुल की कतिक प्रीति ब्रजबालहिं।

कहा देखि रीझे राधा सों चंचल नैन विशालहिं।

तब तुम गाय चरावन जाते उर धरते बनमालहिं।

इतनी सुनी नैन भरि आये प्रेम नंद के लालहिं।

सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै घोष बात जनि चालहिं।

—सू0सा0, पृ0 753-54

'रुक्मिणी मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं' कह कर के रुक्मिणी के आगे भाव-विभोर होकर अपनी जन्मभूमि ब्रज के जीवन की अनेक बातों का गुणगान करने लगते हैं। ब्रज-वासियों से मिलने का आकर्षण उन्हें नंद यशोदा के पास एक दूत भेजने के लिए प्रेरित करता है। कृष्ण की भावना राधा के हृदय में प्रतिध्वनित होती है और उसके अंग अंग फड़क उठते हैं, मन पुलक से भर जाता है और अंचल लहराने लगता है। राधा-कृष्ण की अभिन्न प्रीति इससे पूर्णतया व्यंजित होती है—

माधवजी आवनहार भये।

अंचल उड़त, मन होत गहगह्यो फरकत नैन खये।

—वही, पृ0 754

कृष्ण का भेजा हुआ दूत सब कुछ यशोदा के प्रति ही कहता है। राधा के लिए कृष्ण ने एक शब्द भी नहीं भेजा, फिर भी भावविह्वल होकर राधा ही आँसू बहाती है। उसी के हृदय में सूर से मिलन की उत्कंठा का चित्रण किया है—

राधा नैन नीर भरि आई।

कबधौं श्याम मिलैं सुन्दर सखि यदपि निकट है आई।

कहा करौं केहि भाँति जाउँ अब पेखहि नहिं तिन पाई।

सूर श्याम सुन्दर घन दरसे तन की ताप बुझाई।

—वही, पृ0 755

इस स्थल पर सूर द्वारा यशोदा के मनोभावों की उपेक्षा अवश्य कुछ विचित्र सी लगती है। ब्रजवासियों की मिलनोत्सुकता का जहाँ सामूहिक रूप से चित्रण किया गया है वहाँ यशोदा का भी उल्लेख कर दिया गया है—

नंद यशोदा सब ब्रजवासी।

अपने अपने शकट साजिकै मिलन चले अविनाशी।

—वही

उपेक्षा के स्थान पर यह भी संभव है कि सूर ने यशोदा की अनुभूति की चरम गंभीरता को उसके मौन द्वारा ही व्यंजित करना चाहा हो। यह अनुमान इसलिए होता है कि कृष्ण से मिलने के बाद भी यशोदा सारी घटना के प्रति अचेत एवं विसुध बनी रहती है। उसे अपनी सुध तब आती है जब स्वयं कृष्ण स्मरण दिलाते हैं। यह स्थिति कदाचित् उस जड़ता को ध्वनित करती है जो वियोग की चरम स्थिति है और जिसके आगे मरण ही शेष रह जाता है—

तेरी जीवनमूरि मिलहि किन माई।

महाराज यदुनाथ कहावत तबहिं हुते शिशुकुँवर कन्हाई।

पानि परे भुज धरे कमल मुख पेखत पूरब कथा चलाई।

परम उदार पानि अवलोकत हीन जानि कुछ कहत न जाई।

फिर फिर अब सन्मुख ही चितवति प्रीति सकुच जानी न दुराई।

अब हँसि भेंटहु कहि मोंहि निजजन बाल तिहारो हो नंद दोहाई।

रोम पुलकि गदगद तनु तिहिं छिन जलधारा नैनन बरषाई।

—वही,

राधा-रुक्मिणी के मिलन में सूर ने भी गहरी मार्मिकता उत्पन्न की है। रुक्मिणी में राधा से मिलने की अतीव उत्सुकता दिखाई देती है। रुक्मिणी की यह उत्सुकता द्वारका से ही प्रकट होने लगती हैं और जब वह ब्रजगोपियों के समूह को प्रत्यक्ष देखती है तो वह सब से प्रधान भाव के रूप में व्यक्त हो उठती है। कृष्ण एक नीलवसन वाली गोरी भावमूर्ति की ओर इंगित कर देते हैं।

बूझति है रुक्मिणी पिय इनमें को वृषभानुकिशोरी।

नैक हमै देखरावहु अपनी बालापन की जोरी।

परम चतुर जिन कीन्हे मोहन अलप वैस ही थोरी।

बारे ते जिहि यहै पढ़ायो बुधि बल कल विधि चोरी।

जाके गुण गनि गुथति माल कबहुँ डरते नहिं छोरी।

सुमरिन सदा बसत ही रसना दृष्टि न इत उत मोरी।

वह देखो युवतिवृन्द में ठाढ़ी नीलवसन तनु गोरी।

सूरजदास मेरो मन वाकी चितवन देखि हर् योरी।

—सू0 सा0, पृ0 756

राधा और रुक्मिणी में सहसा गहरी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। दोनों का प्रेम अधिकार-भावना से ऊपर उठकर आत्मसमर्पण के क्षेत्र में पहुँच चुका है इसलिए ईर्ष्या के स्थान पर सहानुभूति का चित्रण ही उपयुक्त है और सूर ने वही किया भी है—

रुक्मिणी राधा ऐसे बैठी।

जैसे बहुत दिनन को बिछुरी एक बाप की बेटी।

एक सुभाव एकलै दोऊ, दोऊ हरिकी प्यारी।

एक प्राण मन एक दुहुन को तनु करि देखियत न्यारी।

निज मंदिर लै गई रुक्मिणी पहुनाई विधि ठानी।

सूरदास प्रभु तहँ पग धारे जहाँ दोऊ ठकुरानी।

—वही, पृ0 756

इसके अनन्तर सूर ने रुक्मिणी के भवन में राधा-कृष्ण की भेंट का वर्णन करना चाहा परन्तु उनकी रसना उस चरम सुख ही अभिव्यक्ति में असमर्थ हो गई किन्तु जितनी पंक्तियाँ उन्होंने लिखी हैं वे व्यंजना की पूर्ण शक्ति रखती हैं—

राधा माधव भेंट भई।

राधा माधव, माधव राधा, कीटभृंग-गति होइ जो गई।

माधव राधा के रँग राचे माधव राधा रंग रई।

माधो राधा प्रीति निरंतन रसना कहि न गई।

विहँसि कह्यो हम-तुम नहि अंतर यह कहि ब्रज पठई।

सूरदास प्रभु राधा माधव ब्रज विहार नित नई नई।

—वही

राधा-कृष्ण-मिलन को अनिर्वचनीयता का आभास देकर भी सूर ने उसका निरूपण कर ही दिया और यही नहीं, मिलन के क्षणों में संकोच के कारण अधूरी तुष्टि की जो कचोट राधा के हृदय में रह गई, उसकी भी अभिव्यक्ति करना वे नहीं भूले। कृष्ण-मिलन के बाद राधा अपनी सखीसे इस मनोदशा को व्यक्त करती है—

करत कछु नाहीं आजु बनी।

हरि आये हौं रहो ठगीसी जैसे चित्त धनी।

आसन हर्षि हृदय नहि दीन्हों कमल कुटी अपनी।

न्यवछावर उर अरध न अंचल जलधारा जो बनी।

कंचुकि ते कुचकलश प्रकट ह्वै टूटि न तरक तनी।

अब उपजी अति लाज मनहिं मन समुझत निजकरनी।

मुख देखत न्यारे सी रहिहौं बिनु बुधि मति सजनी।

तदपि सूर मेरी यह जड़ता मंगल माँझ गनी।

—वही, पृ0 757

कला-पक्ष

कृष्ण-काव्य में दृश्य, स्वभाव एवं प्रकृति-चित्रण

काव्य में जहाँ भावपक्ष की प्रधानता है वहाँ उसके कलापक्ष की भी कम महत्ता नहीं है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र का जितना भी विस्तार है उस सब में कला की गति है। अनुभूति की सीमा से जहाँ भी कोई भाव अभिव्यक्ति की सीमा में पहुँचा वहीं उसे कला की अपेक्षा होती है, भले ही कवि असजग होकर उसका प्रयोग करे अथवा सजग होकर। अभिव्यक्तिपरक अतिशय सजगता कभी-कभी कवि को भाव से विच्छिन्न कर देती है और श्रेष्ठ कला के लिए अनुभूति और अभिव्यक्ति का जो सामंजस्य अपेक्षित है वह नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में कला विकृत होने लगती है और काव्य का प्रभाव भी समुचित रूप में नहीं हो पाता। अन्ततः कला भावाभिव्यक्ति का साधन ही है, साध्य नहीं। यों एक मत उसे साध्य भी मानता है। और इस धारणा के अनुरूप काव्य रचने की परम्परा भी रही है।

भावों के आलेखन, चित्रण एवं अभिव्यंजन में कला की जो सूक्ष्म गति है उसका निदर्शन आवश्यकतानुसार भावपक्ष के निरूपण के साथ ही कर दिया गया है परन्तु दृश्य-चित्रण, स्वभाव-चित्रण, प्रकृति चित्रण और प्रबन्ध-निर्वाह आदि में तथा उक्तिवैचित्र्य और अलंकार-विधान में कला का जो रूप ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत मिलता है उसका निरूपण यहाँ किया गया है।

दृश्य-चित्रण

किसी पुराण अथवा काव्य-ग्रंथ का आधार लेकर काव्य रचने वाले कवि बहुधा जो दृश्य-चित्रण करते हैं उनमें अनुकरणात्मकता तथा परम्परा-परिपालन का इतना आग्रह रहता है कि उसका समुचित प्रभाव उत्पन्न नहीं हो पाता। बहुत कम कवि ऐसे मिलते हैं जो दृश्यों को कल्पना द्वारा पूर्णतया प्रत्यक्ष करके उनका स्वानुभूत रूप में चित्रण करते हैं। प्रत्यक्षीकरण भौतिक रूप में ही न होकर काल्पनिक रूप में भी होता है इसलिए कल्पनाशील कवि भौतिकतया अनुभूत रूप-चित्रों, छायाओं अथवा दृश्यों को भी इस प्रकार प्रस्तुत कर देते हैं जैसे उन्होंने उनका बहुत काल तक उसी रूप में अनुभव किया हो। यह सत्य है कि काल्पनिक प्रत्यक्षीकरण मूलतः यथार्थ जगत् के प्रत्यक्ष अनुभवों पर ही आधारित होता है। भावना कल्पनाशक्ति के द्वारा उसका विकास एवं विस्तार भर कर देती है। कृष्ण-भक्ति-काव्य में दृश्यचित्रण के जो स्थल मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि सामान्यतः कवियों ने परम्परा का पालन और आधारभूत ग्रंथ का अनुकरण दोनों ही काम किये हैं। उनको यह प्रवृत्ति अत्यन्त व्यापक है। परतंत्र कल्पना तथा अनुकरण की प्रवृत्ति को स्पष्ट करने लिए रास का उदाहरण लिया जा सकता है। समस्त कृष्ण-काव्य में रास अतुलनीय महत्व का विषय रहा है। चाँदनी रात में कृष्ण के साथ असंख्य गोपियों के सामूहिक नर्तन का जिस रूप में भागवतकार ने वर्णन किया वह कवियों की भावना और कल्पना दोनों का केंद्र बना। अनेक रूपधारी श्याम वर्ण कृष्ण और असीम सौन्दर्यवती गौरवर्णा गोपियों के अविरल, अविराम नृत्य को आलौकिक शोभा का उन्होंने जहाँ वर्णन करना चाहा वहीं भागवतकार की कल्पना उनकी कल्पना पर छा गई। यह कल्पना-परतन्त्र्य असमर्थता का ही द्योतक नहीं है। कहीं कहीं भागवत में वर्णित दृश्यों एवं रूप-चित्रों के सौन्दर्य का आकर्षण भी इसका कारण प्रतीत होता है। किन्तु यह सत्य है कि दृश्य-चित्रण करते समय प्रायः कवियों ने उपमानों तक के चयन में भागवत का आधार लिया है। 'गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः' में जो रूपचित्र मिलता है वह अनेक कवियों की कल्पना का अंग बन कर व्यक्त हुआ है। निम्न पंक्तियाँ इसका प्रमाण है—

ब्रजभाषा

सूर — मानो माई घन घन अंतर दामिनी।

घन दामिनि दामिनि घन अंतर शोभित हरि ब्रजभामिनी।

—सू0सा0पृ0 437

नंददास— साँवरे पिय सँग निर्त्तत, चंचल ब्रज की बाला।

जनु घनमंडल मंजुल, खेलति दामिनिमाला।

—नंद0 पृ0 177

हरिवंश— रास में रसिक मोहन बने भामिनी।

उभै कल हंस हरिवंश घन दामिनी।

—श्रीहित0 पृ0 34

इसी प्रकार **'मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा'** के रूपचित्र के आधार पर भी कवियों ने रास का दृश्यांकन किया है।(नंददास:नंद0, पृ0176; हरिवंश : श्रीहित चौरासी,पद,71) विविध आंगिक चेष्टाओं, नृत्यमुद्राओं तथा आभूषणों के अनुरणन से उत्पन्न ध्वनियों के सामंजस्य से वैसी ही पूर्णता लाने का प्रयास किया गया है जैसी भागवत के रास-वर्णन में मिलती है।

सूर तथा नंददास जैसे कवियों के आगे भी जिन्होंने रास के दृश्य को पूर्ण तन्मयता के साथ अंकित किया है, भागवत का रास आदर्श रूप में प्रस्तुत रहा है। यद्यपि इन कवियों के रास-वर्णन में स्वतन्त्र उद्भावनाएँ पर्याप्त रूप में मिलती हैं, तथापि उपर्युक्त सत्य भी स्पष्ट रूप से झलकता है।

कवियों की स्वतन्त्र उद्भावनाशक्ति का परिचय उन स्थलों पर विशेष रूप से प्राप्त होता है जो भागवत आदि आधार ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होते अथवा जिन्हें भिन्नता देकर चित्रित किया गया है। इन स्थलों पर समर्थ कवियों में एक दूसरी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं और वह प्रवृत्ति मौलिकता-प्रदर्शन, अननुकरण तथा स्वानुभव के द्वारा आधारभूत वस्तु के अभिनवीकरण की है।

भिन्नता देकर जिन स्थालों पर दृश्य-विधान किया गया है वहाँ इस प्रवृत्ति का पूर्ण प्रस्फुटन तो नहीं हो पाया परन्तु उसका जो भी रूप में मिलता है वह कम महत्वपूर्ण नहीं है।

सूर ने भागवतोक्त दावानल के भयानक तथा उग्र रूप के विस्तार का जो दृश्य अंकित किया है वह उनकी अपनी कल्पना से विकसत हुआ है। वन में अग्नि के प्रचंड रूप धारण करने के समय किस प्रकार की परिस्थिति हो जाती है, इसका सूर ने सूक्ष्म एवं सजीव चित्रण किया है। इस चित्रण में अनुकरणात्मकता के स्थान पर मौलिकता का आग्रह अधिक है—

भहरात झहरात दावानल आयो।

घेरि चहुँ ओर करि शोर अंदोर वन घरणि आकाश चहुँ पास छायो।

बरत बन बाँस, धरहरत कुसकाँस, जरि उड़त है बाँस अति प्रबल वायो |

झपटि झपटत लपट, पटकि फूल फूटत फटि चटकि लट लटकि द्रुम नवायो।

अति अगिनि झार भार धुंधार करि उचटि अंगार झंझार छायो।

बरत बन पात भहरात झहरात अररात तरु महा धरणी गिरायो।

—सू.सा.,पृ.231

गदाधर भट्ट द्वारा कृष्ण के कालीदह में कूदने तथा नाग नाथने का जो दृश्य अंकित हुआ वह भी इसी कोटि में आता है। गति और रूप का सम्यक् आभास देने के लिए कवि ने स्वतन्त्र रूप से अप्रस्तुत योजना की है जिससे प्रस्तुत दृश्य की छवि निखर आयी है—

नचत गोपाल फणि फणा रंगे।

मनहु मनिनील के खंभ ऊपर सिखी नृत्य आरंभ किय अति उतंगे।

प्रथम तरु तुंग चढ़ि झंप यमुना लई, सुभग पटपीत कटि तट लपेटे।

एक घन ते निकसि और घन को चल्यौ श्याम घन मनहुँ चपलाहिं भेंटे।

बहुरि फिरि झगरि चढ़ि सीस तंडव रच्यो परसि पदतलनि मनिरँगु सोहायो।

चरण पट तार विष झार झरहत जतु तैलतप ते कहूँ नीर नायो।

दुसह हरि भार ते कंठ आयो लटकि परसि करै कवि सकल उपमा विचारा।

मनहुं नखचंद्र की चंद्रिका त्रास ते डरपि नीची धँसी तिमिरधारा।

—वाणी0 गदा0, पृ0 32

इस एक ही दृश्य के अन्तर्गत अनेक दृश्यों की श्रृंखला सी परिभासित होती है। कवि का ध्यान नाग-दमन के संघात से आपूरित ओजमय पक्ष पर उतना नहीं है जितना सौन्दर्य-पक्ष पर। इसीलिए उसने सम्पूर्ण दृश्य को कुछ गहरी रेखाओं द्वारा अंकित सौन्दर्यमय रूपचित्रों में परिवर्तित कर दिया है। प्रत्येक रूप चित्र उसकी कल्पना की उर्वरता तथा सौन्दर्यप्रियता का परिचायक है। ऐसा दृश्यांकन कवि के उस स्वाभाव की भी व्यंजना करता है जिसके कारण वह किसी दृश्य-विशेष को भाव का केन्द्र बना कर स्वयं रम जाता है और उसके द्वारा किया हुआ सारा वर्णन अपूर्व आत्मप्रत्यक्षता का बोध कराता है। सूर नंददास आदि में इस प्रकार का दृश्य-विधान प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। उक्त उदाहरण इस बात का द्योतक है कि ब्रजभाषा में यह सामान्य प्रवृत्ति है।

रास सहस्त्रपदी में यह विशेषता और भी अधिक परिलक्षित होती है। कवि ने रूप और ध्वनि के साथ भावों का समास करके चित्र को अद्‌भुत सजीवता प्रदान कर दी है। तन्मयता विस्मृति और प्रेमजन्य विवशता की भावना दधि-मन्थन के इस चित्र को गोपी के आत्ममंथन की अभिव्यक्ति के साथ और भी अधिक मोहक बना देती है। इसकी प्रेरणा संभव है भागवत में वर्णित 10:9:3 दधिमंथन करती हुई यशोदा के चित्र में ग्रहण की गई हो परन्तु दोनों में पर्याप्त भिन्नता है। सूर ने भी इस प्रकार का चित्र प्रस्तुत किया है परन्तु उनका ध्यान नरसी की तरह नादसौन्दर्य पर विशेष रूप से केन्द्रित होकर अंगसंचालन एवं गति पर केन्द्रित हुआ है। भावों के सामंजस्य से सूर का वर्णन भी सजीव हो उठा है—

देख्यो हरि मथति ग्वालि दधि भेद सों ठाढ़ी।

यौवनमदमाती इतराती बेनी दुरत कटि पर छबि बाढ़ी।

दिन थोरी भोरी अति कोरी देखत ही जु श्याम भये चाढ़ी।

कर्षति है दुहुँ करन मथानी शोभाराशि भुजा गहि गाढ़ी।

इत उत अंग मुरति झकझोरति अँगिया बनी कुचलनसो माढ़ी।

सूरदास प्रभु रीझि थकित भये मनहुँ काम सांचे भरि काढी।

—सू0सा0, पृ0 171

पनघट का दृश्य प्रस्तुत करते हुए सूर ने इससे भी अधिक कुशलता से गागर सिर पर रक्खे सखियों के साथ आती हुई एक गोपी की छवि अंकित की है। अप्रस्तुत विधान अत्यन्त समृद्ध है। गज के सादृश्य से गति और उन्माद तथा रूप-सज्जा की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है—

गागरि नागरि लिये पनिघट ते चली घरहिं आवै।

ग्रीवा डोलत लोचन लोलत हरि के चितहि चुरावै।

ठिठकत चलै, मटकि मुँह मोरै बंकट भौंह चलावै।

मनहुँ कामसेना अँगसोभा अंचल ध्वज फहरावै।

गतिगयंद कुचकुंभ किंकिनी मनहुँ घंट झहनावै |

मोतिनहार जलाजल मानौं खुभी दंत झलकावै।

मानहुँ चंद महवत मुख पर अंकुश बेसरि लावै।

रोमावली सूँड़ि तिरनीलौं नाभि सरोवर आवै।

पग जेहरि जंजीरन जकर् यो यह उपमा कछु पावै।

घट जल छलकि कपोलनि किनुका मानहुँ मदहि चुवावै।

बेनि डोलति दुहुँ नितंब पर मानहुँ पूछ हलावै।

गज सरदार सूर स्वामी को देखि देखि सुख पावै।

—सू0 सा0, पृ0 261

ऐसे स्फुट चित्र अपने में पूर्ण होते हुए भी दृश्य को खंड रूप में ही व्यक्त करते हैं। सम्पूर्णता के साथ विविध अंगोपांगों का संश्लिष्ट वर्णन करते हुए दृश्य अंकित करने की प्रवृत्ति पदकारों की अपेक्षा प्रबन्धकारों में अधिक पाई जाती है। इस दृष्टि से ब्रज-भाषा में नंददास तथा गुजराती में प्रेमानंद का विशेष स्थान है। इन

कवियों ने अपने प्रबन्धात्मक काव्यों में दृश्यांकन करते हुए सूक्षम निरीक्षण तथा वर्णन-कौशल का पर्याप्त परिचय दिया है।

स्वाभाव-चित्रण

मानव-प्रकृति की सूक्ष्म विशेषताओं को लक्षित करते हुए कुछ कवियों ने अपने काव्य में मानव-स्वभाव का भी चित्रण किया है। इस क्षेत्र में सूर और प्रेमानंद की विशेष गति है। प्रेमानंद के प्रबन्धों का तो यह असाधारण गुण है जो उनकी लोकोन्मुखी काव्य-चेतना की एक सहज प्रवृत्ति को व्यक्त करता है। रूढ़ि अथवा परम्परा के अनुरूप स्वभाव-चित्रण एक वस्तु है और स्वानुभव के आधार पर जीवन्त रूप में मानव-स्वभाव को चित्रित करना दूसरी। प्रेमानंद और सूर दोनों ही की प्रतिभा दूसरी दिशा में जागरूक रही पर सूर ने स्वभाव की अपेक्षा भाव को अधिक आत्मीयता से व्यक्त किया है और प्रेमानंद ने भाव की अपेक्षा स्वभाव को।

कृष्ण-जन्म के अनन्तर अपने बालक को परघर भेजने वाली देवकी की भावनाओं को प्रेमानंद ने लोकानुरूप अत्यंत स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है। 'मलवा आवशे भाई भोजाई जशोदानो धन सुख दहाडो' में लोकसामान्य स्त्री की चिंता अनुस्यूत है। यशोदा का कुंडी खटका कर, घुँघुरू बजाकर और ऐसे ही अन्य प्रयत्नों से अधिकाधिक रोते हुए कृष्ण को चुपाने का प्रयास माता के स्वभाव को मूर्त कर देता है। इसे क्रिया की स्वाभाविकता कहा जा सकता है—

खखडावे कडां द्वार सांकली, वजाडे घुघुरो मा धई आकली।

सुघाडे पुष्प, देखाडे गाय, तेम तेम वामणो रोतो जाय।

—श्रीम0 भा0, पृ0 249

प्रेमानंद के काव्य से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे स्वाभाविकता के पर्यवेक्षण में उनकी सहज प्रकृति परिलक्षित होती है। बाल-स्वभाव, स्त्री-स्वभाव, लोक-स्वभाव पशु-स्वभाव जैसे स्वभाव-चित्रण के अनेक रूपों में सूर ने भी अपनी सहज गति प्रदर्शित की है। बालस्वभाव की बहुत सी महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख बाललीलाओं के प्रसंग में किया जा चुका है। बालकृष्ण के स्वरूप-विकास और लीलालेखन में सूर ने बाल-स्वभाव में अपनी पैठ का अभूतपूर्व एवं आश्चर्यजनक परिचय दिया है। साथ के ग्वालबालों का खेलत-खेलत कृष्ण को अनेक प्रकार से खिझाना और उनका अपनी माता से बलराम आदि की शिकायत करना बालकों के लोकसामान्य सहज स्वभाव को ही प्रकट करता है। कृष्ण के संस्कारों का जो वर्णन सूर ने किया है वह स्पष्ट ही सामान्य लोक-जीवन के अनुरूप है।

स्त्रियों के स्वभाव का भी सूर ने कम परिचय नहीं दिया है। गोपियों का बात-बात पर उलाहना लेकर यशोदा के घर जाना स्त्रियों की स्वाभाविक वृत्ति को प्रदर्शित करने के लिए ही सूर ने वर्णित किया है। यशोदा और गोपियों के पारस्परिक संवादों में स्वाभाविकता को और भी निखार मिला है। सूक्ष्म पर्यवेक्षण की शक्ति भी सूर में दिखाई देती है। पशुस्वभाव का चित्रण सूरसागर में अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है। चरवाहों के नियन्त्रण में तनिक भी शिथिलता आई कि पशुओं का समूह इधर उधर भटक जाता है। ग्वालबाल कृष्ण को पुकारने के निमित्त नंद के द्वार पर थोड़ा सा रुके कि गायें आगे निकल गई। एक ग्वाल यह देख कर अपने सखाओं को पुकार उठता है—

आवहु वेगि विलम जनि लावहु गैयाँ दूरी गईं।

—सू0 सा0 पृ0 194

'गैयन घेरि सखा सब लाये' लिख कर सूर ने गायों को घेर-घेर कर इकट्ठा करने की विधि का भी संकेत कर दिया है। कभी-कभी यह काम एक समस्या बन जाता है क्योंकि पशु भी अपने साथ ममता दिखाने वाले की इच्छा का ही अनुसरण करते हैं। सूर ने निम्न पद में गायों के स्वभाव की एक बहुत ही सूक्ष्म बात की ओर लक्ष्य किया है। पराये घर से आये हुए पशु सदा ही पूर्व स्मृति के कारण भाग जाने को उत्सुक देखे जाते हैं। इसी आधार पर सूर वृषभानु को दी हुई गायों में भाग जाने की विशेष उतावली प्रदर्शित करते हैं—

द्रुम चढ़ि काहे न टेरहु कान्हा गइयाँ दूर गईं।

धाई जात सबनि के आगे जे वृषभान दईं।

घेरे न घिरत तुम बिन माधवजू मिलत नहीं बादईं।

बिडरत फिरत सकल वन महियाँ एकइ एक भईं।

छाँड़ि खेलि सब दूरि जात हैं बोलौ जोसके थोक कईं।

सूरदास प्रभु प्रेम समुझि कै मुरली सुनत सब आइ गईं।

—वही, पृ0 234

प्रकृति-चित्रण

कोई भी जीवन्त काव्य प्रकृति से पूर्णतया विरत नहीं हो सकता। कृष्ण-काव्य तो और भी नहीं, क्योंकि कृष्ण का वह जीवन जो प्रधानतः काव्य का विषय बना, यमुना के तटवर्ती वनों, पशु, पक्षियों के मधुर रव से मुखरित सघन कुंजों और मुक्त आकाश के नीचे कभी हरियाली बिखेरती हुई, कभी चाँदनी से धोई हुई गोकुल और ब्रज की धरती का निकटता से सम्बद्ध रहा है कि कृष्णलीलाओं का स्मरण आते ही वृन्दावन की कल्पना अपने अलौकिक प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ प्रत्यक्ष हो उठती है। गुजराती तथा ब्रज दोनों के कृष्ण-काव्य में कृष्ण-लीलाओं से अभिन्न इस नैसर्गिक सौन्दर्य को अभिव्यक्ति मिली है। कृष्णभक्त कवियों द्वारा किये गये प्रकृति-चित्रण को सामान्यतः उद्दीपन की कोटि में रक्खा जाता है जो बहुत दूर तक उचित भी है, क्योंकि उनके लिए कृष्ण और उनकी लीलाओं से इतर और कुछ आलम्बन हो ही नहीं सकता था। दार्शनिक दृष्टि से सभी कुछ कृष्णमय तथा कृष्ण के ही स्वरूप का विस्तार माना गया अतएव प्रकृति को स्वतन्त्र आलंबन के रूप में स्वीकार करना उस भावभूमि पर संभव नहीं था जिसमें प्रायः समस्त कृष्णोपासक कवि विचरण करते थे। सूर ने राधा को आदि प्रकृति मान कर प्रकृति को कृष्ण ब्रह्म से अभिन्न स्वीकार किया। पुरूष और प्रकृति की तरह राधा कृष्ण को स्वीकार करने वाले कवियों ने प्रकृति को आध्यात्मिकता के आरोप के साथ कृष्ण से सम्बद्ध करके देखा। यह स्थिति भी प्रकृति को महत्वपूर्ण तो बनाती है पर आलंबन कोटि में नहीं प्रस्तुत करती, दूसरे आदि प्रकृति राधा में प्रयुक्त 'प्रकृति' वन वृक्ष लता रूप में व्यक्त 'प्रकृति' से अर्थ में बहुत कुछ भिन्न है। राधा का समस्त वर्णन प्रकृति-वर्णन की कोटि में नहीं जा सकता। इतना सब कुछ होते हुए भी प्रकृति के आलंबन तथा उद्दीपन रूपों के बीच कोई स्पष्ट सीमा-रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती। वस्तुतः इनसे भिन्न बीच की एक

अन्य स्थिति भी संभव है और जो सगुण-भक्ति-काव्य में उपलब्ध भी होती है। इस विषय के 'प्रकृति और काव्य' के एक विशेषज्ञ का मत उल्लेखनीय है—

"हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में प्रकृति के स्वतन्त्र आलंबन रूप को स्थान नहीं मिल सका। .....परन्तु यह भी देखा गया है कि प्रमुखता न मिलने पर भी प्रकृति मानवीय भावों से सम स्थापित कर सकी है। वस्तुतः जब प्रकृति मानवीय भावों के समानान्तर भावात्मक व्यंजना अथवा सहचरण के आधार पर प्रस्तुत की जाती है, उस समय उसको विशुद्ध उद्दीपन के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। वैसे प्रकृति को लेकर भावप्रक्रिया का आधार मानव है। आलंबन की स्थिति में, व्यक्ति अपनी मनःस्थिति का आरोप प्रकृति पर करके उसे इस रूप में स्वीकार करता है, जब कि उद्दीपन के आलंबन प्रत्यक्ष रूप् से दूसरा व्यक्ति रहता है ऊपर की स्थिति मध्य में मानी जा सकती है। आश्रय का आलंबन परोक्ष में है और प्रकृति के माध्यम से भाव-व्यंजना की जाती है। इस सीमा पर भी प्रकृति पर आश्रय की भावस्थिति का आरोप होता है पर वह किसी अन्य आलंबन की संभावना को लेकर।"(प्रकृतिऔर काव्य,हिंदीखंड;पृ0425 रचयिता: डॉ0 रघुवंश)

कृष्णकाव्य के अन्तर्गत प्रकृति-चित्रण व्यापक एवं विविध रूप में हुआ है और इस सारी व्यापकता एवं विविधता के साथ मानवीय भावों का अद्‌भुत सामंजस्य मिलता है। आलंबन रूप में प्रकृति को न स्वीकार करने पर भी एक विचित्र आत्मीयता से उसका चित्रण किया गया है। उद्दीपन के अन्तर्गत प्रकृति के साथ मानवीय भावनाओं के सम्बंध की इतनी अनेकरुपता उपलब्ध होती है कि उसको संकुचित शास्त्रीय परिभाषाओं में बाँधना कठिन है| कभी कवियों ने भाव को आधार मानकर प्रकृति को उसी के अनुरूप चित्रित किया है और कभी प्रकृति को आधार मानकर भावजगत् में उसकी प्रतिक्रिया का संवेदनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। कभी मानवीयता अथवा मानव-संबंधों का आरोप उस पर किया गया है और कभी उपमानों के रूप में प्राकृतिक सौन्दर्य के अगणित उपादानों को ग्रहण किया गया है। कल्पना का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। कहीं कहीं तो प्रकृति के वास्तविक रूप की नितान्त उपेक्षा करके कल्पना के सहारे अलौकिक रूप-विधान अत्यंत मोहक रूप में रच डाला गया है और भक्तहृदय के सहज विश्वास ने उसे यथार्थ समझ कर कल्पना के आनन्द से भिन्न अलौकिक आनन्द की उपलब्धि भी की।

वृन्दावन का वर्णन कवियों ने प्रायः इसी प्रकार किया है। इनमें अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करने का एक आग्रह देखने को मिलता है। कृष्ण की लीलाभूमि होने के कारण वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया जाना स्वाभाविक भी है। यथार्थ जगत में प्रकृति परिवर्तनशील है, रमणीय के साथ उसका भयानक तथा कष्टकर रूप भी अनुभव में आता है परन्तु कवियों ने वृन्दावन के लिए इन सब दोषों से मुक्त एक आदर्श प्राकृतिक सौन्दर्य का विधान स्वीकार किया है। गौडीय तथा राधावल्लभीय कवियों की भावना के अनुसार वृन्दावन में सदा वसंत ऋतु बनी रहती है। वहाँ की प्रत्येक लता कल्पतरु हैं और प्रत्येक फूल पारिजात है। वहाँ की भूमि विविध वर्ण वाले रत्नों से खचित सुवर्णमयी है। अगणित कुंजो में सप्तवर्णी प्रकाश छाया रहता है। प्रत्येक कुंज के प्रवेश-द्वार पर सहचरियाँ नियुक्त हैं जिनकी संख्या कल्पनातीत है—

इसी सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट की दृष्टि में वह 'योगपीठ' है।

श्री वृन्दावन योगपीठ गोविन्द-निवासा।

तहाँ श्री गदाधर चरन-सरन सेवा की आसा।

—गदा0 वाणी0, पृ0 6

नरसी को भी वृन्दावन के लताद्रुम अनेक वर्णों में प्रतिभासित होते हैं। वस्तुतः उनके लिए वृन्दावन वैकुंठ से भी अधिक सुन्दर है—

मारुं वृन्दावन छे रूडुंरे वैकुंठ नहि आवुं।

—न0 कृ0 का0,पृ0 537

कृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन नंददास के लिए चिद्धन है। वहाँ निरंतर शरद ऋतु रहती है और प्रत्येक रात्रि पूर्ण चंद्र से आलोकित रहती है। सूर और नरसी ने किसी एक ऋतु को नित्य न मान कर वर्षा, शरद् और वसंत आदि सभी ऋतुओं में वृन्दावन को अलौकिक सौन्दर्य से युक्त चित्रित किया है। सारी प्रकृति कृष्ण के रासनृत्य के साथ उल्लास से नाच उठती है। चन्द्रमा थक जाता है, यमुना का प्रवाह उलट कर बहने लगता है, रात्रि असाधारण रूप से षट् मास की हो जाती है।

आराध्य की लीलास्थली के इस अलौकिक वातावरण के साथ कवियों को भावना का इतना तादात्म्य हुआ कि उनके हृदय में वृन्दावन की रज, लता, गुल्म और तृण-तरु सभी के प्रति एक विचित्र आत्मीयता एवं मुग्धता का भाव जाग उठा। ब्रजभाषा के अनेक कवियों में इसकी अभिव्यक्ति मिलती है—

सूर— माधव मोहिं करौ वृन्दावन रेनु।

—सू0 सा0, पृ0 203

हरिराम व्यास—क. वृन्दावन के रूख हमारे मात-पिता सुत- बंधु।

ख. मैदामिश्री मुँह रे मेरे वृन्दावन की धूरि।

—व्यास वाणी, पृ0 2

रसखान— कोटिन के कलाधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं।

प्रकृति के साथ मानवीय सुख-दुख की भावना का समीकरण गोपियों की संयोग और वियोगमयी मनोदशा के चित्रण में विशेष रूप से उपलब्ध होता है। पशुपक्षी और लता-वृक्ष सभी उनकी अनुभूतियों के प्रति सहानुभूति रखते हुए दिखाई देते हैं। गोपियों की कुछ कहना-सुनना होता है तो वे ही उनके सबसे अधिक आत्मीय सिद्ध होते हैं। उन्हीं के माध्यम से वे हृदय की गंभीरतम भावनओं को अभिव्यक्ति करती हैं। दोनों भाषाओं के कवियों ने ऐसे स्थलों पर प्रकृति को विशेष संवेदनीय प्रदर्शित किया है।

संयोग और वियोग दोनों पक्षों में जितनी व्यापकता एवं विविधता से सूर ने प्रकृति का चित्रण किया है वह समस्त कृष्ण-काव्य में दुर्लभ है। सूरदास की गोपियाँ अपनी विरह-विगलित दशा की अभिव्यक्ति के लिए यमुना को माध्यम बनाती हैं परन्तु वे इतने से ही संतुष्ट नहीं होतीं। यमुना को वे अपनी तरह सजीव और विरह-कातर देखती हैं। जिस प्रकार कृष्ण के वियोग ने उन्हें म्लानमना बना दिया है उसी प्रकार यमुना भी उनके विरह-ज्वर से दग्ध होकर और भी काली पड़ गयी है—

देखियत कालिंदी अति कारी।

अहो पथिक कहियो उन हरिसों भई विरह-जुर जारी।

मन पर्यंक ते परी धरणि धुकि तरँग तलफ नित भारी।

तट वारू उपचार चूर जल परी प्रसेद पनारी।

विगलित कच कुच कास पुलिन पर पंक जु काजल सारी।

मन में भ्रमर ते भ्रमत फिरत हैं दिशि दिशि दीन दुखारी।

निशि दिन चकई बादि वकत है प्रेम मनोहर हारी।

सूरदास प्रभु जोई यमुन-गति सोइ गति भई हमारी।

—सू0सा0,पृ0 615

पद के मध्य की पंक्तियों में भाववेग आरोप का रूप ग्रहण कर लेता है। बालू, कास, पंक आदि सब एक भिन्न रूप में प्रतिभासित होने लगते हैं। प्रकृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ-साथ भाव-जगत् की सूक्ष्म अनुभूति का ऐसा साहचर्य सूर के ही पदों में मिलता है। सूर ने उद्दीपन रूप में भी प्रकृति में अद्‌भुत प्राण-प्रतिष्ठा की है किन्तु इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन को केवल उद्दीपन विभाव तक सीमित नहीं रक्खा जा सकता। प्रकृति के प्रति व्यक्त होने वाली रागात्मिका वृत्ति तीव्रता की सीमा पर पहुँच कर उपालंभ से युक्त भावात्मक अनुकथनों के रूप में प्रकट होने लगती है। 'मधुबन तुम कत रहत हरे' तथा 'भाई मेरे मोरउ वैर परे' से प्रारम्भ होने वाले पदों में इसी प्रकार की तीव्र अनुभूति मिलती है।

रास के प्रसंग में भाव-विभोर होकर गोपियाँ वृक्ष-वेलियों, पशु-पक्षियों तक से कृष्ण का पता पूछने लगती हैं। प्रकृति के प्रति ऐसी आत्मतल्लीनता का चित्रण भागवत का आधार लेकर कवियों ने किया है। चन्द्रमा आदि को दूत बनाकर भावाभिव्यक्ति का रूप भी मानवीयकरण की इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। वसंत ऋतु के बाद जिस ऋतु का अत्यंत तल्लीनता के साथ कृष्ण-काव्य में वर्णन मिलता है वह है वर्षा। उमड़ते-घुमड़ते काले-काले बादलों को देखकर सूर की गोपियाँ कभी उन्हें कामदेव के बंधनमुक्त हाथी समझने लगती हैं और कभी उनमें कृष्ण की प्रतिच्छाया देखने लगती है—

क. देखियत चहुँ दिसि ते घन घोरे।

मानहु मत्त मदन के हथियन बल करि बंधन तोरे।

—सू.सा.,पृ.627

ख. आजु घनश्याम की अनुहारि।

उनइ आये साँवरे ते सजनी देखि रूप की आरि।

इन्द्रधनुष मानो पीत वसन छवि दामिनी दशन विचारि।

जनु वगपाँति माल मोतिन की चितवत हितहि निहारि।

गर्जत गगन गिरा गोविन्द मिसु सुनत नयन भरे वारि।

सूरदास गुण सुमिरि श्याम के विकल भयों ब्रजनारि।

—सू0 सा0, पृ0 629

पहले पद में मेघ केवल उद्दीपन की सामग्री है, दूसरे में वे गोपियों को कृष्ण-विषयक आसक्ति के सजीव रूप बन कर कृष्ण के ही सदृश प्रतिभासित होने लगते हैं।

संयोग पक्ष में वर्षा का वर्णन कम मनोरम नहीं हुआ है। बरसते हुए मेघों और तड़पती हुई बिजलियों के बीच कभी हिंडोलों पर राधाकृष्ण को झूलते देखकर, कभी कुंजों में से भीगते हुए आते देखकर कवियों ने एक विचित्र प्रकार के आह्लाद का अनुभव किया जिसकी अभिव्यक्ति दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य में मिलती है; ब्रजभाषा में विशेष रूप से। हिंडोला झूलने के चित्र सूर और नरसी ने प्रायः समान भावात्मकता से अंकित किये हैं परन्तु कुंज- विहार के समय रिमझिम बूँदों के आघात से जो स्नेह-संबंध में नवोन्मेष आ जाता है उसकी अभिव्यक्ति ब्रजभाषा के काव्य में अनुपम रूप से हुई है। श्रीभट्ट द्वारा निम्नलिखित पद में अंकित राधाकृष्ण का भावमय चित्र वस्तुतः अद्वितीय है—

भीजत कुंजन ते दोउ आवत।

ज्यों ज्यों बूँद परत चूनरि पर त्यों त्यों हरि उर लावत।

अति गँभीर झीने मेघनि की द्रुम तर छिन विरमावति।

जय 'श्रीभट्ट' रसिक रस लंपट हिलिमिलि हिय सचुपावत।

—नि0 मा0, पृ0 19

षड्ऋतुवर्णन प्रकृति-वर्णन का रूढ़ स्वरूप रहा है। इस विषय में सूक्ष्मतम सेनापति के काव्य में उलब्ध होती है।

उपमान रूप में तृण, तरु, पर्वत, लता, कमल, भ्रमर, हंस, चकोर आदि प्रकृति की विभिन्न वस्तुओं का उपयोग साहित्य में सदा से होता आया है। कृष्ण का गोपाल रूप आराध्य रूप में मान्य होने से कृष्णभक्त कवियों ने रूढ़ उपमानों के अतिरिक्त नवीन-नवीन उपमान प्रकृति से चुने हैं। सूर ने इस क्षेत्र में विशेष मौलिकता प्रदर्शित की है।

कृष्ण-काव्य में उक्तिवैचित्र्य, अलंकार

विधान एवं प्रबन्ध निर्वाह

प्रबन्धकाव्य की सर्जना पदरचना से भिन्न प्रकार की कला की अपेक्षा रखती है। वस्तु-संयोजन, कथा-कथन तथा भाव-निरूपण सबका सम्यक् रूप से सामंजस्य स्थापित करने के साथ-साथ प्रवाह को अक्षुण्ण रखना आवश्यक होता है। पदकार केवल भावमय अथवा रमणीय स्थलों का चयन करके उन्हीं की अभिव्यक्ति तक अपने को सीमित रख सकता है, पुनरावृत्ति उसके लिए क्षम्य है, परन्तु प्रबन्धकार एक तो भावमय स्थलों के बीच आने वाले इतिवृत्तात्मक नीरस स्थलों की उपेक्षा नहीं कर सकता, दूसरे किसी प्रकार की पुनरावृत्ति प्रबन्ध को सदोष बना देती है। एक ही पात्र की मनस्थिति के आलेखन से उसका दायित्व समाप्त नहीं होता

वरन् उसे अनेक पात्रों की मानसिक अवस्था का संश्लिष्ट चित्रण करना होता है। कथा को विकसित करने के लिए एक जीवन्त वातावरण की सृष्टि करना अनिवार्य है जिसके लिए उसे लोक-जीवन के विविध पक्षों तथा लोकस्वभाव के विविध रूपों से परिचित होना भी आवश्यक है। यह बात नहीं है कि पदकारों को उक्तवस्तुओं के परिज्ञान की अपेक्षा नहीं होती, फिर भी उनका प्रधान उद्देश्य गेय भावाभिव्यक्ति ही होता है। अन्य सब कुछ उसकी पृष्ठभूमि में गौण रूप से स्थित रहता है। परन्तु प्रबन्धकारों को भावनिरूपण के साथ लोकजीवन और लोकचेतना से सम्बद्ध सभी वस्तुओं को पर्याप्त महत्व देना होता है।

नंददास की अनेक रचनाओं में प्रबन्धात्मकता के दर्शन होते है परन्तु आख्यान-शैली का पूर्ण निर्वाह और वास्तविक प्रबन्ध-योजना 'रुक्मिनीमंगल' तथा 'रूपमंजरी' में ही संभव हो सकी है। 'विरहमंजरी' में कथा का अभाव है। 'भँवरगीत' में संवादात्मकता की प्रधानता के कारण प्रबन्ध के अन्य अंगों का विकास नहीं हुआ है। 'श्याम सगाई' और 'सुदामाचरित' अत्यन्त संक्षिप्त रचनाएँ हैं जिनमें कथा की तीव्रता ने कवि को वातावरण और भावों के विकास के लिए अवसर नहीं दिया। 'रासपंचाध्यायी' में अवश्य कथा का पर्याप्त विस्तार एवं स्थिरता है जिससे भावों और दृश्यों का समुचित आलेखन हो सका है। उसमें आने वाले भावपूर्ण स्थलों की समीक्षा भावपक्ष के अन्तर्गत 'रासलीला' के प्रसंग में की जा चुकी है। प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से इन सभी रचनाओं से पूर्वोक्त दोनों रचनाएँ श्रेष्ठ हैं। 'रूपमंजरी' कवि की नितान्त मौलिक कल्पनासृष्टि है। प्रारम्भ में सैद्धान्तिक आधार और वैयक्तिक निवेदन देकर कवि ने आत्मीयता और आध्यात्मिकता का वातावरण रच दिया है जिससे आगे की प्रेम-कथा में अर्थगांभीर्य के साथ ही रूचिरता भी उत्पन्न हो गयी है। संघर्ष और अन्तर्द्वंद्व के अभाव की पूर्ति एक प्रकार से नायिका के यौवनागम, श्रवण और स्वप्नदर्शन से उत्पन्न पूर्वानुराग तथा षट्ऋतु के साथ मानसिक दशा के संश्लिष्ट निरूपण से हो जाती है, क्योंकि इसमें जिस आलंकारिक शैली का प्रयोग किया गया है वह अत्यन्त आकर्षक है। वर्णन प्राचीन काव्य-परम्परा के अनुकूल हैं। नगर-शोभा, प्रेम-विरह तथा यौवनागम के रूढ़िगत वर्णन इसके प्रमाण है।(नंददास:नंद,पृ0 3-6,पृ0145)

कथा की समाप्ति संयोग-सुख सन्तोष की स्थिति का चित्रण करके की गयी है। रुक्मिणी और सुदामा सम्बन्धी काव्य इसको चरितार्थ करते हैं। नंददास के 'रुक्मिणीमंगल' में प्रयुक्त 'मंगल' शब्द सुखान्त की इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। नंददास ने इस काव्य का प्रारम्भ बिना किसी भूमिका के ही कर दिया है किन्तु भावों की योजना प्रारम्भ से ही परिपक्वता धारण करती गयी है। रुक्मिणी की विरह-विह्वल अवस्था का मार्मिक चित्रण नंददास ने किया है। सुदामाचरित के अन्तर्गत सुदामा की दरिद्रता और कृष्ण से उनकी भेंट के चित्रण प्रस्तुत किये गये हैं। ब्रजभाषा में इस सम्बन्ध में नरोत्तमदास का स्थान अद्वितीय है। सुदामा की दरिद्रता की पूरी व्यंजना कवि ने सुदामा को स्त्री के वाक्यों से सफलतापूर्वक करा दी है। 'या घरते न गयो कबहुँ पिय टूटो तयो अरु फूटी कठौती' में निर्धनता के अभिशाप से अभिशप्त एक गृहणी के हृदय की मर्मवेदना समाई हुई है। सुदामा को जीर्ण वस्त्रों से आवृत्त दुर्बल काया का परिचय जब द्वारपाल कृष्ण को देता है उस अवसर पर भी कवि ने दरिद्रता का यथार्थ अंकन किया है—

सीस पगा न झगा तन में प्रभु जाने को आहि बसै केहि ग्रामा।

धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह को नहिं सामा।

द्वार खड्यो दुज दुर्बल एक रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा।

पूँछत दीन दयाल को धाम बतावत आपन नाम सुदामा।

—सुदामाचरित

कृष्ण-सुदामा-मिलन के अवसर पर नरोत्तम ने स्थिति की मार्मिकता को पूरी तरह परखते हुए कृष्ण के मनोभावों का सफल अंकन किया है। कृष्ण के हृदय को उन्होंने अधिक भावुकता से अभिव्यक्ति किया है—

कैसे विहाल बिवाइन सौं भये, कंटक जाल गये पग जोये।

हाय सखा तुम पाये महा दुख, आये इतै न कितै दिन खोये?

देखि सुदामा को दीन दसा करुना करिके करुनानिधि रोये।

पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल सौं पग धोये।

—सुदामाचरित्र

नरोत्तम के काव्य में प्रबन्धात्मकता के साथ मुक्तक काव्य का सौंदर्य भी उपलब्ध होता है। ऐसी दशा में कवि का ध्यान कथाप्रवाह की ओर से हट कर कथाक्रम का अनुसरण करने वाले मुक्तकों को सँवारने में लग जाता है। नंददास का सुदामाचरित प्रबन्ध की दृष्टि से अत्यन्त साधारण काव्य है अतएव उसमें उक्त स्थलों का विकास नहीं मिलता।

उक्तिवैचित्र्य और अलंकार-विधान

जिन कवियों ने अनुवादात्मकता से ऊपर उठ कर मौलिक कल्पना के योग के साथ काव्यसर्जना की है उनकी रचनाओं में बहुधा कला के वैचित्र्यमूलक अथवा चमत्कारवादी स्वरूप् के भी दर्शन होते हैं। सामान्य रूप् से कुछ न कुछ अलंकार किसी के भी काव्य में खोजे जा सकते हैं क्योंकि अलंकार कथन-शैली के ही विविध प्रकार हैं परन्तु कुछ कवियों में उक्ति-वैचित्र्य तथा चमत्कार-प्रदर्शन को मनोवृत्ति अन्तर्निहित होती है जो उनकी तद्विषयक जागरूकता से प्रमाणित होती है। ऐसे कवियों के काव्य में चमत्कारबहुल कलात्मकता का आग्रह अपवाद-स्वरूप न प्राप्त होकर नियमतः मिलता है। ब्रजभाषा में रीतिकालीन प्रेरणा से लिखा गया कृष्ण-काव्य प्रधानतः इसी मनोवृत्ति का परिचायक है। भाव प्रायः उक्ति और चमत्कार-प्रदर्शन का आधार मात्र होकर आये हैं। केशवदास, मतिराम, बिहारी और देव जैसे कवियों का वर्ग का वर्ग लगभग इसी कोटि में आता है। कतिपय भावशील कवियों के भावपक्ष के बीच सामंजस्य स्थापित किया परन्तु ऐसे उदाहरण कम उपलब्ध होते हैं। भक्त तथा आख्यानकार कवियों के द्वारा जो चमत्कारिता का प्रर्दशन यत्र तत्र मिलता है वह एक गौण प्रवृत्ति के रूप में ही है। इनकी उक्तियाँ तथा इनके अलंकार काव्य-वैभव के सहज अंग होकर आये हैं। जागरूकता का निषेध तो सर्वथा नहीं किया जा सकता किन्तु आग्रह अवश्य नहीं मिलता। मौलिकता पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

उक्ति-वैचित्र्य—उक्ति की विचित्रता, अथवा वक्रता बहुत से अलंकारों के मूल में निहित रहती है अतएव उक्ति-वैचित्र्य प्रायः उपमादि अलंकारों के सुनिश्चित रूप में सम्मुख आता है। इस प्रकार की सामग्री 'अलंकार-विधान' के अन्तर्गत आगे प्रस्तुत की गयी है। यहाँ केवल उन्हीं उदाहरणों को लिया गया है जिनमें उक्ति का सहज एवं व्यापक स्वरूप अक्षुण्ण रहा है। कवि की अपनी कल्पना से उद्भूत उक्तियों के अतिरिक्त कुछ रूढ़ उक्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं। नंददास की यौवनवर्णन सम्बन्धी निम्नांकित उक्तियाँ परम्परागत और रूढ़ प्रकार की ही हैं—

क. जुवन राउ जब उर पुर लयौ, सैसव राउ जघन बन गयौ।

अरन लगे जब दोउ नरेसा, छीन पर् यौ तब तिय मधि देसा।

—नंद0, पृ0 5

ख. बालपने पग चंचलताई, जब चलि छबिने नैनन आई।

—वही, पृ0 6

इस प्रकार की रूढ़िमयी उक्तियों का प्रयोग बिहारी आदि रीतिपरम्परा के कवियों द्वारा प्रायः किया गया है। भ्रमरगीत के पाती-प्रसंग में सूर ने विरहाग्नि और अश्रुओं के गुणों की इस प्रकार की उक्ति में संगुफित कर दिया है—

नैन सजल कागज अति कोमल कर अँगुरी अति ताती।

परसे जरै विलोके भीजै दुहँ भाँति दुख भाती।

—सू0 सा0, पृ0 649

सूर में भाव को तीव्रतर बना देने वाली उक्तियों की सृष्टि करने की अद्भुत क्षमता है। काली रात को नागिन कहने के साथ कृष्णपक्ष के बाद शुक्लपक्ष के आने की बात को उक्ति-चमत्कार प्रदर्शित करते हुए जब वे नागिन का डसकर उलट जाना कहते हैं तो कथन में एक विचित्र मार्मिकता आ जाती है—

पिया बिनु नागिन कारी राति।

कबहुँक जामिनि उवति जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जाति।

इसी तरह वंशी सम्बन्धी पदों में सूर ने गोपियों के भावों का अनुपम उक्ति-सौन्दर्य से विभूषित किया है। उनकी उक्तियाँ बाँस को बाँसुरी में प्राण डाल देती हैं—

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।

सुनि री सखी जदपि नंदनंदहि नाना भाँति नचावति।

राखति एक पाँय ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति।

कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु कटि टेढ़ी है आवति।

अति आधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नार नवावति।

आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर कर-पल्लव सन पद पलुटावति।

भृकुटि कुटिल कोय नासा पुट हम पै कोपि कोपावति।

सूर प्रसन्न जानि एकौ पल अधर सु शीश डोलावति।

-सू0 सा0, पृ0 240

इसी प्रकार सूरदास ने आँसू और वर्षा के सादृश्य को लेकर भिन्न प्रकार की उक्ति का निर्माण किया है—

निशिदिन बरषतु नैन हमारे।

सदा रहति वर्षा ऋतु हम पर जबते श्याम सिधारे।

—सू0 सा0, पृ0 620

यह थोड़े से उदाहरण ही दोनों भाषाओं के कवियों की उर्वर कल्पना-शक्ति तथा उक्ति-वैचित्र्य की क्षमता के प्रमाण हैं।

अलंकार-विधान— ब्रजभाषा के रीतिकवियों को छोड़कर कृष्ण-काव्य के अधिकांश रचियताओं की वृत्ति भाव-निरूपण में अलंकरण की अपेक्षा गौण रही है पर जहाँ भी अलंकृति मिलती है वहाँ शब्दालंकारों की तुलना में अर्थालंकारों का प्रयोग व्यापक और सहज रूप में किया गया है।

ब्रजभाषा के पदकारों में गुजराती कवियों की तरह ही वर्ण-मैत्री का आग्रह प्रायः नहीं मिलता। सहज नाद-सौन्दर्य, अकृत्रिम माधुर्यमयी पदयोजना, भाव के अनुरूप शब्द-विधान पद साहित्य के स्वाभाविक गुण हैं। सायास लाये हुए अनुप्रास तथा अलंकार रूप में मिलने वाले श्लेष और यमक के उदाहरण अधिक नहीं है।

नंददास की स्थिति पदकारों से भिन्न है। सानुप्रास वर्णमैत्री से युक्त शब्दायोजना उनका स्वभाव रहा है। उनके काव्य में शब्दों के अलंकरण की यह प्रवृत्ति प्रायः सर्वत्र मिलती है। निम्नलिखित कुछ पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं —

क. द्विज न गयौ फिरि **भवन, गवन** कियौ धरि जु पवन गति।

—नंद0, पृ0 144

ख. **बगर बगर सब नगर**, उड़ी नभ गुड़ी बनी छवि।

—वही, पृ0 145

ग. तब रुक्मिनि कौ **कागर, नागर नेह नवीनौ**।

वसन**छोर** तैं **छोरी** विप्र श्रीधर कर दीनौ।

-वही, पृ0 146

घ. **हरी हरी** यौं दुलहिनि कहि सब लोग पुकारे।

—वही, पृ0 153

वल्लभरसिक ने भी वर्णमैत्री का विशेष आग्रह प्रदर्शित किया है परन्तु उनकी अनुप्रास-प्रियता निरर्थकता की सीमा तक पहुँच गयी है।

इस प्रवृत्ति का चरम रूप ब्रजभाषा के रीतिकालीन कवियों में उपलब्ध होता है। कहीं-कहीं उनमें शब्दालंकारों का आग्रह भावाभिव्यक्ति से भी प्रधान हो गया है, समानान्तर तो वह रहा ही है। इस चमत्कार-प्रियता पर कुछ कवियों ने गर्व प्रकट किया है। सेनापति अपनी कविता की श्लेषमयता का उद्घोष करते हुए लिखते हैं—

कोई है अभंग कोई पद है सभंग, सोधि,

देखे सब अंग सम सुधा के प्रवाह की।

सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई,

जाको द्वै अरथ कविताई निरवाह की।।6।।

—कवित्तरत्नाकर, तरंग 1

उनके 'कवित्तरत्नाकर' को पहली तरंग 'श्लेष तरंग' ही है जिसमें श्लेष के आधार पर ऐस-ऐसे सादृश्य उपस्थित किये गये हैं जिनका भाव से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। सादृश्य का आधार रूप और मनोभाव न होकर चमत्कार-भावना ही है। बिहारी ने भी श्लेष का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है।

चिरंजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर।

को घटि में वृषभानुजा, वे हलधर के वीर।।677।।

—बिहारीरत्नाकर, पृ0 278

समस्त गुजराती कृष्णकाव्य में ऐसा एक भी उदाहरण खोजने पर भी न मिलेगा। देव के निम्नांकित छंद की शब्दव्यंजना का कोई सादृश्य उसमें उपलब्ध नहीं होता—

जब ते कुँअर कान्ह, रावरी कलानिधान,

कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।

तबही ते 'देव' देखी देवता सी, हँसति सी,

खीझति सी रीझति सी रूसति रिसानी सी।

छोही सी छली सी छीनि लीनी सी छकी सी छीन,

जकी सी टकी सी लागी थकी थहरानी सी।

बीधी सी बँधी सी बिसबूड़ी सी विमोहित सी,

बैठी बाल बकति बिलोकति सी।

—भवानीविलास

केशवदास और मतिराम में भी शब्दालंकारो के प्रति पर्याप्त आकर्षण मिलता है। यही नहीं रसखान, ध्रुवदास और माधवदास जैसे सम्प्रदाय-सम्बद्ध कवियों तक में यह अलंकरण-प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है—

रसखान— सेस महेस दिनेस गनेस सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं।

जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं।

ध्रुवदास— पिकबैनी प्रेमावली प्रेमारस में लीन।

परिमल पुन्या पावनी पदमावती प्रवीन।।70।।

—मंडलसभासिंगार

माधवदास— सरस सुढार सार हार गजमोतिन के,

किये हैं सिंगार तन वरन वरन को।

चंचल चपल चपला के भ्रम चैंकि परै,

चाहि चकचौंधी लागे मोहन के मन को।

—मा. वा.,पृ.70

यद्यपि कूटत्व को अलंकरण नहीं कहा जा सकता तथापि प्रधानतः शब्द चमत्कार पर ही आश्रित होने के कारण 'सूरसागर' तथा 'साहित्यलहरी' में उपलब्ध कूट पदों की ओर निर्देश कर देना यहाँ आवश्यक है। सूरदास के अनेक कूट सारंग आदि अनेकार्थी शब्दों पर ही आश्रित है—

सारंग सारंगधरहि मिलावौ।

सारंग विनय करत सारंग सों नारंग दुख बिसरावहु।

—सू0 सा0, पृ0 388

कहीं कहीं शब्द के रूप को विकृत करके उसे समानार्थी बनाते हुए दुरूह कल्पना से कूटत्व उत्पन्न किया गया है जैसे निम्नलिखित पद में 'मांस' और 'मास' तथा 'बीस' और 'विष' को एक अर्थ में ग्रहण किया गया है—

कहत कत परदेसी की बात।

मंदिर अरध अवधि बदी हमसों हरि अहार चलिजात।

शशिरिपु वरष सूररिपु युगवर हरिरिपु किए फिरै घात।

नखत वेद ग्रह जोरि अरध करि बनि आवै सोइ खात।

सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन को कर मीडत पछितात।

—सू0 सा0, पृ0 701-2

सूर ने कूटों की रचना में यमक आदि के अतिरिक्त संख्या तथा सम्बन्ध-वाची शब्दों और रूपकतिशयोक्ति जैसे अर्थालंकारों का सम्यक् प्रयोग किया है। साहित्य-लहरी में यह कूट-शैली और भी अधिक व्यापक रूप में मिलती है।

अर्थ को अलंकृत करने में कवियों ने सादृश्यमूलक अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग किया है, विशेष रूप से उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का। इन अलंकारों में जो अप्रस्तुत योजना की गयी है वह एक ओर परम्परागत कमल, चंद्र, हंस, मीन, गज, केहरि, व्याल आदि उपमानों से समृद्ध है, दूसरी ओर उसमें कवियों द्वारा स्वप्रत्यक्ष सादृश्य को व्यक्त करने वाले अभिनव एवं अपूर्व उपमानों का भी सम्यक् योग है। अनेक कवियों ने अलंकार-विधान में मौलिक प्रतिभा का पर्याप्त परिचय दिया है। उदाहरणस्वरूप नीचे कुछ उपमाएँ प्रस्तुत की जाती हैं जिनकी स्वाभाविकता एवं मौलिकता ने उन्हें विशेष आकर्षक बना दिया है—

सूर— 1. कनक भूमि पर कर पग छाया यह उपमा एक राजत।

कर कर प्रति पद प्रतिमणि वसुधा कमल बैठकी साजत।

—सू0 सा0, पृ0 144

2. अब अंबर एसो लागत है जैसो झूठो थारु।

—वही, पृ0 347

3. जोबन रूप दिवस दसही को ज्यों अँजुरी को पानी।

—वही, पृ0 486

4. सूरदास प्रभु तुम्हरो गवन सुनि जल ज्यों जात बही।

—वही, पृ0 580

5. अब यह शशि ऐसो लागत ज्यों बिनु माखनहिं मह्यो।

—वही, पृ0 584

6. नीरस करि छाँड़ी सुफलक सुत जैसे दूध बिनु साढ़ी।

-वही, पृ0 585

7. सूरदास वा भाइ फिरत हौं ज्यों मधु तोरे माखी।

—वही, पृ0 611

8. देखी माधो की मित्राई।

आई उघरि कनक कलई सी दै निज गये दगाई।

—वही, पृ0 614

9. सुनत लोग लागत हमैं ऐसे ज्यों करुई ककरी।

—वही, पृ0 703

10. बिनु गोविंद सकल सुख सुंदरि भुस पर की सी भीति।

—वही, पृ0 750

नन्ददास— 1. पानी पर पराग परी ऐसी। बीर फुटक भरी आरसि जैसी।

— नन्द, पृ0 3

2. लै चले नागर नगधर नवल तिया कौं ऐसे |

माँखिन आँखिन धूरि पूरि, मधुहा मधु जैसे।

—वही, पृ0 152

3. कहुँ देखियत कहँ नाहिं, बधू बन बीच बनी यौं।

बिजुरिन के से टूक, सघन बन माँझ चलत ज्यौं।

—वही, पृ0 161

माधवदास— बैठि कहा कविता सी करौ सुधि है कछु साँवर के तन की।

—मा0 वा0, पृ0 79

ध्रुवदास— ज्यों ज्यों सर में जल बढ़ै, कमल बढ़ै तिहि भाँति।

ऐसे प्रिय की रुचि बढ़ै निरखि प्रिया तन काँति।

—रतिमंजरी

सेनापति— मान उड़ि जात ज्यों कपूर उड़ि जात है।।36।।

—कवित्तरत्नाकर, तरंग 1

बिहारी— छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अंग।

दीपति देह दुहूनु मिलि, दिपति ताफत-रंग।।70।।

—बिहारीरत्नाकर, पृ0 34

उपर्युक्त उपमाओं में विविधता है, अनेकरूपता है। उन्हें किसी एक वर्ग के अन्तर्गत नहीं रक्खा जा सकता। अधिकतर उपमाएँ रूप-सादृश्य पर आधारित होती हैं जैसे नंददास की कई उपमाएँ उद्धृत की गयी हैं परन्तु रूप के अतिरिक्त गुण, भाव और स्वभाव के अनुरूप भी औपम्य की कल्पना की जाती है। सूरदास की उक्त उपमाओं में यही बात परिलक्षित होती है। वस्तुतः धर्म, जो उपमा का आधार होता है और उपमेय उपमान को एक सूत्र में आबद्ध करता है, अपने में अत्यन्त व्यापक है। कवियों ने उसकी व्यापकता का पूरा लाभ उठाते हुए अपनी अपनी अनुभूति और कल्पना के अनुरूप वस्तु तथा वातावरण की प्रकृति को ध्यान में रखकर उपमानों का कुशलता पूर्वक चयन किया है। सादृश्य को विविध प्रकार से व्यक्त करने तथा अधिक स्पष्ट बनाने के लिए कहीं कहीं उपमाओं की श्रृंखलाएँ भी रच दी गयी हैं जिन्हें शास्त्रीय शब्दावली में मालोपमा की संज्ञा दी गयी है।

सूरदास नंददास आदि ने उत्प्रेक्षा का सर्वाधिक प्रयोग किया है। कहीं वस्तु, कहीं हेतु और कहीं फल की कल्पना करके उत्प्रेक्षा के प्रायः सभी रूपों का व्यवहार किया गया है। उपमा की तरह उत्प्रेक्षाओं की भी श्रृंखलाएँ रच दी गयीं हैं। रीति-परम्परा के कवियों ने नखशिख-वर्णन में उत्प्रेक्षा का प्रचुर प्रयोग किया है। नीचे उत्प्रेक्षाओं के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे कवियों की कल्पना-शक्ति और वर्णन-वैचित्र्य का सम्यक् परिचय मिलता है—

सूर— 1. सूरश्याम किलकत द्विज देख्यो, मानो कमल पर वीजु जमाइ।

—सू0सा0, पृ0 139

2. भाल विशाल ललित लटकनमनि बालदशा के चिकुर सुहाए।

मानो गुरु शनि कुज आगे करि शशिहि मिलन तय के गण भाए।

उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पटपीत उढ़ाए।

नील जलद पर उडगन निरखत तजि सुभाउ मनौ तडित छपाए।

—वही, पृ0 143

3. सूरश्याम लोचन जल बरसत जनु मुकता हिमकर ते।

—वही, पृ0 179

4. नैनमीन मकराकृत कुंडल भुजवल सुभग भुजंग।

मुकुतमाल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिए संग।

मोर मुकुट मणिगण आभूषण, कटि किंकिनि नखचंद।

मनु अडोल वारिधि मैं बिंबित राका उडुगणावृन्द।

वदनचन्द्र मंडल की शोभा अवलोकनि सुख देत।

जनु जलनिधि मधि प्रगट कियो शशि श्री अरु सुधा समेत।

—वही, पृ0 237

5. रतन जटित पग सुभगपाँवरी, नूपुर ध्वनि कल परम रसाल।

मनहुँ चरणकमलदल लोभी निकटहि बैठे बालमराल।

—वही, पृ0 347

6. चंदन चरचित कुच उर उपटित मननु नवघन में उदित दोउ शशि।

—वही, पृ0 476

7. केसरि आड़ लिलाट हो बिच सेंदुर को विदु।

चक्र तजे ता नैन मृग जनु बैठो रथ इंदु।

—वही, पृ0 490

8. बाँह उँचाइ जोरि जमुहानी ऐंड़ानी कमनीय कामिनी।

भुज छूटे छबि यों लागी मनो टूटि भई द्वै टूक दामिनी।

—वही, पृ0 498

9. तुम सों प्रेमकथा को कहिबो मनहुँ काटिबो घास।

—वही, पृ0 700

नंददास—1. कंज कंज प्रति पुंज अलि गुंजत इमि परभात।

जनु रवि डर तम तजि भज्यो, रोवत ताके तात।

—नंद,पृ03

2. नवला निकसति तीर जब नीर चुवत बर चीर।

असँवन रोवत बसन जनु तन विछुरन की पीर।

—वही, पृ0 6

3. और विहंगम रंग भरे बोलत हिय हरहीं।

जनु तरवर रस भरे परस्पर बातें करहीं।

—वही, पृ0 145

4. अरुन चरन प्रतिबिम्ब अवनि मैं यों उनमानी।

जनु धर अपनी जीभ धरति पग कोमल जानी।

—वही, पृ0 151

5. कछु रुकमिनी चलि आई हरि लै रथ बैठाई।

घन ते बिछुरी बिजुरी, मनौ घन मैं फिरि आई।

—वही, पृ0 152

हरिवंश— अंस अंस बाहु दै किशोर जोर रूप रासि,

मनौ तमाल अरुझि रही सरस कनक बेलि।।17।।

—श्रीहित0 चै0, पृ0 8

श्रीभट्ट— पलक-पलक मानो अलिन नलिन पै प्रात मुदित हित पंख पसारे।

अंजन-अमिल रेख इषद लखि बसि नागिन मानो खंजन गारे।

—नि0 मा0 पृ0 15-16

हरिराम व्यास— याही तैं माई कुचनि के ओर भये कारे।

ये पिय के नैननि मैं बसत, इनमें पिय के तारे।

—व्या0 वा, पृ0 489

ध्रुवदास— 1. जमुना को छवि कहा कहौं तहाँ न आनँद थोर।

मनहुँ ढर् यो सिंगार रस करि प्रबाह चहुँ ओर।।9।।

—मंडलसभासिंगार

2. नासापुट मुकता फब्यो चितै रहे दृग द्वंद।

भाजन भरि तन झलकि परी मनो रूप की बुंद।।36।।

—वही

मतिराम— स्वेद के बूँद लसे मन मै रति अंत रही लपटाय गुपालहिं।

मानो फली मुकुताफल पुंजन हेमलता लपटानी तमालहिं।।319।।

—रसराज

केशव— मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनौ सनि अंक लिए।

बिहारी— मकराकृत गोपाल कैं सोहत कुंडल कान।

धर् यो मनौ हिय-धर समरु, ड्यौढ़ी लसत निसान।।103।।

—बिहारीरत्नाकर

देव— भाल गुही मुकुतालर माल, सुधाधर मैं मनौ धार सुधा की।

—भावविलास

ब्रजभाषा-काव्य में मिलने वाली उत्प्रेक्षाओं के समक्ष गुजराती काव्य की उत्प्रेक्षाएँ सरल, असंश्लिष्ट तथा अनूहात्मक हैं। ब्रजभाषा के कवियों ने अपने उत्प्रेक्षण में सूक्ष्मता, सुकुमारता, संश्लिष्टता एवं ऊहात्मकता का विशेष परिचय दिया है। सूर और नंददास की उत्प्रेक्षाओं में रूपछायाओं के अद्भुत वैभव के साथ उक्ति-वैचित्र्य का अपूर्व आग्रह मिलता है। सूर, केशव, बिहारी आदि कवियों ने कहीं कहीं वर्ण-सादृश्य के आधार पर ग्रहों को उत्प्रेक्षण का साधन बनाया है जिससे उनके ज्योतिष-ज्ञान का अभास मिलता है।

ब्रजभाषा-काव्य में कल्पना का आलंकारिक स्वरूप् बहुत अधिक विकसित हुआ। कहीं कहीं यह वृत्ति गूढ़ और दुरूह भी हो गयी है किन्तु अधिकतर भाव, रूप, वर्ण आदि के सादृश्य का पूर्ण निर्वाह हुआ है।

ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य के साधारण रूपकों के अतिरिक्त सांगरूपकों का विशेष आग्रह मिलता है। सूर ने इस क्षेत्र में अद्भुत क्षमता प्रदर्शित की है। यह सत्य है कि रूपक का अत्यधिक विस्तार कभी-कभी विरसता का भी संचार करने लगता है परन्तु सूर के कतिपय सांगरूपकों में कल्पना और भाव का विचित्र संयोग हुआ है। उनके कुछ अतिविस्तृत रूपकों में जटिलता, दुरूहता और नीरसता भी आ गयी है। ध्रुवदास आदि अन्य अनेक कवियों ने रूपक-रचना में विशेष कौशल प्रदर्शित किया है। निम्नांकित उदाहरण प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

सूर- 1. माधव जू नेक हटकौ गाइ।

निशि वासर यह भरमति इत उत अगह गही नहिं जाइ।

क्षुधित बहुत अघात नाहीं निगम द्रुम दल खाइ।

—सू0सा0, पृ0 8

2. अब मैं नाच्यों बहुत गुपाल।

काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।

महामोह को नेपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल।

भरमभये मन भयो पखावज चलत कुसंगत चाल।

तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल।

माया को कटि फेंटा बाँध्यों लोभतिलक दियो भाल।

—वही, पृ0 19

3. विरहबन मिलन सुधि त्रास भारी।

नैन जल नदी पर्वत उरज येई मानो सुभग बेनी भई अहिनि कारी।

नैनमृग श्रवन बनकूप जहँ-तहँ मिले, भ्रम गली सघन नहिं पार पावै।

सिंह कटि व्याघ्र अंग-अंग भूषन मनो दुसह भय भार अतिही डरावै।

—वही, पृ0 386

4. तुम्हारो गोकुल हो ब्रजनाथ।

घेर् यो है अरि चतुरंगिनि लै मन्मथ सेना साथ।

गर्जत अति गंभीर गिरा मन मैगल मत्त अपार।

धुरवा धूरि उड़त रथ पायक घोरन की खुरतार।

चपला चमचमाति आयुध बग-पंगति ध्वजा अकार।

परत निसाननि घाव तमकि घनु तरपत जिहि जिहि बार।

मारैमार करत भट दादुर पहिरे बहु बरन सनाह |

—वही, पृ0 628

इनके अतिरिक्त सूर ने 'देखौ माई सुन्दरता को सागर' तथा 'साँचो सो लिखवार कहावै, से प्रारम्भ होने वाले पदों में रूपक के अंग-प्रत्यंगो का बहुत विस्तार किया है। ऐसे विस्तृत रूपकों में उन्होंने कहीं-कहीं उत्प्रेक्षादि अलंकारों का अन्तर्भाव कर लिया है अर्थात प्रधान भूमिका तो रूपक की रही है परन्तु उसके अंगों का सादृश्य निरूपित करने में उत्प्रेक्षादि का आश्रय लिया गया है। सूर के अतिरिक्त अन्य भक्त कवियों ने भी रूपक-रचना की व्यापक इस प्रवृत्ति का सम्यक् परिचय दिया है जो निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट है—

गदाधर भट्ट— 1. आज कहूँ ते या गोकुल में अद्भुत बरखा आई हो।

मणिगण हेमहीर धारा की ब्रजपति अति झर लाई हो।

बानी वेद पढ़त द्विज दादुर हिये निरखि हरियारे हो।

दधि घृत नीर क्षीर नाना रंग बहि चले खार पनारे हो।

आनन्दभरी नाचत ब्रजनारी पहरे रंग रंग सारी हो।

बरन बरन बादरन लपेटी विद्युत न्यारी न्यारी हो।

—वाणी, पृ0 11

2. जो मन स्याम-सरोवर न्हाहि।

बहुत दिनन को जर् यो बर् यो तूँ, तबही भले सिराहि।

नयन बयन कर चरन कमल से, कुंडल मकर समान।

अलकावली सिवाल जाल तहँ भौंह मीन मो जान।

—वही, पृ0 25

माधवदास— माली नव मदन तरुनी तन अलबाल,

जतन जुगुति सों जोबन बीज बयौ है।

उपज्यौ है अंकुर सनेह को सरस अति,

सुरति के मेह सों सुनति सरसयौ है।

मूल प्रतिकूलता सुमन फूल फूलि रहयौ,

हावभाव पल्लव सघन छाँह छयौ है।

मधुरते मधुर लग्यो है एक मान फल,

सोई जाने सुख जिन लोभी रस लयौ है।।35।

—मानमाधुरी

ध्रुवदास ने शतरंज, चौपड़ आदि को लेकर विचित्र रूपकों की सृष्टि की है जिनमें भाव की अपेक्षा काव्य-कौतुक अधिक है—

मन नृप मंत्री चोंप सों रुचि कीनी रुख चाल।

उरज गयंद तुरंग दृग पायक अंगुली लाल।।12।।

—हित0 सिंगारलीला

सखियन तलप बिसांत बनाई। कहि न जाइ सोभा कुछ भाई।98।।

पासे नैन कटाछनि ढारै। हावभाव रँग-रँग की सारै ।।99।।

—नेहमंजरी

नरसी और ध्रुवदास ने स्त्री-शरीर की कल्पना सफल लता के रूप में की है और मुस्कान को फूल कह कर सादृश्य का खूब निर्वाह किया है—

ध्रुवदास— कोमल कुंदन बेलि मनु सींची रंग सुहान।

मुसकनि लागे फूल फल उरज भरे अनुराग।।20।।

—रतिमंजरी

इस तरह की रूपक-रचना ब्रजभाषा के रीतिकाव्यो में भी उपलब्ध होती है । उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के अतिरिक्त रूपकातिशयोक्ति, संदेह, दृष्टान्त आदि अन्य सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग भी दोनों भाषाओं के काव्य में मिलता है परन्तु प्रधानता पूर्वोक्त अलंकारों की ही रही है। रूपकातिशयोक्ति को सूर ने सर्वोत्तम रूप में प्रस्तुत किया है| उनके पास उपमानों का अशेष कोष रहता है जिसकी सहायता से उनकी कल्पना अभूतपूर्व वैभव के साथ रूपचित्र रचती है | रूपातिशयोक्ति सूर के समृद्ध अलंकरण का एक अंश मात्र है। सूर ने इस अलंकार का प्रयोग अपने पूववर्ती पदकार विद्यापति की परम्परा में किया है।

सूर- अद्‌भुत एक अनूपम बाग।

युगल कमल पर गज क्रीडत है, तापर सिंह करत अनुराग।

हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फले कंज पराग।

रुचिर कपोत बसे ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग।

फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर शुक पिक मृग मद काग।

खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मणिधर नाग।

—सू0 सा0, पृ0 390

सूर ने दानलीला के अंतर्गत तथा कूटों में इस अलंकार का और भी चमत्कारिक प्रयोग किया है जिसका संकेत प्रसंगानुसार किया जा चुका है |

'संदेह' सम्बंधी तुलनात्मक स्थिति निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है—

ब्रजभाषा

सूर— 1. राधे तेरे नैन किधौं मृगवारे |

2. राधे तेरे नैन किधौं री बान |

3. राधे तेरे नैन किधौं बटमारे |

—सू0सा., पृ0508

नंददास— किधौं नीलमनि किंकिनि माही, रोमावलि तिहि जोति की छाँही |

किधौं लटी कटि दिखि करतारा, रोमधार जनु धर् यो अधारा |

—नंद0 पृ0 7

संदेह का प्रयोग कवियों ने कवि-कल्पित विविध रूप-छायाओं तथा भाव-व्यंजक उपमानों को लेकर किया है | इनमें रूप-सादृश्य के साथ उक्ति-वैचित्र्य पर अधिक बल है |

भालण— रीसावी रहेवा नव दीजे, कोमल तन करमाये |

बीजां बृक्ष रहे सिंच्या विना, जुइवेली सूकाये |

—द0स्कं0 ,पृ0 120

प्रेमानंद— मुंआं वच्छनां चर्मने माटे, गाय प्रीते दूझे रे |

मोटां वच्छ ने शृंगे मारे, सगपण कांइ न सूझे रे |

—श्रीम0 भा0,पृ0 316

सूरदास तथा नंददास आदि ने 'दृष्टांत' अलंकार का भी पर्याप्त कुशलता से प्रयोग किया है | इन कवियों का लक्ष्य भी कथन को सशक्त, प्रभावमय एवं सुंदर बनाना रहा है—

सूर— तेरो बुरो न कोई मानै |

रस की बात मधुप नीरस सुनि रसिक होई सो जानै |

दादुर बसै निकट कमलनि के जन्म न रस पहिचानै |

अलि अनुराग उड़त मन बाँध्यो कही सुनत नहिं कानै |

सरिता चली मिलन सागर को कूल सबै मद्रु भानै |

कायर वकै लोभ ते भागै, लरै सो सूर बखानै |

—सू0 सा0, पृ0 700

नंददास— प्रेम एक, इक चित्तसौ एकहि संग समाइ।

गंधी कौ सौदौ नहीं जन जन हाथ बिकाइ।

—नंद0, पृ0 17

सादृश्यमूलक अलंकारों के अतिरिक्त जिन अलंकारों का कृष्ण-काव्य में सफल प्रयोग हुआ है उसमें 'प्रतीप' तथा 'अत्युक्ति' विशेष उल्लेखनीय है।

प्रतीप का प्रयोग रूप-वर्णन के प्रसंग में अधिक किया गया है—

सूर— 1. कंज खंजन मीन मृग शावकनि डारति वारि।

भ्रकुटि पर सुरचाप वारत तरनि कुंडल हारि।

—सू0 सा0, पृ0 355

2. राधे तेरे रूप की अधिकाइ।

शशि उर घटत, हेम, पावक परि, चंपक कुसुम रहे कुम्हिलाइ।

इभ तूटत अरु अरुण पंक भए विधिना आन बनाइ।

कद्रुज पैठि पताल दुरे रहि खगपति हरिवाहन भए जाइ।

हंस दुर् यो सर दुर् यो सरोरुह गज मृग चले पराइ।

सूरदास विचार देखि मन तोर रसन पिक रही लजाइ।

—वही, पृ0 513

नंददास— मृगज लजे, खंजन भजे, कंज लजे छवि छीन।

दृगन देखि दुख दीन ह्वै, मीन भए जल लीन।

—नंद0, पृ0 6

हरिराम व्यास— निरुपम राधा नैन तुम्हारे।

अंजन छवि खंजन मद गंजन मीन पानि दूरि हारे।

निशि शशि डरत पंकचकुल सुकुचत वधिकनि मृगज विडारे।

—व्या0 वा0, पृ0 241

उक्त उद्धरणों को देखने से ज्ञात होता है कि ब्रजभाषा में 'प्रतीप' अत्यन्त समृद्ध एवं श्रृंखलाबद्ध रूप में प्रयुक्त हुआ है।

'अत्युक्ति' का व्यवहार विरह-सम्बन्धी वर्णन में विशेष रूप से हुआ है जो निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है। कवियों ने विरह-ताप और विरह-दौर्बल्य को लेकर विविध प्रकार की अत्युक्तियों का सृजन किया है जिनमें ऊहा का पुट लगभग समान रूप में मिलता है। रीति-कवियों ने उसे अस्वाभाविकता की सीमा पर पहुँचा दिया—

सूर— 1. कर अँगुरी अति ताती।

परसे जरै .....

—सू0 सा0, पृ0 649

2. गनतहि गनत गईं सुनि सजनी अँगुरिन की रेखे।

—वही0, पृ0 679

नंददास—1. लिखी विरह के हाथन पाती अजहूँ ताती।

—नंद0, पृ0 147

2. उपजि विरह दुख दवा अवा उर पात तये हैं।

कोउ हार के मोतिया, तचि तचि लाल भये हैं।

—वही, पृ0 143

बिहारी— औंधाई सीसी सुलखि बिरह-बरनि बिललात।

बिच हिं सूखि गुलाब गौ, छीटी छुई न गात।।217।

—बिहारीरत्नाकर, पृ0 91

देव— हाथ उठाया उड़ाइबे को, उड़ि काग गरे परीं चारिक चूरी।

—भवानीविलास

ब्रजभाषा कृष्ण काव्य में छन्द विधान

छंद-विधान प्रायः काव्य-शैली के अनुरूप ही हुआ है। काव्य की तीन प्रमुख शैलियों मिलती हैं—

1. आख्यान-शैली
2. पद-शैली
3. मुक्तक-शैली

आख्यान-शैली का प्रधान गुण वर्णनात्मकता है और पद-शैली की प्रधान विशेषता, गेयता। गुजराती के आख्यान-काव्यों में भी गेयता का पर्याप्त योग रहा है जो रागों के संकेत से स्पष्ट ज्ञात होता है। प्रथम दोनों शैलियों का अनुसरण गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कवियों ने किया है परन्तु अन्तिम मुक्तक-शैली का व्यवहार जिस रूप में ब्रजभाषा के रीतिकारों ने किया है, गुजराती में उपलब्ध नहीं होता। ब्रजभाषा में पद-शैली की प्रधानता है और गुजराती में आख्यान-शैली की।

कवियों ने इन शैलियों का परस्पर सम्मिश्रण भी किया है और स्वतन्त्र अनुसरण भी। यह सम्मिश्रण बहुधा कवि की आन्तरिक प्रेरणा तथा भावानुभूति के समानान्तर हुआ है। मुख्यतया पद-शैली में रचना करने वाले सूर जैसे कवि ने भी कथा-क्रम का कुछ न कुछ निर्वाह किया है और आवश्यकता के अनुसार बीच बीच में

आख्यान-शैली को भी अपनाया है। ध्रुवदास तथा माधवदास आदि ने आख्यान-शैली को भी अपनाया है। ध्रुवदास तथा माधवदास आदि ने आख्यान-शैली के साथ मुक्तक-शैली का सम्मिश्रण कर दिया है। नरोत्तमदास ने तो कथा-कथन में मुक्तकों का ही आद्योपान्त व्यवहार किया है। नंददास में अवश्य शैलीगत मिश्रण नहीं मिलता। उन्होंने दोनों शैलियों को पृथक् पृथक् व्यवहृत किया है।

वास्तव में पद भी एक प्रकार का मुक्तक ही है परन्तु गेयता-प्रधान होने के कारण उसे मुक्तक से भिन्न स्वतन्त्र रूप में स्वीकार किया जाता है।

आगे इन शैलियों के अन्तर्गत आने वाले छंदों पर पृथक पृथक् विचार किया गया है और अन्त में रागों की तुलनात्मक स्थिति भी पृदर्शित कर दी गयी है।

1. आख्यान-शैली

गुजराती में आख्यान रचना 'कडवां' बद्ध रूप में हुई है।

कडवां के सामान्य रीति से तीन अंग होते हैं। प्रारंभ में दो-चार पंक्तियों का एक 'मुखबन्ध' आता है। मुखबन्ध के समाप्त होने पर कडवां की व्यापक 'देशी' आती है। इन देशियों में 'ढाल' नामक रचना अथवा किसी अन्य प्रकार की देशी का समावेश होता है और अंत में व्यापक देशी की समाप्ति पर उपसंहार की तरह 'वलण' अथवा 'उथली' का प्रयोग किया जाता है। यह वलण या उथलो पूरे होते हुए कडवां का उपसंहार करने तथा आगामी कडवां की वस्तु की सूचना देने के लिए आता है। कडवांवद्ध शैली का प्रयोग करते हुए भी कवियों ने भिन्न भिन्न शब्दों का व्यवहार किया है। यथा पद ढाल, पूर्व छायु, चूपै आदि। ये छंदों के नाम हैं। ब्रजभाषा में न तो इन शब्दों का प्रयोग हुआ है और न कडवांबद्ध शैली का ही व्यवहार हुआ है। दोहा-चौपाई की शैली अवश्य मिलती है जिसका कडवांबद्ध शैली से पर्याप्त साम्य भी है और अन्तर भी। साम्य इस प्रकार कि चौपाइयों की एक निश्चित संख्या के बाद दोहे के प्रयोग किये जाने से बीच की चौपाइयों का रूप ऊपर और नीचे के दोहे के साथ कडवों जैसा ही हो जाता है परन्तु अन्तर यह है कि दोहों का प्रयोग साधारण क्रम से होता है, मुखबन्ध और वलण के रूप में नहीं। नंददास की रूपमंजरी, विरहमंजरी तथा दशमस्कंध इसी ढंग की रचनाएँ हैं। ध्रुवदास और माधवदास की अनेक रचनाओं में दोहा-चौपाई के ऐसे ही क्रम का अनुसरण किया गया है। गुजराती आख्यान-काव्यों में भी दोहा-चौपाई अथवा इन्हीं से निर्मित या इसी जाति के छंदों का विशेष व्यवहार हुआ है।

छंद की दृष्टि से आख्यानों के दो प्रमुख भेद हो सकते हैं। एक तो वे आख्यान अथवा वर्णनात्मक काव्य जिनमें किसी एक ही छंद का प्रयोग हुआ हो, दूसरे वे काव्य जिनमें मिश्रित छंद-प्रणाली या अनेक छंदों का प्रयोग किया गया हो। प्रथम प्रकार के काव्यों में ब्रजभाषा की कई रचनाएँ आती हैं। नंददास की गोवर्धनलीला तथा सुदामाचरित और सूर की अधिकांश वर्णनात्मक लीलाओं में चौपाई छंद प्रयुक्त हुआ है। नंददास की रुक्मिणीमंगल, रासपंचाध्यायी तथा सिद्धान्तपंचाध्यायी केवल रोला छंद में लिखी गयी है। इसी तरह ध्रुवदास की दानविनोदलीला, सुखमंजरी, आनंदलता, रसरत्नावली जैसी अनेक कृतियों में दोहे का ही व्यवहार हुआ है। ध्रुवदास तथा माधवदास ने बहुधा मिश्रित छंद-प्रणाली का अनुसरण किया है। नरोत्तम के सुदामाचरित ने भी अनेक छंद प्रयुक्त हुए हैं।

आख्यान-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उनका स्वरूप

दोहा— दोहा अथा 'दूहा' का प्रचुर प्रयोग मिलता है। भीम, केशवदास तथा संत ने गुजराती में 'पूर्वछायु' अथवा 'पूर्वछायो' नाम से जिस छंद का व्यावहार किया है वह दोहा ही है। वस्तुतः पूर्वछाया शब्द का अर्थ वह छंद है जो पहले की पंक्ति की छाया लेकर लिखा जाय। ब्रजभाषा में दोहे का व्यवहार गुजराती से भी अधिक व्यापक रूप में मिलता है। दोहे के अन्त में 9 या 10 मात्राओं की एक लघु पंक्ति जोड़ कर एक विशेष प्रकार की गेयात्मकता उत्पन्न करने का प्रमाण दिया गया है जो चरणों के बीच में गेयात्मक शब्द रखने से भिन्न कोटि की वस्तु है। सूर, नंददास और हरिराय द्वारा दोहे के इस विशिष्ट प्रयोग के निम्नांकित उदाहरण दर्शनीय है—

सूर- एहि मग गोरस लै सबै, दिन प्रति आवहिं जाहिं।

हमहिं छाप देखरावहू, दान चहत कहि पांहि।

कहत नंदलाडिले।

—सू0सा0,पृ0320

नंददास— प्रेमधुजा, रसरूपिनी, उपजावति सुखपुंज।

सुंदर श्याम विलासिनी, नववृन्दावन कुंज।

सुनौ ब्रजनागरी |

—नंद, पृ0 123

हरिरायजी— गोवर्धन के शिखर ते, मोहन दीनो टेर।

अति तरंग सों कहत है, सो ग्वालिनि राखी घेर।

नागरि दान दे।

हरिरायजी के दोहे में 'सो' का गेयात्मक समावेश अपवाद स्वरूप हुआ है। नंददास ने दोहे को रोले के साथ संयुक्त करके तब उसके अंत में 10 मात्राओं के गेय लघु अंश का योग किया है जिससे उनकी छंद-योजना में अधिक विशेषता आ गयी है।

साधारणतया दोहा और साखी पर्याय रूप में ही ग्रहण किये जाते हैं। संतकाव्य की परम्परा इसकी साक्षी है और साखी नामक कोई स्वतंत्र छंद होता भी नहीं।

चौपाई, चौपई— कविओं ने वर्णानात्मक प्रसंगों में मुख्यतया प्रयुक्त 16 मात्रा की चौपाई और 15 मात्रा की चौपई के बीच कोई अन्तर प्रदर्शित नहीं किया है। गुजराती में 15 मात्रा की 'चौपई' का अधिक व्यवहार हुआ है जिसके अन्त में एक गुरु, एक लघु का प्रायः निर्वाह हुआ है। कहीं अन्त में लघु के बाद गुरु भी मिलता है जिससे चौपाई छंद चौबोला छंद में परिणत हो जाता है। ब्रजभाषा में 16 मात्राओं की चौपाई अधिक व्यवहृत हुई है पर कवियों ने 16 मात्रा के अन्य छंदों पद्धरि, डिल्ला, उपचित्रा, पज्झटिका, पादाकुलक आदि से उसका कोई भेद नहीं किया है।(छंदप्रभाकर, पृ.47-51) प्रायः चौपाई के अन्तर्गत 16 मात्रा के छंदों के

सभी रूपों का व्यवहार हुआ है। यही नहीं 15 मात्रा की चौपाई और चौबोला को भी चौपाई से पृथक नहीं रक्खा गया है। 16 मात्रा का छंद 'अरिल्ल' 21 मात्रा के प्लवंगम छंद का पर्याय भी है।(वही, पृ.55-56) ब्रजभाषा में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जैसा कि हरिवंश की स्फुटवाणी, ध्रुवदास की मानलीला और मनिसिंगार से विदित होता है। पिंगलशास्त्र के अनुसार अरिल्ल के अन्त में दो लघु भी रह सकते हैं और यगण भी आ सकता है।

अरिल्ल की तरह पद्धरि भी पादाकुलक का एक भेद है जिसके अंत में जगण होना आवश्यक है। कहीं कहीं गुरु को लघु करके पढ़ने की आवश्यकता होती है। बिना व्यवधान के 16 और 15 मात्राओं में विविध छंदों का परस्पर जो सम्मिश्रण मिलता है उसके भी उदाहरण आवश्यक है।

सूर — व्रतपूरण कियो नंद कुमार, युवतिन के मेटे जंजार। —चौबोला।

जप तप करि अब तन जिनि गारो, तुम घरनी मैं भर्ता तुम्हारो —चौपाई।

अंतर शोच दूरि करि डारहुँ, मेरो कह्यो सत्य उर धारहु। —अरिल्ल।

सू0सा0 पृ0 253

नंददास— गोपरहे सब जोहे, मोहे, जानहिं नहिंन कछु हम को है। —चौपाई ।

गोपी चकित चाहि कै ताहि, कहन लगीं कि रमा यह आहि।—चौपाई।

अपने पिय कौं देखति डोलति, यातैं नहिं काहू सौं बोलति। —अरिल्ल।

लरिकन लहित लहित छबि छई, नंद के सुन्दर मंदिर गई । —चौबोला।

—नंद0, पृ0 221-222

ध्रुवदास — श्री हरिवंश हिये जो आनै, ताको वह अपनो करि जानै।।97।।चौपाई।

यह रस गायो श्री हरिवंश, मुक्ता कौन चुगै बिनु हंस।।98।।चौपाई।

रसद रहस्य मंजरी भई, छिनछिन जोति होति है नई।।99।। चौबोला।

—रहस्यमंजरी

गाथा और वस्तुबन्ध—ब्रजभाषा में वर्णानात्मक काव्य में तो काव्य में तो किसी कवि ने इन दोनों छंदों का प्रयोग नहीं किया, परन्तु हितहरिवंश के शिष्य सेवक जो के स्फुट काव्य में यह 'गाथा' और 'गाहा' दोनों नामों से अन्य छंदों से संयुक्त एवं मिश्रित रूप में उपलब्ध होता है— (श्रीहित चौरासी सेवक वाणी, पृ0 64, 88)

ब्रजभाषा में प्रयुक्त गाथा छंद के उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि इसका कोई निश्चित रूप नहीं रहा है। कवियों ने इसे तुकान्त से युक्त कर दिया है। अपभ्रंश में भी गाथा का कोई सुनिश्चित रूप नहीं रहा। यह एक सामान्य नाम था जो बाद में तीस, बत्तीस मात्राओं की चरणान्तप्रास-हीन द्विपदी के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगा।(प्रा0 गु0 छं0,पृ0105)

सोरठा—सोरठे में काव्य-रचना माधवदास, ध्रुवदास, सेवक आदि अनेक कवियों ने की है। रीति-कवियों ने भी इसका व्यवहार किया है। सोरठा के पहले गुजराती में दूहा शब्द का बराबर प्रयोग हुआ जिससे ज्ञात होता है कि इसे दोहे का ही एक भेद समझा गया है।

छप्पय— वर्णानात्मक काव्य में माधवदास ने इसका व्यवहार किया है और स्फुट काव्य में हरिवंश, तत्ववेत्ता, रसिकदेव, सेवक और पीतांबर ने। तत्ववेत्ता का यह सर्वाधिक प्रिय छंद है। सोरठे की तरह ही इसके स्वरूप में भी कोई अन्तर नहीं मिलता।

रोला— नंददास ने अपने आख्यान काव्य में इसका सर्वाधिक प्रयोग किया है। अन्य कवियों में सूर, वल्लभरसिक और गदाधर इसके प्रयोक्ता रूप में उल्लेखनीय हैं।

कुंडलियाँ— ब्रजभाषा में ध्रुवदास ने रहसिलता, प्रेमावली और निर्तविलास आदि अनेक वर्णानात्मक रचनाओं में इसका व्यवहार किया है तथा हरिवंश और सेवक ने स्फुट काव्य में।

गीतिका— इस छंद का व्यवहार ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में अपवाद-स्वरूप ही हुआ है और सूर की निम्नांकित वर्णानात्मक पंक्तियों में—

मकर कंडल जटित हीरा लाल शोभा अति बनी।

पन्ना पिरोजा लगे बिच बिच चहूँ दिस लटकत मनी।

—सू0 सा0, पृ0 733

यहाँ हरिगीतिका और गीतिका की पंक्तियों का मिश्रण हो गया है क्योंकि पहली पंक्ति 28 मात्राओं की ही और दूसरी 26 की।

सवैया (मात्रिक)— यह 31 मात्रा के वीर छंद का ही दूसरा नाम है। गुजराती पिंगलकार 32 मात्रा के सवैया का भी परिचय देते हैं। पहले प्रकार के सवैया का प्रयोग गुजराती में केशवदास ने और दूसरे प्रकार के सवैये का प्रयोग ब्रजभाषा में सेवक ने किया है।

चांद्रायण— 11 जगणान्त और 10 रगणान्त अर्थात् कुल 21 मात्राओं के इस छंद का व्यवहार ब्रजभाषा में सूरसागर के अन्तर्गत सूर ने तथा रहसिलता के अन्तर्गत ध्रुवदास ने किया है। सूर ने इसको स्वतन्त्र रूप में व्यवहृत न करके 'रोला दोहा' से संयुक्त छंद के पूर्व स्थान दिया है।

सरसी और सार— चौपाई की 16 मात्राओं के बाद दोहे के सम चरण की 11 मात्राओं के योग से 27 मात्रा के सरसी छंद का निर्माण होता है। सरसी के अन्त में रहने वाले एक गुरु और एक लघु वर्ण के स्थान पर यदि दोनों वर्ण गुरु कर दिये जायँ तो वही 28 मात्रा का सार छंद हो जाता है। सरसी और रासक का साम्य सवैया के प्रसंग में निर्दिष्ट किया जा चुका है। सूरसारावली जैसी सम्पूर्ण रचना कुछ पंक्तियों को छोड़ कर आद्योपांत सार और सरसी छंद में ही लिखी गयी है।

झूलणा— गुजराती कृष्णकाव्य में यह नरसी मेहता का सर्वप्रिय छंद रहा है और ब्रजभाषा में सूर ने कतिपय वर्णानात्मक प्रसंगों में इसे प्रयुक्त किया है—

सूर — झिरकि कै नारि दै गारि गिरिधारि तब पूछ पर लात दै अहि जगायो।

उठ्यो अकुलाइ डरपाइ खगराइ को देखि बालक गरब अति बढ़ायो।

—सू0 सा0, पृ0 220

अंत में यगणा के साथ 10, 10, 10, 7 के क्रम से यति और मात्राओं का विधान हिंदी के पिंगलकारों ने झूलना के लिए आवश्यक माना है। वैसे 20, 17 मात्राओं के यतिक्रम वाले ठीक ऐसे ही छंद की संज्ञा हंसाल दी गयी है। सेवक ने ठीक उसी जाति 'करखा' नामक छंद का प्रयोग अपने काव्य में किया है।

त्रोटक अथवा तोटक— इस छंद का प्रयोग ब्रजभाषा और गुजराती में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न रूप में हुआ। हिंदी के पिंगलकारों के मत से यह वर्णिक वृत्त है जिसमें चार सगण होते हैं। ब्रजभाषा-कृष्णकाव्य में कदाचित् सेवक ने ही इसे प्रयुक्त किया है—

पहिले हरिवंश सुनाम कहौ, हरिवंश सुधर्मिनी संग लहौ।

हरिवंश जु नाम सदा तिनके, सुख संपति दंपति जू जिनके।

—श्रीहितचौरासी सेवकवाणी, पृ0 67

2. पद-शैली

पदों की रूपरेखा— किसी भी गेय पद्यरचना को पद कहा जा सकता है। यह सबसे व्यापक शब्द है। ब्रजभाषा में यह अपेक्षाकृत निश्चित स्वरूप की रचनओं के लिए आया है जिनमें अधिकतर टेक या ध्रुवा का होना आवश्यक है। वस्तुतः पद अनेक जाति के होते हैं। कुछ ध्रुवा-रहित और कुछ ध्रुवा-सहित। दोनों प्रकार के पद उपलब्ध होते हैं। सूरदास ने भी टेकरहित पदों की रचना की है। अन्य कई पदकारों ने दोनों तरह के पद रचे हैं। कुछ पद अत्यन्त लम्बे होते हैं और कुछ अत्यन्त लघु।

ध्रुवा और ध्रुवा-सहित पद— टेक या ध्रुवा एक स्थायी गेय पंक्ति अथवा पंक्ति-समूह के रूप में मिलता है। गुजराती कवियों ने प्रायः एक द्विपदी और उससे सम्बद्ध एक लघु किन्तु विशेष गेयतायुक्त पंक्ति को ध्रुवा बनाया है।

वहाँ पदों के साथ दीर्घ और विविध प्रकार के ध्रुवा अथवा ध्रुवक देने की परिपाटी प्राचीन रही है। ब्रजभाषा में ऐसी ध्रुवाओं का व्यवहार नहीं हुआ है। श्रीभट्ट तथा हरिव्यासदेव जैसे कुछ पदकारों ने अपने प्रत्येक पद के पहले एक दोहा रक्खा है जो टेक की पंक्ति से भिन्न रहता है अतएव गुजराती ध्रुवाओं से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। एक पंक्ति की छोटी टेक का व्यवहार ब्रजभाषा के पदों में बराबर हुआ है।

ध्रुवा के अतिरिक्त पदों के शेष अंश में स्वतन्त्र चरणान्तप्रास वाली द्विपदियों का विधान हुआ है। जिन पदों में ध्रुवा नहीं होती उनमें भी द्विपदियों का ही विधान मिलता है। कभी कभी यह द्विपदियाँ ध्रुवा के तुक की एक स्वतन्त्र पंक्ति देने के बाद रक्खी गयी हैं। ब्रजभाषा के पदों में ऐसा अधिकतर मिलता है। बहुत से पद ऐसे भी मिलते हैं जिनमें द्विपदियों के स्थान पर ध्रुवा के साथ तुक का निर्वाह करने वाली तथा उसी के समान गतिवाली अपेक्षाकृत दीर्घ पंक्तियों का विधान किया गया है। द्विपदियों अथवा इन पंक्तियों की संख्या को निर्धारित करने में कवि पूर्णतया स्वतन्त्र रहे हैं। प्रायः यह निर्धारण वस्तु और भाव के अनुरूप हुआ है।

पद—शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उनका स्वरूप

पदों में केवल मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है। वर्णिक छंद तो कहीं अपवाद रूप में ही मिलते हैं जिन पर आगे मुक्तक-शैली के प्रसंग में विचार किया गया है। मात्रिक छंदों में अधिकतर वही प्रयुक्त हुए हैं जिनका निरूपण किया जा चुका है जैसे दोहा, चौपाई, सवैया, गीतिका, सार, सरसी, झूलना आदि। पद रचना इन्हीं की जाति के तथा और भी अनेक मात्रिक छंदों के संयोग से हुई है।

विष्णुपद— 16, 10 के क्रम से 26 मात्रा तथा अंत में गुरु वर्ण वाले विष्णुपद नामक छंद का पद-रचना में प्रचुर प्रयोग हुआ है—

मीरां— चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।

कबकी ठाढ़ी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी।

—मी0 प0, पृ0 5

सूर— मुनि वशिष्ठ पंडित अति ज्ञानि, रचि रचि लग्न धरै।

तात मरन सियहरन राम बन-वपु धरि विपति भरै।

—सू0सा0, पृ0 27

हरिवंश—विचलै श्याम घटा अति नौतन ताके रंग रसी।

एक चमकि चहुँ ओर सखी री अपने सुभाय लसी।

—हि0 चौ0, पद 55

रेखांकित स्थलों पर गुरु को लघु अथवा लघु को गुरु करके पढ़ना होता है। उक्त कुछ उदाहरण ही पद-साहित्य में इस छंद की व्यापकता के प्रमाण हैं।

सार और सरसी— इन छंदों का परिचय दिया जा चुका है। पद-साहित्य में यह छंद भी विष्णुपद की ही तरह अत्यन्त व्यापक रूप में मिलते हैं। एक मात्रा के अन्तर से छंद-परिवर्तन तो हो जाता है पर गति प्रायः वैसी ही रहती है। यति अनिवार्यताः 16 मात्राओं के बाद आती है।

मीरां— 1. ऊभी ठाढ़ी अरज करतहूँ, अरज करत भयो भोर।

मीरां के प्रभु हरि अविनासी, देस्यूँ प्राण अकोर।

—मी0 प0, पृ0 2

2. साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू, लोक लाज तजि नाची।

गई कुमति लई साधु की संगति भगत रूप भई साँची।

—वही,पृ.7

सूर— 1. ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।

तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो।

—सू0सा0, पृ0 176

2. अति कृश गात भई ए तुम परम दुखारी, गाइ।

जल समूह वरषति दोउ आँखैं हूँकति लीने नाउँ।

जहाँ तहाँ गोदोहन कीनो सूँघति सोइ ठाउँ।

—वही, पृ0 711

ताटंक—सारा छंद के अंत में यदि एक गुरु वर्ण रख दिया जाय तो वह 30 मात्राओं का ताटंक बन जाता है। इसका व्यवहार कम हुआ है।

मीरां— नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमी जन को जाचूँगी।

प्रेम प्रीत की बाँधि घूँघरू, सुरत की कछनी काछूँगी।

—मी0प0, पृ0 6

झूलना, हरिप्रिया आदि दीर्घ छंद— ब्रजभाषा और गुजराती के पद-साहित्य में दीर्घ छंदों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। झूलना ऐसे छंदों में सर्वप्रमुख है। इसका भी परिचय दिया जा चुका है। नीचे सूर और हरिवंश के कुछ पदांश प्रमाण रूप में उद्धृत किये जाते हैं—

सूर— घेरि चहुँ ओर करि शोर अंदोर बन धरणि आकाश चहुँ पास छायो।

बरत वन बाँस धरहरत कुस काँस जरि उड़त हैं बाँस अति प्रबल वायो।

—सू0सा0, पृ0 231

हरिवंश —वदन जोति मनो मयंक, अलकतिलक छवि कलंक,

छपति श्याम अंक मानौ जलद दामिनी।

विगत वास हेमखम्भ मनों भुवंग बेनीदंड,

पिय के कंठ प्रेम पुंज कुंज कामिनी।

—हि0 चौ0, पद 80

हरिवंश की तरह सूर ने इससे भी दीर्घतर छंद हरिप्रिया का प्रयोग किया है। इस छंद में 12, 12, 12, 10 के क्रम से 46 मात्राएँ होती है। हरिवंश द्वारा प्रयुक्त छंद के चौथे चरण में दस के स्थान पर आठ मात्राएँ हैं—

जागिये गुपाल लाल, आनंदनिधि नंदबाल,

यशुमति कहै बार बार भोर भयो प्यारे।

नैन कमल से विशाल, प्रीति वापिका मराल,

मदन ललित वदन ऊपर कोटि वारि डारे।

—सू0 सा0, पृ0 158

कुंडल और उड़ियाना— 22 मात्राओं के इस छंद में 12, 10 के क्रम से यति का विधान होता है और अन्त में दो गुरु वर्णों का होना आवश्यक माना जाता है। गुजराती की अपेक्षा ब्रजभाषा के पद-साहित्य में इसका व्यवहार अधिक मिलता है—

सूर— नासिका लोचन विशाल, संतत सुखकारी।

सूरदास धन्य भाग्य, देखत ब्रजनारी।

—सू0 सा0, पृ0 140

मीरां— मुरली कर लकुट लेऊँ, पीतवसन धारूँ।

काछी गोप भेष मुकुट, गोधन सँग चारूँ।

—मो0 प0, पृ0 62

जहाँ कहीं अन्तिम गुरु वर्ण के पहले गुरु वर्ण न आकर लघु वर्ण आया है वहाँ यह छंद उड़ियाना नाम से अभिहित किया जाता है जो कुंडल का ही एक उपभेद है। उदाहरण के लिए सूर की निम्नांकित पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

नंद जू के वारे कन्हैया छाँड़ि दे मथनियाँ।

बार बार कहे मात यशोमति रनियाँ।

—सू0 सा0, पृ0 149

उपमान, शोभन और रूपभाला—उपमान में 13, 10 का मात्रा-क्रम तथा अंत में गुरु वर्ण होते हैं, रूपमाला में 14, 10 के मात्रा-क्रम के साथ अन्त में एक गुरु और एक लघु। यदि रूपमाला के अंत में जगण हो तो वही शोभन छंद हो जाता है। ब्रजभाषा की तुलना में गुजराती में यह छंद बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं। ब्रजभाषा में सूर और मीरां आदि के कुछ पदों में यह व्यवहृत हुआ है। मीरां की उद्धृत पंक्तियाँ उपमान छंद की लगती है।

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोइ।

3. मुक्तक-शैली

मुक्तक-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उसका स्वरूप

मुक्तक-शैली में दोहा, सोरठा, कुंडलिया, छप्पय के अतिरिक्त मनहरण, घनाक्षरी और वर्णिक सवैया का प्रयोग विशेष रूप से हुआ। पहले चार छंदों का परिचय आख्यान शैली के छंदों के अन्तर्गत दिया जा चुका है। मुक्तक-शैली के कवियों ने इनमें कोई छंदगत भेद प्रस्तुत नहीं किया, प्रत्येक छंद में वर्ण्य- वस्तु की पूर्णता के कारण ही यह मुक्तक बन जाते हैं।

मनहरण और घनाक्षरी— यह वर्णिक छंद है जिनमें 8, 8, 8, 7 तथा 8, 8 8, 8, एवं 8, 8, 8, 9 का यति-क्रम रहता है। अन्तिम 333 वर्णों की घनाक्षरी देवघनाक्षरी कहलाती है और 32 वर्णो वाली रूप घनाक्षरी। सवैया गणानात्मक वृत्त है जिसके मत्तगयंद आदि अनेक भेद होते हैं। मनहरण और घनाक्षरी में ह्रस्व और दीर्घ का कोई भेद ही नहीं रहता। सवैया में छंद-शास्त्र की दृष्टि से यह भेद रहता तो है पर ब्रजभाषा और गुजराती दोनों में ही, गति के अनुसार, दीर्घ को ह्रस्व पढ़ने की प्रथा मिलती है। इन छंदों का व्यवहार गुजराती कृष्ण-काव्य में नहीं हुआ । सवैया का व्यवहार ब्रजभाषा में केशवदास, मतिराम, देव, सरसदेव, नागरीदास, माधवदास, वल्लभरसिक, ध्रुवदास, नरोत्तमदास, आलम, रसखान, हरिवंश और सेवक द्वारा हुआ है। इसी तरह मनहरण को केशवदास, मतिराम, देव, सूरदास, मदनमोहन नरोत्तमदास, रसखान, ध्रुवदास, सेवक, वल्लभरसिक, सरसदेव तथा सेनापति ने व्यवहृत किया है। सेनापति ने सवैया का व्यवहार किया ही नहीं। ध्रुवदास तथा माधवदास ने मनहरण और सवैया को अपने वर्णानात्मक काव्यों में स्थान दिया है। घनाक्षरी में देव जैसे कुछ ही कवियों ने काव्य-रचना की है। मनहरण कवित्त का कुछ रूप सूर और मीरा के पदों में भी परिलक्षित होता है। कवियों ने प्रायः 8, 8, 8, 7 के यति-क्रम का अनुसरण न करके 16, 15 पर यति का निर्वाह किया है। कुछ ने उसमें भी शिथिलता दिखाई है।

आन्तर-प्रास—कवियों ने कतिपय छंदों में यति के साथ अनुप्रास का निर्वाह किया है। दूसरे शब्दों में यह आन्तर-प्रास आन्तर-यति के समानान्तर मिलता है | यह लम्बे छंदों में विशेष रूप से मिलता है। 'प्राकृत पैंगलम्'' तथा 'छंदोनुशासन' से ऐसे अनेक छंदों का परिचय मिलता है जिनमें आन्तर-प्रास एवं आन्तर-यमक का विधान नियम रूप में होता है। अपभ्रंश-काव्य इसका प्रमाण है। यह आन्तर-प्रास कभी अन्त्यानुप्रास जैसा मिलता है और कभी यमक के रूप में यति के पूर्वापर अंशों को श्रृंखलाबद्ध करता हुआ। दूसरी स्थिति में उसे आन्तर-यमक की संज्ञा दी गयी है। नंददास ने रोला छंद में कहीं अनुप्रास और कहीं यमक की ग्रंथि दी है—

1. कृपा रंग रस **अयन, नयन** राजत रतनारे।

—नंद0, पृ0 155

2. जो जनमन **आकरषत, वरषत** प्रेम सुधा रस।

—वही, पृ0 156

3. तब कही श्री **सुकदेव देव** यह अचरिज नाहीं।

—वही, पृ0 162

4. तैसिय पिय की **मुरली, जुरली** अधर सुधारस।

—वही, पृ0 164

उक्त छंदों में आन्तर-प्रास होते हुए भी चरणान्त-प्रास का स्वाभाविक रूप में निर्वाह किया गया है पर गुजराती में कुछ छंद ऐसे मिलते हैं जिनमें केवल आन्तर-प्रास का ही विधान है। चरणान्त-प्रास या तुक उनमें प्रायः नहीं मिलता। ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में इस तरह का तुकान्तहीन कोई छंद प्रयुक्त नहीं हुआ है। तुकान्त के विधान में आन्तर-प्रास की तरह ही शिथिलता दोनों भाषाओं में दिखाई देती है। उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के तुक पाये जाते हैं। हरिप्रिया, झूलणा आदि छंदों में आन्तर-प्रास का विधान मिलता है।

सूर ने तीनों यतियों का प्रास-युक्त बनाने का प्रयास किया है जिसके अपवाद भी मिलते हैं। पद-शैली के छंदों में झूलना के जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें सूर की विशोषता देखी जा सकती है। दो यातियों में प्रास का निर्वाह हरिवंश ने भी किया है।

रागों का निर्देश—मुक्तक-शैली में तो नहीं किन्तु आख्यान-शैली और पद-शैली के काव्यों में रागों का निर्देश बराबर मिलता है। ब्रजभाषा के आख्यान-काव्यों में रागों का उल्लेख नहीं मिलता पर गुजराती में प्रायः सर्वत्र प्राप्त होता है। ब्रजभाषा के पदों के साथ मुख्यतया निम्नोक्त रागों का उल्लेख मिलता है। कल्पदुम, काफी, विभास, विलावल, टोडी, आसावरी, धनाश्री, वसंत, देवगंधार, सारंग, मलार, गौड़, गौरी, कल्यान, कान्हरो, केदारो, नट, कमोद, जयति श्री, भूपाली, गूजरी, मारू, मालव, चौतारो, विहाग, भैरव, कल्याण, अडानौ, श्रीराग, प्रभाती, भैरवी, देस, मालकोस, ईमन, खम्माच, हमीर, पंचम, रामकली, हिंडोरा, धमार आदि। इनमें संगीत की दृष्टि से राग-रागनियों तथा ताल-स्वर सभी पर आधारित नाम हैं जिनका स्वतन्त्र अध्ययन अपेक्षित है।

इन रागों का छंद के साथ कोई अभिन्न सम्बन्ध रहा हो, ऐसा नहीं लगता। एक ही राग के अन्तर्गत विभिन्न छंद प्रयुक्त हुए हैं और एक ही छंद विभिन्न रागों से निर्दिष्ट हैं। अतएव रागों का निर्देशन गेयता को ही प्रमाणित करता है। संभव है, मात्रा और गति के सम्बन्ध की सामान्य त्रृटियों के मूल में संगीतात्मकता भी एक कारण हो परन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से बिना स्वतन्त्र विवेचना के कुछ नहीं कहा जा सकता।

ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का भाषा-विन्यास

साहित्य में भावाभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम होने के कारण भाषा अपना स्वतन्त्र महत्व रखती है। शिथिल एवं असमर्थ भाषा सुन्दर भाव को प्रभावहीन बना देती। इसके विरूद्ध सशक्त एवं समर्थ भाषा साधारण भाव में भी विलक्षणता उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होती है। श्रेष्ठ काव्य वस्तुतः भाव और भाषा दोनों के श्रेष्ठ सामंजस्य से उद्‌भूत होता है। भाषा की इस शक्ति और सामर्थ्य का बहुत बड़ा आधार शब्द-भंडार होता है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी भाषा-शक्ति का सहज परिचायक होता है। अतएव यहाँ ब्रज के कृष्ण-काव्य में प्रयुक्त भाषा का, उसके शब्द-भंडार तथा मुहावरों और लोकोक्तियों की दृष्टि से, विवेचन पहले किया गया है और भाषा शैलीगत विशेषताओं का निरूपण बाद में।

शब्द-भांडार— शब्द-भांडार तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी इन चार वर्ग के शब्दों से निर्मित होता है। अतः शब्द-भांडार का अध्ययन क्रमशः इन्हीं चार वर्गों के अनुरूप किया जाना अपेक्षित है। देशज शब्दों के साथ लोकप्रचलित शब्दों को भी ले लिया गया है। इनके अतिरिक्त पर्याय शब्दों से भी शब्द-वैभव का अनुमान होता है। इसलिए संक्षेप में इस ओर भी निर्देश कर दिया गया है।

तत्सम शब्द

तत्सम शब्दों में स्पष्ट संस्कृत भाषा के शब्दों का पूर्ण बाहुल्य है। धर्म, भक्ति, सिद्धान्त, दर्शन तथा उच्चतर सांस्कृतिक वातावरण से सम्बद्ध सहस्त्रों संस्कृत शब्दों को उनके तत्सम रूप में कवियों ने बराबर स्थान दिया है। संस्कृत ग्रन्थों को आधार बनाना और कभी-कभी आदर्श मानना इसका अत्यन्त प्रमुख कारण रहा है। 'यदि प्राचीन साहित्य का अध्ययन ध्यानपूर्वक किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उस समय भी साहित्यिक भाषा संस्कृतगर्भित थी'। इन शब्दों के साथ ब्रजभाषा के एक प्रसिद्ध वैय्याकरण ने स्वीकार किया है कि 'प्राचीन ब्रजभाषा साहित्य में तत्सम संस्कृत शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्र में मिलता है'। सूरदास, नंददास, हरिवंश, श्रीभट्ट, गदाधर, ध्रुवदास और बिहारी के काव्य से चयित निम्नलिखित शब्द प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत किये जाते हैं।

सूरदास— चरण, पंगु, रंक, करुणामय, अविगत, अंतर्गत, परमस्वाद, निरंतर, अगोचर, निरालम्ब, चकृत, भवत्रास, ब्रीडा, कलानिधान, गुणसागर, ब्रह्मलोक, पर्यंत, मृतक, गर्व, संताप, कृपासिंधु, क्षुधित, त्रिगुण, अंतर्यामी प्रभु, रसिकशिरोमणि, शिखी, असुरनिकंदन, मुखारबिन्द, सुकृत, क्रीडा, महामहोत्सव, ब्रह्मांड, क्षुद्र, मेघवर्तक, आकाश, घोषकुमारी, दधिभाजन, चित्रित, लुब्ध, सम्बन्ध, सुगन्ध, सुभगपुलिन, करपल्लव, मुद्रिका, चतुर्दश, अष्टसिद्धि, अखिल, जघन, श्रृंगार, द्युति, कटाक्ष, मुकुलित, पद्म, मन्मथ, त्रिवली, अद्‌भुत, तरणि, खंडिता, मध्य, कनक, कलश, पीयूष, विभावरी, विराजमान, आच्छादित, नीलाम्बर, मानापमान, परितोष, सिद्धान्त, यूथ, यद्यपि..... इत्यादि।

नंददास— प्रेम-पद्धति, तत्व, कंचन, इंदु, मतिमंद, भिन्न, प्रभु, मुकुट, इंदीवर, राजीव, चिबुक-कूप, रोमावलि, अधोक्षज, प्रतिमा, अद्‌भुत, द्वारावति, पुलकित, आसक्ति, कर्म, क्रिया, दिव्यदृष्टि, विषमता, बुद्धि, अमरेंद्रवृन्द, कृपानिधान, नीलोत्पलदल, रसासवपान, चिद्धन, तिमिरग्रसित, रसिकपुरंदर, उज्जवल,परमात्मा, परब्रह्म, प्रारब्ध, छादन, अवधिभूत, सच्चिदानंद, आश्रय..इत्यादि

हरिवंश—प्राण, श्रवण, रमण, रसलंपट, भूषण, शिथिल, अलकावलि, विथकित, रुचिर, सीमंत, गलित, अलंकृत, चित्रित, शिरोमणि, दम्पति, प्रमथित, मिथुन, निर्मित, सुपेशल, मुकुर, विभ्रम, ललितादिक, संभ्रम, विशदावेश, राका, मध्य नेति नेति, वेपथु, अद्‌भुत, कौशेय, चिकुर, चिबुक, पृथु, नितम्ब, कृशकटि, रतिरण, माधविका, मधुपूरित, पशुरिव, जघनदुकूल, पयोधर, खंडित, विलुलित .....इत्यादि ।

श्रीभट्ट— वृन्दाविपिनविलास, वृषभानुजा, कुंज, त्रिभुवनपोषण, निरन्तर व्यंजन, पुष्प, चंदन, सौरभ, मुकुट, मन्मथ, मिथुन, भृकुटि, मुदित, सभ्भ्रम, शिखंड-मंडित..... इत्यादि।

गदाधर— पदारविन्द परमतत्व, पुलिन, पवित्र, विचित्र, पल्लवनिर्मित, स्थल, कलधौत, पद्माकर, दुर्वांकुर, नित्यानंद, भृकुटि, कौस्तुभमयूख, नादामृत, कंदर्पदर्पापहर, मुरलिका, पीयूषनिर्झर, ब्रह्म, रुद्रादि, गुच्छ, घंटिका, दृष्टि स्वाद, प्रतिबिंब, क्रीडा, आडम्बर ..... इत्यादि।

ध्रुवदास—चित्रित, विचित्र, कल्पतरु, अवलंब, किंवा, प्रथम, प्रताप मंडलाकार, विस्तार, कुंज, मंजु, युगल श्रृंगार, नासापुट, कंचुकी, कंचन, नारदादि, ब्रह्मादि, दम्पति, प्रेममाधुरी, अद्‌भुत, नित्य, किशोर, मुक्ता, हृद् रोग, वारिधि, राजहंस, विपरीत, अनुराग, निगम ..... इत्यादि।

बिहारी— हरित नृपति, स्तन, लोचन, विरह, लोभ, स्वेद, रोमांच, कच, भुज.....इत्यादि।

अपनी भाषा के अनुकूल सामान्य ध्वनि-परिवर्तन करके कवियों ने तत्सम शब्दों का इससे कहीं अधिक संख्या में व्यवहार किया है। पूर्वोक्त अनेक शब्द इस ध्वनि-परिवर्तन के साथ उन्हीं काव्यों में व्यवहृत हुए हैं जिनमें वे तत्सम रूप में मिलते हैं। कुछ तत्सम शब्द छंद-विधान या उच्चारण सम्बन्धी अनेक कारणों से अत्यन्त विकृत कर दिये गये हैं। कहीं कहीं उनमें बिना स्पष्ट कारण के प्रायः स्वेच्छा से ही कवियों ने विकार उत्पन्न किये हैं। उदाहरणार्थ सूर द्वारा कैटभारे, वैराग, तातु, अकाश, तटनी प्रभृति शब्दों का प्रयोग। अन्य कवियों ने भी स्वेच्छा से तथा छंद-निर्वाह के लिए तत्सम शब्दों में पर्याप्त विकार ला दिया है जिसके उदाहरण कम नहीं मिलते। प्रकट, भोग, अवतार, शोध, परिणय, निस्सरण, खंड, प्रणाम, पोषण, संतोष, विस्तार , हरण जैसे अनेक तत्सम शब्दों से कवियों ने क्रिया पदों का निर्माण कर लिया है जिनमें तत्समता पूरी तरह सुरक्षित रही है। इस प्रकार तत्सम शब्दों को विविध रूप में प्रयुक्त करना कवियों की शक्ति का परिचायक है और कहीं कहीं अशक्ति का भी।

तद्भव शब्द

ब्रजभाषा का विकास अपभ्रंश से हुआ है अतएव तद्भव शब्दों का अत्यंत विशाल संख्या में पाया जाना स्वाभाविक ही है। ब्रजभाषा के कवियों ने भी अगणित तद्भव शब्दों का व्यवहार किया है परन्तु उनमें अपभ्रंश की छाया जो 15वीं शती के गुजराती कवियों में बहुत अधिक स्पष्ट है, कहीं भी प्राप्त नहीं होती। हरिवंश की स्फुटवाणी में अवश्य अपभ्रंश का आभास मिलता है जो कृत्रिम है। सूर, नंददास, हरिवंश, श्रीभट्ट, आदि जिन कवियों के काव्य से तत्सम शब्द उद्‌धृत किये गये हैं उन्हीं के काव्य से नीचे तद्भव शब्दों के भी उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जिससे तुलनात्मक स्थिति स्पष्ट प्रकट हो जाती है।

सूर—ढिठाई, पठाई, गवन, भक्तवछल, जाति गोत, खंभ, बरजि, भरमति, निठुर, सींग, दई, बिगरी, गांठि, दांत, छिन, काजर, वच्छ, पूत, गुनी, नैन, बेनी, पांति, फरी, थाप्यो, थिर,पहुप, साथिये, सँजोइ, लीपि, भादौं, आठैं, सोवरनथाल, ठाँउ, पाछे, कनिया, धरनी, भुवंगम, बांभन, बिनानी, मथनियाँ, चौगुनी, कोखि, जायो, आँसू, चोंच, ग्वारि, वरही, अँगुरी, साँझि, मुकुता, अंकवारि, बूँद, सरवर, काग,चिहुर, मूँदि, भौंहन, बारे, बाँह, मँडवारी, जोबन, फागुन, भौन, अँचरा, पतूखी ...इत्यादि।

नंददास—प्रनऊँ, जोति, बरनत, झांई, बिख, देस, ठाँ, जीह, अच्छर, पखान, धौरहर, नाइक, पछितयौ, रूखन, रवनी, धरती, लुनाई, सुठौन, राउ, जोबन, लच्छ, साँवरौ, जतन, परपंचनि, मुरझाइ, धूरि, उपखान, अकास, परमान, दुलही, बजमारे, माँखिन, बिजुरी, करनिका, दुति, माँझ, साँझ मनमथफाँसी, गाँउ, रूसि, मूरति बिजना, जुद्ध, अंतरजामी, सुमिरन, भाउ, अटारी ..... इत्यादि।

हरिवंश— ठोर, समै, जुद्ध, जुत, परायन, जुवती, अंस, नैन, औसर, सिज्या नइ, बूँदन, नयौ, पिया, धरम्म, भवन्न, विसवासित, बिछुरंत, निकज्ज, गज्ज, लज्ज, बिहून.....इत्यादि।

श्रीभट्ट— चरन, तीरथ, गोद, धीरज, भौंह मैन, बिछौने, चँवर, निरखत,रतियाँ, हुलसन्त, जूथ, सुहाग, छता, मेह, धुनि, सुकुँवारी, अंस, अरुन.....इत्यादि।।

गदाधर— द्योस, उपाइ, बरखा, पनारे, उल्हयो, पूत, सीस, ग्यान, मर्जादा, बितई, ठई, छिन, सुहाग .....इत्यादि।

ध्रुवदास— अैन, रैन, निबाह, नैन, सिंगार, हुलास, सनेह, पिय, सुहाई, कुँअरि, निसरै..... इत्यादि।

बिहारी—नीठि, दीठि, ईठि, नैन, नेहु, जोति, दुति, अहेरी, जोबन दुलहिया, किय, बिथरे, जोन्ह, जतन, मोषु, तोषु, दच्छिन, पच्छीनि, सोनजुही.....इत्यादि।

तद्भव शब्दों पर दृष्टिपात करने से सहज ही ज्ञात हो जाता है कि इस और कवियों की प्रकृति धीरे-धीरे कम होती रही। प्रायः तद्भव शब्द तत्सम अथवा अर्धतत्सम शब्दों के द्वारा स्थानान्तरित किये जाने लगे।

लोक-प्रचलित तथा देशज शब्द

मध्यकालीन भक्ति साहित्य बहुत अंशों में लोकोन्मुखी रहा है। लोक-चेतना से उसका निर्माण हुआ है और लोक-भाषा में उसे अभिव्यक्ति मिली है। कविगण लोक-जीवन से बराबर सम्बद्ध रहे हैं। फलतः लोक-व्यवहार के बहुसंख्यक शब्द दोनों भाषाओं के काव्य में उपलब्ध होते है जिनमें अनेक शब्द ऐसे हैं जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों से नहीं सिद्ध होती अतएव उन्हें देशज संज्ञा दी गयी है। ब्रजभाषा में लोक-प्रचलित तथा देशज शब्दों का प्रयोग अधिक व्यापक रूप में हुआ। पदकारों में सूर सबका प्रतिनिधित्व करते हैं। सूरसागर में ऐसे शब्दों का सर्वाधिक व्यवहार हुआ है। आख्यानकार कवियों में नंददास तथा रीतिकारों में बिहारी प्रतिनिधि रूप में लिये जा सकते अतएव ब्रजभाषा के इन्हीं तीनों कवियों की रचनाओं से ऐसे शब्द चुनकर प्रस्तुत किये जाते हैं |

सूर— खतियाना, अपुनपौ, कैंती, चेटक, धगरी, सेंत, महरैटी, सिकहरैं, विरुझान, सकाना, अजगुत, मौड़ा, उपरफट, खसमगुसैंया, हटकना, टटकी, चिकनियाँ, मुहाँचही, गाँस, चोटी-पोटी, फंग, खोचन, हाँक, डहकाना, डोंगरी, अचगरी, अलकलड़ैत, अखूट, ढुंढ, अहीठ ठममूरी, साट, चाँड़िले, गोसों, खुटक, फेफरी, बुड़की, छोहरा, सकसकाना, झूखी, नौतम, फोकट, ठालीबैठी, जोरावरी,खिसियानो, टकटोरना, निटोल, फूचो.....इत्यादि।

नंददास— छिल्लर, निरवारि, चटसार, लरिकाई, लटकि, फूलेल, खुभी, टौनौ, गुड़ा-गुड़ी, थुरवाने, पुई, ठगौरी, झलमलताई, उनहारी, अचरिज, टटावक, चुचाई, मुसकि, ठकुराइत, ढिंग, पटबिजना, झींगुर, अहरिन, डहकि, नकवानी, होड़नि, अरगाइ, उगहन, चटपटी, अटपटी, बजमारे, चुटिया..इत्यादि।

बिहारी— मरक, होड़ाहोड़ी, खुभी, भौंर, अनाकनी, बहाऊ,झुलमुली, ठोढ़ी, टलाटलीं, बरबट, चटपटी, एड़ी, आड़, महावरु, बदाबदी, किरकिट, चकाहट, चुहुटनी, गदराने, गोरटी, हूठ्यौ, इठलाइ, मुलकी, गुड़हर, अनखाइ, लरिका, महदी....इत्यादि |

इन दिये हुए शब्दों में संभव है कि कवियों ने कुछ अपने आप गढ़ लिये हों परन्तु सभी शब्दों की रूपरेखा स्पष्टतया लोक-सिद्ध, ठेठ और देशज लगती है।

विदेशी शब्द

कृष्ण-काव्य में विदेशी शब्दों का सामान्यतः बहुत कम व्यवहार हुआ है। बहुत से कवि ऐसे हैं जिन्होंने विदेशी शब्दों का बहिष्कार-सा किया है पर कुछ ऐसे भी हैं जिनके काव्य में कतिपय स्थलों पर इनका प्रचुर प्रयोग हुआ है। ऐसे स्थल अपवाद रूप में ही मिलते हैं। सूर के काव्य में बहुत से अरबी-फारसी शब्द व्यवहृत हुए है।(सूरदास: डॉ0ब्रजेश्वर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ0523)

'सांचो सो लिखवार कहावै' पंक्ति से प्रारम्भ होने वाले उनके एक ही पद में मसाहत, कैद, जहतिया, कसूर, फरद, असल, अवारजा, मुजमिल, कुल्ल, बारिज, जमाखर्च, गुजरान, मुसाहिब और जबाब इत्यादि कई दुरूह विदेशी शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे ही एक दूसरे पद में अमल, साबिक, मिनजालिक, बासिलवाकी, स्याहा, मुसतौफी, मुहर्रिर, जिम्मे आदि का प्रयोग हुआ है।

'गरीबनिवाज', 'दामनगीर' तथा 'शहर'' जैसे और भी कई शब्द सूर के काव्य में मिलते हैं। नंददास ने 'गरज', 'लाइक', 'अरदास' आदि का व्यवहार अपवाद रूप में ही किया है। वल्लभरसिक की वाणी में स्याह, जुलफ, इष्क, शहर, मुष्किल, जाहर, परदा, हाल, महबूब, आशिक जैसे बहुत से शब्दों का व्यवहार हुआ है। इसी तरह हरिदास के पदों में दर, पिदर आदि शब्द प्रयुक्त मिलते हैं। बिहारी ने भी अनेक फारसी-अरबी शब्दों का व्यवहार किया है। उनके दोहों के इजाफा, हवाल, कबूलि, रोज और ताफता आदि किलष्ट-सरल सभी तरह के विदेशी शब्द मिलते हैं। सदकै, सिलाम, खानाजाद जैसे कुछ अरबी-फारसी शब्द मीरां के काव्य में भी पाये जाते हैं |

फ़ारसी के राजकीय भाषा होने के कारण तथा दरबारी प्रभाव के कारण बहुधा ऐसे शब्द दोनों भाषाओं में व्यवहृत हुए हैं। कवियों ने उनके रूप और ध्वनि में अपनी अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार परिवर्तन कर दिया है।

पर्याय शब्द

सूर्य, चन्द्र, कमल, भ्रमर, दिन, रात, नयन, मुख आदि अनेक शब्दों के पर्याय दोनों भाषाओं के कवियों द्वारा, अर्थ तथा छंद की आवश्यकतानुसार बराबर प्रयुक्त हुए हैं। सबका परिचय देना संभव नहीं है अतएव दोनों भाषाओं से केवल 'कृष्ण' शब्द के पर्याय यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे इस सम्बन्ध की तुलनात्मक स्थिति का आंशिक परिचय निश्चित रूप से हो जाता है। दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य में 'कृष्ण' से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई शब्द हो भी नहीं सकता।

गुजराती कवियों द्वारा कृष्ण के लिए विट्ठल, त्रीकम, सामलवान, भूधर, शालिग्राम, और रणछोड़, आदि कुछ ऐसे पर्यायों का प्रयोग व्यपकता से हुआ है जो या तो ब्रजभाषा में प्रयुक्त ही नहीं हुए हैं या केवल अपवाद रूप मे उपलब्ध होते हैं। 'वीठल', 'सालिगराम' और 'टीकम', जो त्रीकम (त्रिविक्रम) का ही परिवर्तित रूप है, का व्यवहार मीरां की पदावली में मिलता है। 'वल्लभ' शब्द के विविध रूप वाहलो, वाला', वहाला नरसी के पदों में कृष्ण के लिए प्रायः प्रयुक्त हुए हैं। इसी श्रृंखला में मीरां द्वारा प्रयुक्त 'बाल्हो' भी आता है। प्रेमानंद ने 'पांडुरंग' का प्रयोग किया है जो कदाचित् किसी अन्य कवि द्वारा प्रयुक्त नहीं हुआ। कृष्ण के विकृत रूप कहाना, काहना, आदि का प्रयोग भी गुजराती कवियों ने बराबर किया है। ब्रजभाषा में इसी तरह कान्हा, कन्हैया, कन्हाई आदि का सतत व्यवहार हुआ है।

कृष्ण के लिए बहुत से विष्णुवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं। श्रीरंग, नारायण, माधव, गोविन्द, गरुडाग्रामि, हरि, भगवान, श्रीकान्त, जगन्नाथ, श्रीपति, नरहरि, वैकुंठराय, चतुर्भुज, जगदीश, जुगजीवन, गरुडारूढ़, केशव, श्रीनाथ, लक्ष्मीनाथ, कमलेश, कमलापति, लक्ष्मीवरा, पुरूषोत्तम, चक्रपाणी, अच्युत आदि। यह और पूर्वोक्त त्रीकम, विट्ठल, शारंगपाणि आदि सब शब्द विष्णु के अवतारी तथा ऐश्वर्यशाली रूप से सम्बद्ध विविध वस्तुओं पर आधारित हैं। ब्रजभाषा में भी इनमें से अधिकांश शब्द व्यापक रूप से कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मुकुंद, मुरारि, दामोदर, आदि कुछ अन्य शब्द भी दोनों भाषाओं में समान रूप में मिलते हें। कृष्ण के लिए विविध प्रकार के सम्बन्धमूलक, नंदकुमार, नन्दकिशोर, नन्दलाल, नंदनंदन, यशोदानंदन, वासुदेव, राधावर, राधिकारमण, हलधरवीर, बलवीर, गोपीनाथ, ब्रजबिहारी, ब्रजराज, वनमाली, गोकुलराय, गोकुलनाथ, गोपाल, कुंजबिहारी, जादवराय, जदुनाथ, जदुपति, जदुनंदन, तथा उनके सौन्दर्य एवं रूपगुण आदि को प्रकट करने वाले श्यामसुन्दर, श्याम, सुन्दरश्याम, घनश्याम, साँवलिया, मनमोहन, मोहनलाल, रसिकशिरोमणि, मदनगोपाल आदि शब्दों का भी व्यापक व्यवहार हुआ है। ब्रजभाषा में नाम के स्थान पर स्नेहसूचक लाल, लाड़िलो, प्यारो, जैसे कुछ शब्द भी सामान्य रूप से व्यवहृत हुए हैं।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

लोक-प्रचलित भाषा में लोक के अगणित अनुभव वाक्यों तथा वाक्यांशो के रूप में संचित होते रहते हैं जिन्हें लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों की संज्ञा दी जाती है। इनमें लाक्षणिकता, व्यंजकता, अर्थ-गंभीरता, वैचित्र्य तथा मार्मिकता के साथ सारल्य का अद्‌भुत योग रहता है। कभी-कभी इनकी सरलता साहित्य के शतशः लाक्षणिक प्रयोगों से भी अधिक प्रभविष्णु सिद्ध होती है। कृष्ण-काव्य में इनका पर्याप्त व्यवहार हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के बीच बहुत गहरी सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती फिर भी सामान्यतः जो अर्थ ग्रहण किया जाता है उसके अनुसार कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा में दोनों प्रायःसमान अनुपात में व्यवहृत हुए हैं। साथ ही सूरदास और नंददास के द्वारा ही इनका विशेष व्यवहार हुआ है। नन्ददास आदि अष्टछाप के शेष कवियों तथा अन्य पदकारों एवं रीतिकारों द्वारा भी लोक-प्रचलित उक्तियाँ काव्य में ग्रहण की गयी हैं तथापि उपर्युक्त दोनों कवियों का महत्व इस क्षेत्र में सर्वोपरि है, जैसा निम्नोद्‌धृत लोकोक्तियों से स्पष्ट प्रमाणित होता है—

सूर— दुरत नहिं नेह अरु सुगन्ध चोरी।

बीस बिरियाँ चोर की तौ कबहुँ मिलिहै साहु।

जो जाको जैसो करि जानै सो तैसो हित पावै।

सूर मिले मन जाहि जाहि सों ताको कहा करै काजी।

खाटी मही कहा रुचि मानै सूर खवैया घी को।

झूठी बात तुसीसी बिनकन फटकत हाथ न आवै।

कहा कथन मौसी के आगे जानत नानी नानन।

जैसो बीज बोइए तैसो लुनिए।

चाले जाउ भई पोइसि।

तुम संग रहै बलाइ।

है कुछ लैन न दैनु।

दाई आगे पेट दुरावति।

दूध दूध पानी सो पानी।

पाँच की सात लगायो।

बातनि गहौ अकास।

सौंह करन को आये।

कौन पै होत पीरीकारी।

मीड़त हाथ।

कौड़ी हू न लहै।

बहे जात माँगत उतराई।

चाम के दाम चलावै।

दाधे पर लोन लगावै।

मूरी के पातन के बदले को मुकुताहल दैहै।

मिलावत हौ गढ़ि छोलि।

को भुस फटकै।

अपनो बोयो आप लोनिए।

दाउँ दै हार् यो।

(सूरदास डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा प्रथम संसकरण पृ0 526, 528)

नंददास— घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहि।

बातन विंजन कोन अघाये, काके हाथ मनोरथ आये।

मृगतृष्णा कब पानी भई, काकी भूख मन लड़ वन गई।

पचि मरे।

हिय लौन लगावौ।

छुधित ग्रास मुख काढ़ि।

गांठि को खोइकै।

जबहि लौ बाँधी मूठी।

करत नकवानी।

सिर धुनहीं।

बनि रह्यो बान।

फीक परी।

टकी लगि जाइ।

(नन्द0, क.पृ0 ख, पृ0 11, ग.पृ0 12)

भाषा-शैली की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य में प्रयुक्त भाषा सामन्यतः सरल और प्रवाहपूर्ण है। सूर के कूट पदों को छोड़कर किसी कवि ने क्लिष्टता और दुरूहता लाने की कहीं चेष्टा नहीं की। अधिकतर गीतात्मकता और कथात्मकता का निर्वाह होने के कारण एक अशिथिल प्रवाहमानता उपलब्ध होती है जिसका व्याघात कुछ असमर्थ कवियों द्वारा ही हुआ है अन्यथा सभी समर्थ कवियों में उसका रूप अक्षुण्ण रहा है। प्रधानतया आख्यान-काव्य में प्रयुक्त होने के कारण गुजराती भाषा का स्वरूप अधिक व्यावहारिक है। ब्रजभाषा में व्यवहारिकता की अपेक्षा साहित्यिकता अधिक है। उसके आदि-कवि सूर में ही भाषा का स्वरूप् साहित्यिकता की ओर बहुत झुका है। रीति-कवियों के हाथ में पहुँचकर ब्रजभाषा सर्वथा साहित्यिक भाषा बन गयी और क्रमशः उसमें कृत्रिमता का आग्रह बढ़ने लगा। ब्रजभाषा के प्रमुख आख्यानकार नंददास की भाषा सर्वत्र सँवारी हुई है और पग-पग पर कवि के 'जड़िया' होने की घोषणा करती है। सूर के पदों की भाषा अधिक समृद्ध, शक्तिसम्पन्न और अधिक साहित्यिक है। ब्रजभाषा के कवियों में भाषा का संस्कार और अलंकरण की प्रवृत्ति प्रारंभ से ही मिलने लगती है जब कि भाषा के प्राकृत रूप पर गुजराती कवियों को गर्व रहा है।

भाषा तथा उसके प्राकृत रूप से सम्बद्ध ऐसी प्रबुद्ध चेतना तथा ऐसी सगर्व जागरूकता ब्रजभाषा के कवियों में उपलब्ध नहीं होती। ब्रजभाषा के भक्त कवियों में भाषा के प्रति गर्व तो नहीं किन्तु प्रेम अवश्य प्रतीत होता है यद्यपि रीति-कवियों में केशवदास जैसे कवि भी मिलते हैं जिन्हें 'भाषा-कवि' होने से शर्म आती है, क्योंकि वे ऐसे कुल में उत्पन्न हुए थे जिसके दास भी संस्कृत छोड़ कर अन्य भाषा बोलना नहीं जानते थे। भाषा के सम्बन्ध में इस तरह की भावना अपवाद ही प्रस्तुत करती है क्योंकि अन्य रीतिकारों में कहीं भी ऐसा भाव नहीं मिलता।

भावों को अभिव्यक्त करने में सामान्यतया तत्सम और तद्भव शब्दों से मिली-जुली भाषा का व्यवहार हुआ है परन्तु ऐसे स्थलों पर भाषा प्रायः अकृत्रिम, तत्समताहीन, लाक्षणिक तथा लाकोक्तियों ओर मुहावरों से युक्त मिलती है।भाव-विश्लेषण के साथ साथ भाषा की लाक्षणिकता और व्यंजनाशक्ति की ओर बराबर निर्देश कर दिया गया है। सूर के पद इस तथ्य को विशेष रूप से प्रमाणित करते हैं। कवियों ने भावों की कोमलता को व्यक्त करने के लिए शब्दों को विविध प्रकार से कोमल बनाने का बराबर यत्न किया है। ओजपूर्ण स्थल काव्य में अपेक्षाकृत कम है अतएव भाषा में ओज की अपेक्षा माधुर्य और प्रसाद गुण का प्राधान्य स्वाभाविक रूप में मिलता है। वस्तुगत और भावगत सुकुमारता की छाया काव्य की भाषा पर बराबर परिलक्षित होती है। उदाहरणार्थ कवियों ने कोमलता और सुकुमारता की व्यंजना के लिए शब्दों में 'ल', 'ड' या 'ड़' का संयोग किया है। यह प्रवृत्ति गुजराती कवियों में बहुत अधिक मिलती है। ब्रजभाषा के कवियों ने 'ड' और 'ल' के स्थान पर 'ड़' और 'या' का योग किया है जैसे 'मावडी' के स्थान पर 'मैया' ओर 'कनाडो' के स्थान पर 'कन्हैया' तथा दुख और 'मुख' से 'दुखड़ा' और 'मुखड़ा'। दीर्ध मात्राओं को लघु करके भी ब्रजभाषा-कवियों ने अनेक शब्दों का निर्माण किया है। यथा अँसुवा, निंदिया, पगिया आदि। 'मेरे लाल को आउ निंदरिया' में नींद को लघु बनाने के लिए दोहरे वर्णों का योग हुआ है। 'दँतुलिया' आदि अन्य शब्द भी इसी प्रकार बनाये गये हैं। भाषा को भावानुकूल और मधुर बनाने की यह एक शैली है। कवियों ने कोमल एवं अनुनासिक वर्णों से युक्त शब्दों को आवृत्ति या श्रृंखलित संयोग से भी स्थल-स्थल पर भाषा को मधुरता और कोमलता प्रदान की है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण दर्शनीय है—

सूरदास— 1. जननि कहति नाचौ तुम दैहों नवनीत मोहन,

रुनुकु झुनुकु चलत पाँइन चायन नूपुर बाजै।

—सू0 सा0, पृ0 150

2. पायन नुपुर बजाई कटि किंकिनी कूजै।

नन्हीं एडियन अरुणता फलबिंबन पूजै।

—वही, पृ0 147

नंददास— नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल मंजुल मुरली।

ताल मृदंग, उपंग, चंग, एकहि सुर जुरली।

...तैसिय मृदु-पद-पटकनि चटकनि कटतारनि की।

लटकनि, मटकनि, झलकनि, कल कुंडल हारनि की।

—नंद0, पृ0 276

ब्रजभाषा का माधुर्य सुविदित है। सुकुमार वर्ण-योजना और मधुर पदावली के विन्यास की ओर कवि प्रायः सजग रहे हैं।

रूप-श्रृंगार वर्णन करने में कवियों ने तत्सम और आलंकारिक भाषा का व्यवहार किया है परन्तु साधारण कथा-वर्णन या वस्तु-निरूपण में भाषा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है और फलतः शिथिलता, नीरसता, अनगढ़पन,असमर्थता तथा अपरिपक्वता रह रहकर झलकती है। ये दोष साधारण कोटि के कवियों में तो मिलते ही हैं, कहीं कहीं सूर, भालण ओर प्रेमानन्द तक में प्राप्त हो जाते हैं। कथा-वर्णन में सूर की भाषा उतनी ही शिथिल मिलती है जितनी भाव-वर्णन में प्रवाहपूर्ण और सशक्त। विषय के अनुसार भाषा का रूप तो बदला हुआ मिलता ही है, साथ ही उसकी चित्रात्मकता ओर सजीवता में भी उत्कर्ष-अपकर्ष होता जाता है।

विविध भाषाओं का मिश्रण

भाषा के सम्बन्ध में अभी तक जिस स्वरूप-परिवर्तन का उल्लेख हुआ है वह शैली की विशेषता कहा जा सकता है परन्तु कई कवियें ने एक भाषा का प्रयोग करते करते बीच बीच में किन्हीं अन्य भाषाओं का जो मिश्रण अथवा प्रयोग किया है वह किसी भी दृष्टि से शैली की विशेषता नहीं माना जा सकता। एक तो इस मिश्रण का कोई उद्देश्य लक्षित नहीं होता, दूसरे वह सर्वत्र मिलता नहीं। कवि-विशेष के स्वभाव से भी इसका सम्बन्ध सिद्ध नहीं हो पाता अतएव विविध भाषाओं के मिश्रण को एक 'विचित्रता' मात्र कहना उचित होगा। इस मिश्रण के मूल में जो कारण निहित हैं वे शैली-तत्व के सर्वथा भिन्न है।

ब्रजभाषा के कुछ कवियों ने पंजाबी का मिश्रण किया है। संस्कृत का आभास उत्पन्न करने की चेष्टा भी कतिपय स्थलों पर मिलती है। गुजराती के कई कवियों ने ब्रजभाषा का व्यवहार किया है। ब्रजभाषा के कवियों द्वारा भी कुछ गुजराती शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है। मीरां की स्थिति सबसे पृथक है क्योंकि उनके काव्य में ब्रजभाषा, राजस्थानी तथा गुजराती तीनों का व्यापक मिश्रण है और आंशिक रूप से पंजाबी का भी। आगे भाषाओं के मिश्रण से सम्बन्धित सारी स्थिति का पृथक्-पृथक निरूपण किया गया है।

पंजाबी का मिश्रण—ब्रजभाषा के साथ पंजाबी का मिश्रण वल्लभरसिक, पीताम्बरदेव और मीराँ के काव्य में कतिपय स्थलों पर मिलता है। शब्दावली, बहुवचन तथा विभक्तियों आदि के पंजाबीपन के कारण ऐसे स्थल स्पष्टतया अलग प्रतीत होते हैं यद्यपि वे लिखे स्वतन्त्र रूप से नहीं गये हैं। ऐसे स्थलों से चयित कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

क. पंथ असाडे कोई पैर न रक्खो असी लखि लखूबो लोग हँसाए।

नेह नगर दे अंदर नू असी शिरदे पैर चलाए।

आह पवेननि वाह की सीदा असी तिस्सी राहाँ चल्लाँ।

इष्क दिलाँ दे नाले नाले महबूबाँ दी गल्लां।

स्याह जुलफ छल्ले जिस छल्ले असी थर सल्ले तिसी महल्लाँ।

वल्लभरसिक रूमाल लाल पर झूमि हमेसैं झल्लाँ।

—श्रीव0 र0 वा0, पृ0 39

ख. ऐसी तू चिपटी दिल दी सुइयों काली कमली कीती है।

हुण आशानूँ जावन आवेनै, अंग अंग करि जीती है।

..... ऐसी तू साडे लखना नू तू जाना काहू दाना।

तू तो ढोल वजंदा चोरा चसमो बीच छिपाना।

तेरे दिल विच दया दरद दरद ना डारा फंद निमाना।

पीताम्बर ते राजस जग में गाया वेद पुराना।

—नि0 मा0, पृ0 308

ग. हो काँनाँ किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ।

सुघर कला प्रवीन हाथन सूँ, जसुमतिजू ने सँवारियाँ।

—मी0 प0, पृ0 57, पद 135

लगी सोही जाणे कठण लगण दो पीर।

विपति पड्या कोइ निकटि न आवै 'सुख में, सब को सीर।

—वही, पृ0 64, पद 191

संस्कृत का मिश्रण— अनेक कवि संस्कृत के ज्ञाता थे और कुछ ने तो संस्कृत में काव्य-रचना भी की है जैसे हितहरिवंश ने 'राधासुधानिधि' की रचना की है। इन कवियों के भाषा-काव्यों में कुछ प्रयोग ऐसे मिलते है जो संस्कृत के नियमों के अनुसार बने हैं। हरिवंश ने 'नेति नेति वदति' तथा 'पशुरिव' जैसे शब्दों एवं शब्दसमूहों का प्रयोग किया है। जिन कवियों ने 'गाथा', 'गाहा' या आर्या छंद का व्यवहार किया है उन्होंने कहीं-कहीं चरणान्त के शब्दों को संस्कृत की द्वितीया विभक्ति के एकवचन का रूप दे दिया है। पृष्ठ 165 पर सूरसागर में भी एक पद में 'पारपारं' 'आधारं' जैसे रूप बनाये गये हैं। कवि गदाधर भट्ट की वाणी में संस्कृत के कई पद मिलते है। कहीं कहीं उनके ब्रजभाषा के पदों में संस्कृत का आभास मिलने लगता है—

रूपबलकोटिकन्दर्पदर्पापहर हरध्यात पद कमल विश्वबंधो !

नामआभासअघरासि विध्वंसकर सकल कल्याण गुनग्राम सिंधो!

—श्रीगंदा बा0, पृ0 13

ब्रजभाषा के कवियों द्वारा प्रयुक्त कतिपाय गुजराती शब्द

गुजराती कवियों द्वारा जिस रूप में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है उस रूप में किसी भी ब्रजभाषा कवि ने गुजराती का प्रयोग नहीं किया। बहुत खोजने पर कहीं एक दो शब्द ऐसे मिल पाते हैं जो

गुजराती से आये प्रतीत होते हैं। सूरदास द्वारा प्रयुक्त 'कापर', 'मोटे'', 'आखौ' तथा ध्रुवदास द्वारा प्रयुक्त 'दोहिली' शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सूरसागर में सूर का ऐसा कोई पद यहाँ मिलता जिसमें गुजराती का व्यवहार हुआ हो परन्तु भालण के दशम स्कंध में 'सूरदास' के नाम से दो गुजराती पद भी प्रक्षिप्त मिलते हैं। वे अष्टछापी सूर की रचनाएँ हों, ऐसा संभव नहीं दीखता। अतएव सूरदास नामक किसी अप्रसिद्ध गुजराती कवि ने इसकी रचना को ही, यही संभव है।

मीराँ के पदों की भाषा

मीराँ के पदों में कुछ गुजराती के, कुछ ब्रजभाषा के, कुछ राजस्थानी के और कुछ मिश्रित भाषा के पद मिलते हैं। प्रथम अध्याय में इस ओर संकेत किया जा चुका है। कुछ पदों में खड़ी बोली का पुट भी है। पंजाबी के प्रसंग में भी मीरां के पदों की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की गयी हैं। वस्तुतः मीराँ के पदों की भाषा का स्वरूप बहुत ही अनिश्चित है। डाकोर वाली प्रति में उनके पदों की भाषा शुद्ध राजस्थानी है जबकि बृहतकाव्यदोहन में संगृहित सौ से अधिक पद गुजराती के हैं। मीराँ की पदावाली जैसे संग्रहों में ब्रजभाषा के भी शताधिक पद मिलते हैं। डाकोर की प्रति सं0 1642 की बताई जाती है अतएव यदि वह प्रामाणिक है तो उनके पदों की भाषा राजस्थानी ही ठहरती है। सं0 1655 की गुजराती में प्राप्त एक प्रति में जो उनके पद मिलते हैं उनकी भाषा ब्रज है। किसी अन्य प्राचीन संग्रह में भी मीराँ के गुजराती पद नहीं मिलते, गुजराती लिपि में लिखे पद अवश्य मिलते हैं। इस सारी स्थिति पर गुजराती के विद्वान मुंशी के निम्नलिखित कथन से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है— "मीराँ गुजराती तो नहीं ही थी, उनके पद भी गुजराती में नहीं लिखे गये थे यह मत वास्तविक लगता है। इधर इनके नाम से प्रचलित पदों में से कितने इन्हीं के हैं यह भी निश्चित कर पाना कठिन है । परन्तु यह सत्य है कि गुजरात में शुद्धभक्ति का जितना प्रचार मीरां के पदों द्वारा हुआ उतना नरसी के पदों से भी नहीं हो सका।''

मीराँ के पदों में जो विविध भाषाओं का रूप मिलता है उसका कारण उनका बहुप्रदेशव्यापी प्रचार प्रतीत होता है, जैसा कबीर आदि कुछ अन्य कवियों के पदों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। जो भी कारण हो, प्रस्तुत अध्ययन में मीरां के पदों का अन्यतम महत्व है।

तुलनात्मक अध्ययन

ब्रजभाषा और गुजराती कृष्ण-काव्यः तुलनात्मक संदर्भ

गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में प्रस्तुत, भागवत और विचारगत जो व्यापक साम्य मिलता है वह दोनों भाषाओं से सम्बद्ध प्रदेशों की सांस्कृतिक एकता का परिणाम है। यत्र-तत्र जो थोड़ा सा वैषम्य प्राप्त होता है वह दोनों प्रदेशों की संस्कृति की क्षेत्रीय विशेषताओं पर आधारित है। सारी परिस्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है कि साम्य आन्तरिक है और वैषम्य अपेक्षाकृत बाह्य। इस साम्य और वैषम्य में गुजरात तथा ब्रज की भौगोलिक स्थिति का बहुत बड़ा हाथ रहा है जिसके कारण दोनों का सांस्कृतिक सम्बन्ध इतनी मात्रा में संभव हो सका। यह सम्बन्ध धर्म, राजनीति, भाषा और साहित्य आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यक्त हुआ | कृष्ण का यादवों समेत मथुरा को छोड़कर द्वारका में जा बसना एक ऐसी घटना है जिसे दोनों प्रदेशों के सांस्कृतिक सम्बन्ध के प्रतीक रूप में ग्रहण किया जा सकता है।(मथुरा संपरित्यज्य गताद्वारवतीपुरम—महाभारत 2,13,65) | कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा है और देहोत्सर्ग-भूमि

गुजरात। काठियावाड़ में प्रभास से कुछ मील दूर एक स्थल आज भी दिखाया जाता है जहाँ श्रीकृष्ण शर-विद्ध होकर गिरे थे। (G.L,page2) इसी तरह मथुरा के इतिहास में कृष्ण के महाभिनिष्क्रमण को बहुत महत्वपूर्ण घटना माना जाता है।(मथुरा परिचय, पृ039) कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण ही मथुरा और द्वारका दोनों को भारतवर्ष की सात मोक्षदायिका पुरियों में स्थान मिला है। (अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका | पुरी द्वाराकवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ||) कृष्ण के समय की द्वारावती ओर वर्तमान द्वारका की स्थिति में भेद माना जाता है फिर भी आधुनिक द्वारका का इतिहास 2000 वर्ष प्राचीन कहा जा सकता है। मथुरा से द्वारका तक के सुविस्तृत क्षेत्र में कृष्ण-भक्ति अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित रही जिसके अनेक कारण प्रमाण पुरात्व विज्ञान की खोजों में मिलते हैं। मथुरा-क्षेत्र में कृष्ण-बलराम की कई मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं | एक शिला-पट्ट पर नवजात कृष्ण को लिए वसुदेव के यमुना पार करने का दृश्य अंकित मिलता है और एक गुप्तकालीन मूर्ति कालीय-दमन की भी मिली है। गुजरात क्षेत्र में कालीय-मर्दन और गोवर्धन-धारण विषयक अनेक प्रतिमाएँ अथवा प्रस्तर-आलेखन आबू, मनोद, सोमनाथ तथा मांगरोल नामक स्थानों पर मिले हैं। कृष्ण का 'त्रैलोक्यमोहन' रूप तो केवल गुजरात में ही उपलब्ध होता है। कृष्ण की चतुर्भुज और द्विभुज मूर्तियाँ विष्णु से उनकी एकता प्रमाणित करती है। गुजरात में कृष्ण-भक्ति के प्रचार का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण अनावाडा से प्राप्त वि0 सं0 1348 के शिलालेख से मिलता है जो शांर्गदेव से सम्बद्ध है। इस लेख का प्रारम्भ **'वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूभारमुद्विभ्रते'** से होता है। यह जयदेव के 'गीतगोविंद' की पंक्ति है। इस शिलालेख से एक कृष्ण-मन्दिर के होने की भी सूचना मिलती है।

दामोदार की उपासना के भी कई प्रमाण मिलते हैं। गिरनार में प्राप्त होने वाला सं0द 1473 का एक शिलालेख दामोदार कृष्ण की स्तुति से प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार द्वारका में रणछोड़राय का महत्व है उसी प्रकार जूनागढ़ में दामोदर का। जैन कवियों ने 'दामोदरहर पंचमऊ' के द्वारा दामोदर को भारतवर्ष में प्रसिद्ध कृष्ण या विष्णु के चार स्वरूपों, जगन्नाथ, बदरी केदारनाथ, रणछोड़राय तथा विठोवा के बाद पाँचवाँ स्थान दिया है। कृष्ण के अतिरिक्त विष्णु के अन्य रूपों की उपासना का भी विकास इस क्षेत्र में स्थान रूप से हुआ है। भंडारकर, रायचौधरी तथा दुर्गाशंकरशास्त्री द्वारा वैष्णवधर्म की उत्पत्ति और विकास का जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है उसमें इस सत्य को प्रकट करने वाली सामग्री यथेष्ट मात्रा में मिलती है जिसका उल्लेख यहाँ संभव नहीं है। कृष्ण-भक्ति और वैष्णवधर्म से इतर शैव तथा जैन धर्म के द्वारा भी मध्यदेश और गुजरात परस्पर सम्बद्ध रहे। प्रभास के सोमनाथ से लेकर काशी के विश्वनाथ तथा शैवोपासना का एक ही स्वर गूँजता रहा। मथुरा का आधुनिक कंकाली टीला प्राचीन समय में जैनियों का बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। गुजरात तो शताब्दियों तथा जैनधर्म की श्वेताम्बर शाखा का प्रधान आश्रयस्थल रहा। जैनियों के 91वें तीर्थंकर नेमिनाथ काठियावाड़ से ही सम्बद्ध थे। आचर्य हेमचन्द्र के समय में आकर जैनधर्म गुजरात का राजधर्म बन गया। गुजरात में ही जैन साहित्य में कृष्ण को स्थान मिला। जिसका विशेष परिचय 'जैनागमों में श्रीकृष्ण' शीर्षक लेख में अगरचन्द नाहटा ने दिया है। आठवीं और दसवीं शती के जैन कवि स्वयंभू और पुष्पदन्त आदि के काव्यों में विविध कृष्णलीलाओं का भी वर्णन मिलता है।

राजनैतिक रूप में मध्यदेश और गुजरात अनेक बार अभिन्न रहे हैं। उग्रसेन ने कृष्ण की सहायता से द्वारका को राजधानी बना कर भी दूर तक फैले हुए यादवों पर शासन किया। परशुराम का आतंक महिष्मती से मिथिला तक व्याप्त था। पौराणिका काल के इन सम्बन्धों के बाद मौर्यकाल के सुस्पष्ट इतिहास से प्रमाणित होता है कि मध्यदेश के साथ ही चन्द्रगुप्त मौर्य का आधिपत्य आनर्त और सौराष्ट्र पर भी था तथा अशोक का साम्राज्य भी मध्यदेश से सौराष्ट्र तक विस्तृत था जिसकी साक्षी गिरनार के शिलालेख देते हैं। चन्द्रगुप्त

विक्रमादित्य के शासनकाल में गुजरात पुनः मध्यदेश से शासन की दृष्टि से अभिन्न हो गया और उज्जयिनी शासन का केन्द्र बनी। हूणों के आक्रमणों द्वारा गुजरात से मथुरा तक का सारा भूभाग पादाक्रान्त हुआ।

राजपूताना और गुजरात पर आभीरों का आधिपात्य रहा। गुर्जर और प्रतिहारों ने अपना केन्द्र कन्नौज को बनाया। नवीं शती के दूसरे दशक से लेकर दसवीं शती के पूर्वार्ध तक गुजरात कन्नौज से ही शासित होता रहा। गुर्जरों का सम्पर्क ब्रजप्रदेश से इतना रहा कि आजतक ग्वालिन अथवा किसी सुन्दरी स्त्री के लिए 'गूजरी' का 'गुजरिया' शब्द प्रयुक्त होता है। मथुरा और सोमनाथ दोनों को महमूद ग़जनवी के आक्रमणों से ध्वस्त होना पड़ा जिसका प्रतिकार इस सारे भूभाग की जनशक्ति ने संगठित रूप से किया। गुजरात के अत्यन्त प्रतापी शासक सिद्धराज जयसिंह के शासन की सीमा मध्यप्रदेश में स्थित महोत्सवनगर (महोबा) तक विस्तृत थी।

शासन के साथ ही गुजरात की सीमाएँ भी बदलती रहीं। प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से यह तथ्य अत्यधिक महत्व रखता है। ग्रियर्सन ने मध्यकालीन गुजरात को राजपूताने का एक भाग मात्र बताया है। ऐतिहासिक दृष्टि से मध्यकालीन गुजरात की सीमा में खानदेश, मालवा तथा राजपूताने का दक्षिणी भाग भी सम्मिलित था। वर्तमान गुजरात की रूपरेखा तब तक निश्चित नहीं हुई जब तक वह मुगल साम्राज्य का अंग नहीं बन गया। अकबर ने सन् 1573 में गुजरात के सूबे की नवीन सीमाएँ निर्धारित करके उसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। गुजरात और मध्यप्रदेश पुनः एकसूत्र में बँध गये। प्रस्तुत अध्ययन के लिए स्वीकृत शताब्दियों में यह राजनैतिक एकता पूर्णतया अक्षुण्ण रही।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है गुजरात और मध्यप्रदेश का पश्चिमी भाग दोनों युगों तक और भी अधिक समीप रहे हैं। संस्कृत का प्रभुत्व प्राचीनकाल से ही दोनों प्रदेशों पर रहा परन्तु लोकभाषा का विकास किस अप्रतिहत गति से इस भूभाग में हुआ वह विलक्षण है। यह लोकसभा थी अपभ्रंश और इसे मूलतःआभीरों की भाषा माना गया है। भारत ने इसको **'आभीरोक्तिः'** कहा और दंडी ने, **आभीरादिगिरः** बताया। यह आभीर कौन थे इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप् से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वान इन्हें विदेशी मानते हैं और कुछ के मत से इनका भारतीय होना भी संभव हैं क्योंकि विदेशी होने का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। आभीर गोपाल-कृष्ण या गोविन्द के उपासक थे। इनका विस्तार गुजरात से लेकर शूरसेन प्रदेश तक था और इनकी भाषा अपभ्रंश का प्रसार भी लाट, सुराष्ट्र, त्रवण, दक्षिणी पंजाबी, राजपूताना, आवंती और मंदसोर आदि में था। भंडारकर के मत से अपभ्रंश का विकास छठी या सातवीं शती में, उस भूभाग में हुआ जिसमें आज ब्रजभाषा बोली जाती है। थूथी ने इसी मत का स्वीकार किया है। यह शौरसेनी अपभ्रंश किसी समय गुजरात में भी प्रचलित थी। राजपूताने से लेकर गुजरात तथा पन्द्रहवीं शती के पहले एक ही भाषा का प्रचार था ऐसी टेसीटरी आदि कई भाषा-शास्त्रीयों की धारणा है। गुजराती और जयपुरी की सहायक क्रियाओं का रूप इसका प्रमाण हैं। जयपुरी ही नहीं मालवी का भी गुजराती से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। ग्रियर्सन के अनुसार गुजराती अपनी मूल विशेषताओं में पश्चिमी हिन्दी के समीप है और उससे भी अधिक उसकी समीपता राजस्थानी से है। 'हिन्दी काव्य-धारा' की अवतरणिका में राहुल सांकृत्यायन ने स्पष्ट लिखा है कि तेरहवीं शती तक गुजरात आज के हिन्दी क्षेत्र का अभिन्न अंग रहा है।

वस्तुतः पन्द्रहवीं शती से पूर्व की भाषा विषयक यह समीपता ही मीराँ के पदों से गुजराती, राजस्थानी और ब्रज तीनों में पाये जाने का कारण है। साथ ही सारे प्रदेश की एकता का अन्यतम प्रमाण भी। प्रारंभ में गुजरात में लोकसभा के प्रति विशेष आकर्षण एवं अहं भाव मिलता है। भोजदेव ने **अपभ्रंशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गुर्जराः** तथा राजशेखर ने **संस्कृतिद्विषः** लिखकर इसी ओर लक्ष्य किया है। भालण तथा प्रेमानंद

आदि कवियों में लौकिक भाषा के प्रति जिस गर्व की भावना की ओर भाषा सम्बन्धी विवेचन करते हुए संकेत किया गया है उसकी प्रेरणा काफी गहरी है। लोक-भाषा की तरह लोक-चेतना से सम्बन्ध रखने वाला बहुत सा लौकिक और पौराणिक साहित्य दोनों प्रदेशों की समान सम्पत्ति रहा है। लोक-कथाओं के निर्माण में गुजरात का विशेष योग मिलता है। संस्कृत और प्राकृत का विपुल वार्ता-साहित्य इसी भू-भाग में रचा गया और उज्जयिनी से उसे सतत प्रेरणा मिली। भोज ओर मुंज की कथाओं ने सारे प्रदेश को प्रभावित किया। हिन्दी साहित्य में प्रेम कथाओं और वीरगाथाओं की जो परम्परा मिलती है उसका पश्चिमी अपभ्रंश की रचनाओं से अभिन्न सम्बन्ध माना जाता है।

पौराणिक साहित्य का इस क्षेत्र में विशेष प्रचार रहा है। महाभारत, हरिवंश और विष्णु आदि कई पुराण गुप्त-काल से ही गुजरात में व्याप्त हो चुके थे। यही नहीं हरिवंश, मत्स्य तथा मार्कण्डेय जैसे पुराणों के निर्माण में भी गुजरात ने योग दिया हो यह बहुत संभव है। हरिवंश युक्त महाभारत तो शतसाहस्त्रीय संहिता अथवा पंचम वेद माना जाता था। वायु, मत्स्य, मार्कण्डेय तथा ब्रह्मपुराण और कदाचित् देवीभागवत भी सातवीं शती तक जनप्रिय हो चुके थे। साहत्यिक जनता ने शताब्दियों तक विभिन्न पुराणों से प्रेरणा ली। आलोच्य काल तक भागवत के साथ-साथ ब्रह्मवैवर्त तथा पद्म आदि अन्य पुराण भी गुजराती तक व्याप्त हो गये थे जैसा भालण,, प्रेमानंद तथा अन्य अनेक आख्यानकारों द्वारा स्वीकार किया गया है। केशवदास ने अपनी रचना 'श्रीकृष्णक्रीड़ाकाव्य' में भागवत, ब्रह्मवैवर्त, आदि पुराणों के अतिरिक्त गर्गसंहिता को भी आधार बनाया है | ब्रज के कवि भी इन ग्रंथों से परिचित थे | रचनाओं का परिचय देते समय तथा वस्तु-विश्लेषण के प्रसंग में इस ओर बराबर संकेत कर दिया गया है | भागवत का तो मध्यकालीन भक्ति-साहित्य पर शताब्दियों तक अखंड राज्य रहा। इसका प्रभाव सभी पुराणों से अधिक व्यापक मिलता है। भक्तों का यह प्रधान उपजीव्य ग्रंथ था और विद्वन्मंडली में भी इसकी महत्ता सर्वमान्य थी यह **विद्यावतां भागवते परीक्षा** से प्रकट है। धार्मिक दृष्टि से इसे एक सीमा-चिह्न कहा जा सकता है। इसमें चार बल केन्द्रस्थ मिलते हैं। शुद्धभक्ति, उपासना-वृत्ति, पौराणिक बल और कला। भारत की प्रमुख भाषाओं में इसके प्रचुर अनुवाद मिलते है। गुजरात और ब्रजप्रदेश में इसका प्रभुत्व और भी अधिक रहा। गुजरात में तो इसको प्रसिद्धि दशवीं शती तक हो चुकी थी। मूलराज सोलंकी ने भागवत की 1108 प्रतियाँ सिद्धपुर के ब्राह्मणों को दान दी थी। एक विद्वान की धारणा है कि यदि गुजराती साहित्य में से भागवत से अनुप्रेरित सारी रचनाओं को निकाल दिया जाय तो बहुत कम ऐसी रचनाएँ रह जायेंगी जिन्हें साहित्य कहा जा सके। गुजराती कृष्ण-काव्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि गुजरात न केवल भागवत से सुपरिचित था वरन् उससे सम्बन्धित अन्य साहित्य का भी उसे पूर्ण ज्ञान था। रत्नेश्वर ने भागवत की श्रीधरी टीका को अपने अनुवाद का आधार बनाया और भीम ने बोपदेव के हरिलीलामृत को। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रजभाषा से अधिक भागवत के अनुवाद गुजराती में क्यों हुए।

गुजरात में कुछ ऐसे ग्रन्थों के प्रचार के प्रमाण भी मिलते हैं जिनसे ब्रज का परिचय नहीं था जैसे नृसिंहारण्यमुनि का 'विष्णुभक्ति-चन्द्रोदय' जिसकी सं0 1469 वि0 में लिखित प्रति का एक पृष्ठ नरसी के जन्म-स्थान तलाजा में प्राप्त हुआ। पूना के भंडारकर इन्स्टीट्यूट के संग्रहालय में इसकी अनेक प्रतियां मिलती हैं। विल्वमंगल द्वारा रचित 'कृष्णाकर्णामृत' से भी गुजराती कृष्ण-काव्य ने प्रेरणा ग्रहण की है जैसा केशवदास की रचना में संगुफित उसके तीन श्लोकों से ज्ञात होता है। यह भी कहा जाता है कि चैतन्य इस रचना की रमणीयता पर मुग्ध होकर इसे द्वारका से 'नदीया' ले गये थे। गुजरात में 'गीतगोविन्द' के 13 वीं शती से बहु प्रचलित होने का उल्लेख किया ही जा चुका है। वस्तुतः भागवत के बाद जिस ग्रंथ ने गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य को विशेष रूप से प्रभावित किया वह यही 'गीतगोविंन्द' है। गुजराती के सर्व-प्रमुख पदकार

नरसी का जयदेव की इस रचना से घनिष्ठतम परिचय मिलता है। यही नहीं उन्होंने अपनी रचनाओं में जयदेव का नामोल्लेख मात्र न करके उन्हें पात्रता तक प्रदान की है। नरसी ने स्वयं को गोपियों और जयदेव की परम्परा का भक्त माना है।

'अेक जाणे छो ब्रजनी गोपी के रस जयदेवे पीधो रे।

उगतो रस अवनी ढलतो नरसैये ताणी ने लीधो रे।

—न0 कृ0 का0, पृ0 266

स्व0 दुर्गाशंकर शास्त्री ने नरसी पर जयदेव के प्रभाव का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण किया है। गीतगोविन्द का प्रभाव ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों पर भी पर्याप्त रूप् से मिलता है। इस रचना की अनेक प्रतिलिपियाँ हिन्दी की प्राचीन पुस्तकों के साथ बँधी ब्रज के वैष्णव घरों तथा मंदिरों में मिलती है जिससे ज्ञात होता है कि चाहे संगीत की दृष्टि से हो, चाहे इसमें निहित भावों की दृष्टि से हो, ब्रज में इसका बहुत प्रचार था। आलोच्यकाल के कई कवियों के पदों में जयदेव की कोमलकांतपदावली के अंश ध्वनित और ग्रथित मिलते हैं जैसे हरिराम व्यास के पदांश (व्या0 वा0 पृ0 368) पर **'धीर समीरे यमुना तीरे'** की छाया स्पष्ट झलकती है।

यद्यपि ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य की तरह गुजराती कृष्ण-काव्य विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों के अन्तर्गत विकसित नहीं हुआ तथापि भक्ति-आन्दोलन और भक्ति-सम्प्रदायों की विचारधारा ने गुजरात को स्वयं ही न किया हो ऐसा नहीं। यह अवश्य है कि वृन्दावन और गोकुल इन सम्प्रदायों के प्रमुख केन्द्र रहे हैं जबकि गुजरात किसी भी वैष्णव-भक्ति सम्प्रदाय का, ब्रज की तरह केन्द्र न बन सका। वैष्णव धर्म और वासुदेव-पूजा का मूल प्राचीन उत्तर भारत में ही मिलता है परन्तु मध्यकालीन भक्ति का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हुआ इसमें किसी को संदेह नहीं है। यह धारणा नवीन न होकर पर्याप्त प्राचीन है। द्रविड़ देश में कावेरी, ताम्रवर्णी आदि सरिताओं के तटवर्ती भूभाग में रहने वाले आलवार भक्तों द्वारा भक्ति के एक स्वरूप् का विकास 10वीं शती के पूर्व को कई शताब्दियों में हुआ जो इन भक्त कवियों के प्रबन्धम् में संग्रहीत पदो से स्पष्ट है। भागवत में जो नवधाभक्ति उपलब्ध होती हे उसका मूल आलवारों की भक्ति में माना जाता है। यही नहीं भागवतकार के दक्षिणी होने की भी संभावना प्रकट की गयी है। द्राविड़ी भक्ति का यह प्रवाह उत्तर भारत में किस किस क्षेत्र को पार करता हुआ आया इसका स्पष्टीकरण पद्मपुराण के उत्तराखंड में दिये हुए भागवत-माहात्म्य के अन्तर्गत भक्ति और उसके पुत्र ज्ञान-वैराग्य की कथा से किया गया है। भागवत माहात्म्य के प्रथम अध्याय के निम्नलिखित श्लोंको से ज्ञात होता है कि ब्रज में पहुँचने से पहले इस प्रवाह ने क्षीण होते हुए भी गुजरात का स्पर्श अवश्य किया था।

उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।

क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।।48।।

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।।50।।

—पद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवत माहात्म्ये प्रथमोध्यायः।

11वीं शती के बाद दक्षिण से जिन भक्ति-सम्प्रदायों का उदय हुआ उनका गुजरात पर 15वीं शती तक कोई असर दिखाई नहीं देता। इस काल में गुजरात में वैष्णव धर्म के जो चिह्न मिलते हैं वे साम्प्रदायिक न

होकर सामान्य एवं पौराणिक है। 15वीं शती में रामानुज-सम्प्रदाय प्रसरित होने लगा। द्वारका में 12वीं शती में रामानुज का प्रभाव रहा हो ऐसी भी संभावना दुर्गाशंकर शास्त्री द्वारा स्वीकार की गयी है। रामानंद ने रामानुज-सम्प्रदाय से कुछ भिन्न मान्यताओं को स्थापित करते हुए राम-भक्ति का प्रचार किया ओर उनके कबीर, रैदास आदि शिष्यों का प्रभाव समस्त उत्तर भारत में व्याप्त हो गया। मध्यदेश में कबीर और तुलसी ने उन्हीं का अनुसरण करते हुए राम को इष्टदेव के रूप में ग्रहण किया। गुजरात में रामानंद का प्रभाव 14वीं शती के उत्तरार्ध से लेकर 15वीं शती के बाद तक रहा। भालण और प्रेमानंद पर राम-भक्ति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है क्योंकि कृष्ण के सम्बन्ध में काव्य-रचना करते हुए भी उन्होंने राम को ही अपना इष्ट देव माना है। ऐसा उनके दशमस्कंधों में बार बार प्रयुक्त 'भालण प्रभु रघुनाथ' तथा 'प्रेमानंद प्रभु राम' से सिद्ध होता है। कहा जाता है कि यह साम्प्रदायिक न होकर पौराणिक है। परन्तु अपने नाम के साथ राम शब्द के योग का इतना आग्रह तुलसीदास जैसे राम-भक्त में भी नहीं मिलता। मीराँ के पदों में कृष्ण के लिए अनेक रामवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। नरसी ने भी अपने को रामनाम का व्यापारी कहा है—

संतो हमे रे वेवारीया श्री रामनामनां।

—न0कृ0का0, पृ0 474

अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'निम्बार्क', मध्व के बारकरीओनी असर गुजरात मां कांई देखाती न थी। वस्तुतः यही सत्य भी है। हिन्दी के एक विद्वान् का यह कथन कि 'गुजरात में माधवाचार्य ने द्वैत-मूलक वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया' यथार्थ प्रतीत नहीं होता।

राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना को प्रश्रय देने वाले निम्बार्क-मत का प्रभाव वृन्दावन पर तो रहा परन्तु गुजरात में परिलक्षित नहीं होता। राधा-कृष्ण के उपासक राधावल्लभीय सम्प्रदाय के सम्बन्ध में अवश्य कहा जाता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय से पहले उसी ने गुजरात को अपना प्रभाव-क्षेत्र बनाया था। यह प्रभाव कदाचित् बहुत ही क्षणिक रहा होगा क्योंकि 16वीं शती के राधावल्लभीय कवि हरिराम व्यास ने लिखा है कि लोग व्यर्थ ही बंगाल और गुजरात में भटकते फिरते हैं। भक्ति का केन्द्र तो वृन्दावन ही है—

भटकत फिरत गौड़ गुजरात।

सुखनिधि मथुरा तजि वृन्दावन दामन कौ अकुलात।

—व्या0 वा0, पृ0 150

बारकरी-सम्प्रदाय के नामदेव आदि सन्तों से मध्यदेश और गुजरात परिचित अवश्य था परन्तु उनका प्रभाव गुजराती भक्तों पर पड़ा हो ऐसा निश्चयपूर्वक कहना कठिन है यद्यपि शास्त्री के अनुसार नरसी ने उनके द्वारा प्रसरित एवं द्वारका तक विस्तृत प्रवाह में स्नान किया था जैसा उनके निम्नलिखित कथन से प्रकट है।

'मराठी वारकरी संतोअे जे प्रवाह दक्षिणमां विस्तार्यो हतो न छेक द्वारका सुधी पहोंच्यो हतो ते भक्ति प्रवाहमां नरसिंह नाह्यो हतो ने भक्तिनी तन्मयता प्राप्त करी चूक्यो हतो, अे वस्तु अेनी प्रत्येक कृतिमां मूर्त थाय छे। अेना जीवनमां भगवाने करेली चमत्कारिक मदद पणो अे तन्मयतानी ज निरूपणा छे'।

परन्तु नरसी में जो तन्मयता है उसके साथ सखी-भाव या गोपी-भाव की प्रेरणा है अतएव वारकरी सन्तों की भाव-धारा से उसका मेल करना समुचित प्रतीत नहीं होता। पद-शैली और चमत्कारिक घटनाओं में

वारकारी सन्तों के साथ नरसी की रचनाओं का सादृश्य अवश्य परिलक्षित होता है। मीरां और नरसी दोनों ने नामदेव का उल्लेख दो एक स्थल पर किया है—

नरसी — क. ..... नामो ने रामो।

—न0 क0 का0, पृ0 104

ख. सोइ नामदेव नुं देवल फेरव्युं ते तमारी कृपा गणाणी रे।

—वही, पृ0 556

मीरां —.....नामदेव की छान छवंद।

—मी0 प0, पृ0 137

मीरां और नरसी की प्रेम-ज्वालाएँ कहाँ से फूट पड़ी, उनमें इतनी 'तलसाट' कहाँ से आयी, इस प्रश्न का उत्तर गुजरात पर चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रभाव स्वीकार करके दिया जाता है जिसकी पुष्टि गोविंददास के भ्रमण-वृत्तान्त से होती है। चैतन्य-सम्प्रदाय के जीव गोस्वामी के सम्पर्क में मीरां अपने वृन्प्दावन-वास के समय आयीं थी यह भी असंदिग्ध समझा जाता है। (मी.पदा0 परिशिष्ट, क, 3 पृ072) इस सबका मूल आधार है मीरां, नरसी और चैतन्य की रागानुगा, प्रेमलक्षणा एवं शुद्ध भक्ति। वृन्दावन चैतन्य-सम्प्रदाय का केन्द्र बना और शुद्ध भक्ति के प्रसार की दृष्टि से सारे भारतवर्ष का हृदय सिद्ध हुआ।(थोडंक रसदर्शनी, पृ0173) दुर्गाशंकर शास्त्री ने नरसी पर वृन्दावनी भक्ति अथवा चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रभाव अस्वीकृत करते हुए सिद्ध किया है कि नरसी ने भागवत, जयदेव भ्रमणशील साधुसंतों के प्रभाव से सखी-भाव का स्वतन्त्र विकास किया। उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि सखी-भाव चैतन्य द्वारा ही उद्भूत न होकर उनसे पहले भी मिलता है।(ऐतिहासिक संशोधन, 142, 148) नरसी को वल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बद्ध करने की भी चेष्टा की गई है जिस पर अब तक किसी विद्वान ने श्रद्धा प्रकट नहीं की। उनके दो पद ऐसे हैं जिनमें 'पुष्टिमार्ग' शब्द प्रयुक्त हुआ है। एक के आधार पर तो उन्हें पुष्टिमार्ग का 'बधैया' तक कहा जाता है—

1. कोटिक काम विलास विविध, बेहु समोवड शोभी रह्यां,

अेवो पुष्टिमारग अनुभव्यो रस नरसइंयो हुतो तिहां।

—न0 कृ0 का0, पृ0 123

2. श्री वल्लभ श्री विट्ठल, भूतले प्रगटी ने, पुष्टिमार्ग ते विशद करशे।

दैवी निज जीव जे, शरण जे आवशे, बिना साधन उद्धार करशे।

—वही, पृ0 534

पहले स्थल पर 'प्रेम मार्गीनो अनुभव्यों रस' पाठांतर मिलता है। दूसरे पद पर टिप्पणी करते हुए संग्रहकर्ता इच्छाराम सूर्यराम देशाई लिखते हैं—

"उपलुं' पद नरसिंह महेतानी कृति छे अेम मानववानो प्रयत्न, श्रीमद्वल्लभाचार्य सम्प्रदायना केटलांक गोसांइना बालको अने अनेक वैष्णवो करे छे ..... वैष्णवो कहे छे के नरसैयो पुष्टिमार्गनो बधैयो वधामणी आपनारी हतो, अने नरसिंह मेहेताअे श्री वल्लभाचार्य जे बोध करवाना हता, ते प्रथम जणाववाने जन्म लीधो हतो। आना जेवो उडांगटोल्लो, हुँ धारूं छु के कोई पण पंथ सम्प्रदायमां नहि हशे। नरसिंह मेहेताना काव्यो, पदो जेटलां जेटलां जूना चोपडामांथी उतार्या छे तेमां कयांही अे पद दृष्टे पड्युं नथी पण अराडमी सदीना लखायला वल्लभ-सम्प्रदायना चोपडामांथी ज मात्र आ पद मली आव्युं छे ..... सूक्ष्म रीते अवलोकन करनारने प्रत्यक्ष थशे के नरसिंहनी ज्ञान- भक्ति अने पुष्टि-भक्ति बन्ने कोई पण जातनी सभ्यता नथी तो पछी उक्त पदमां वर्णवेली भविष्यवाणी नरसिंह मेहेतो केम भाखे ? नरसिंहनी भक्ति नुं स्वरूप, कोई पण विष्णु उपासक पंथ ने मान्य छे, सर्वदेशी छे, वल्लभाचार्यनी भक्ति नुं स्वरूप अेकदेशी छे ।'

टिप्पणीकार ने पद को प्रक्षिप्त माना है ओर चौथी कड़ी को जो ऊपर उद्धृत की गई है, भाषा, वस्तु तथा विचार तीनों की दृष्टि से कृत्रिम कहा है जो यथार्थ ही है। दिवेटिया ने भी नरसी के काव्य-काल को वल्लभाचार्य के जन्म सन् 1479 से पूर्व मानते हुए घोषित किया है कि उन पर पुष्टिमार्ग का कोई प्रभाव न था और नरसी की कृष्ण-भक्ति का मूल भागवत, जयदेव आदि को ही मानना चाहिए साथ ही यदि नरसी को समय-च्युत भी किया जाय तो भी यही मान्यता चरितार्थ होगी।

नरसी के दार्शनिक विचार शुद्धाद्वैतवाद से बहुत मिलते हैं जैसा कि सिद्धान्त पक्ष में निर्दिष्ट किया गया है। उन्होंने 'लीलाभेद', 'लीला रस' आदि का प्रयोग भी किया है किन्तु इस सबका कारण पुष्टिमार्ग का प्रभाव न होकर उपनिषद भागवत आदि प्राचीन भक्ति एवं दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों की परम्परा का परिपालन ही है। लीला की महत्ता भागवत में मुख्यतया निरूपित की गई है और दार्शनिक क्षेत्र में भी उनकी देन महत्वपूर्ण है। वल्लभाचार्य ने इसीलिए भागवत की 'समाधि भाषा' को प्रस्थान-त्रयी के बाद चतुर्थ प्रमाण माना।

गुजराती साहित्य पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव वस्तुतः सत्रहवीं शती से पड़ना प्रारंभ हुआ। इस समय तक वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ अनेक बार गुजरात जा चुके थे और अनेक स्थालों पर उनकी बैठकें स्थापित हो चुकी थीं। वल्लभाचार्य अपने पर्यटन में सूरत, भरुच, मूर्वी, नवानगर, खंभालीया, पिंडतार ,डकोर, द्वारका, जूनागढ़, प्रभास, नरोडा, गोधरा आदि स्थानों पर गये ऐसा माना जाता है। वल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ के प्रचार का मुख्य क्षेत्र गुजरात ही था। विट्ठलनाथ ने द्वारकाधीश के दर्शन के लिए निम्नलिखित प्रमाण से छः बार गुजरात की यात्रा की।

1. प्रथम अड़ैल से गुजरात पधारे।
2. सं0 1613 में पुनः अड़ैल से गुजरात पधारे।
3. सं0 1619 में गढा से पधारे।
4. सं0 1623 में मथुरा जी से पधारे।
5. सं0 1631 में श्रीगोकुल से पधारे।
6. सं0 1638 में पधारे।

(—थोडांक रसदर्शनो, पृ0 206)

चैतन्य को शुद्ध भक्ति गुजराती स्वभाव की व्यवहारिकता तथा व्यापारी प्रवृत्ति के प्राबल्य में न पनप सकी। किन्तु इन्हीं कारणों से पुष्टिमार्ग वहाँ कुछ ही समय में इतना व्याप्त हो गया कि गुजरात उसका घर बन गया और वैष्णव का अर्थ ही पुष्टिमार्गीय वैष्णव हो गया। सम्प्रदाय-प्रसार के नवीन उत्साह से प्रेरित होकर विट्ठलनाथ के 'आर्बुदारण्य' निवासी एक गुजराती शिष्य गदाधरदास ने 'सम्प्रदाय-प्रदीप' नामक संस्कृत ग्रन्थ की रचना की जिसमें अनेक प्रशस्तियों के साथ वल्लभाचार्य को विष्णुस्वामी ओर विल्वमंगल की आचार्य परम्परा में स्थापित किया। गदाधर ने विद्यानगर के पूज्य देवता 'श्री विट्ठलनाथ' द्वारा दिये गये स्वप्न के प्रसंग में एक स्थल पर स्पष्ट लिखा है कि **'श्रीवल्लभाचार्यन्प्रति श्री विट्ठलनाथेनोक्तं भवद्भ विष्णुस्वामि मार्गोऽड.गीकर्तव्यः'** (सम्प्रदायप्रदीप, पृ0 62) अर्थात विट्ठलनाथ को मूर्ति ने वल्लभाचार्य से विष्णुस्वामी के मत को अंगीकार करने को कहा, क्योंकि विष्णुस्वामी की रचनाएँ कालकवलित हो चुकी थीं। **'विष्णुसवामिकृत श्रुति व्याससूत्र गीता भागवतभाष्य निबन्धादि कालेनान्तर्हितं'**। दक्षिण के विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय से गुजरात परिचित रहा हो यह असंभव नहीं है। विष्णुस्वामी विष्णु के नृसिंह रूप के उपासक थे। नृसिंह विष्णु का रुद्र रूप है और विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय की संज्ञा रुद्र-सम्प्रदाय भी है। इस सम्प्रदाय में नृसिंह-भक्ति क्रमशः गोपालोपासना के द्वारा स्थानान्तरित होती गयी। नृसिंहारण्य मुनि द्वारा रचित, जूनागढ़ से प्राप्त 'विष्णुभक्ति चंद्रोदय' जिसका उल्लेख किया जा चुका है, में कई स्थलों पर नृसिंह की वन्दना के श्लोक मिलते हैं। रचयिता के नाम में प्रयुक्त नृसिंह संभव है सम्प्रदाय-गत नामकरण की परिपाटी का द्योतक हो। श्रीधरी टीका जो गुजरात में परिचित थी नृसिंह की वन्दना से ही प्रारम्भ होती है। रत्नेश्वर ने अपने गुरु परमानंद के दैवत् को नृसिंह कहा है। गुजरात में नृसिंहोपासना के प्रमाण भी पर्याप्त मिलते हैं। नृसिंह का त्रिशिर-विग्रह तथा स्त्री-मूर्ति गुजरात में नृसिंह से सम्बद्ध किसी विशिष्ट सम्प्रदाय की ओर से रची गयी होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है। सम्प्रदाय प्रदीप में देवप्रबोध नामक आचार्य को नृसिंहोपासक माना गया है। जैसे **'ततो देव प्रबोधाचार्येण स्वेष्टदेवता नृसिंह वचनेन .....।'** से विदित होता है। इस सम्बन्ध में विशेष ऊहापोह न भी किया जाय तो भी इतना स्पष्ट है कि गुजरात में पुष्टि मार्ग के, प्रवेश के बाद ही वल्लभाचार्य के विष्णुस्वामी-मतवर्ती होने पर विशेष बल दिया गया। स्वयं वल्लभाचार्य की रचनाओं से यह तथ्य प्रमाणित नहीं होता। गोविन्दलाल भट्ट और अमरनाथ राय ने इस विषय में पर्याप्त शोध की हे। भट्ट जी का मत यथार्थ प्रतीत होता है। (दृष्टव्यः बड़ौदा ओरियंटल कान्फ्रेन्स रिपोर्ट, सन् 1933)

गोसाईं विट्ठलनाथ के एक अन्य गुजराती शिष्य गोपालदास ने 'वल्लभाख्यान' और 'भक्तिपीयूष' नामक दो ग्रन्थों की रचना की जिनमें 'वल्लभाख्यान' पर ब्रजभाषा में टीका भी हुई है। इस रचना में कवि ने अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ को लीलाधारी कृष्ण का साक्षात् स्वरूप् माना है।

आलोच्य काल के तीन गुजराती कवियों पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है इनमें से एक ही 'रसिकगीता' के रचयिता भीम, दूसरे हैं 'मथुरालीला' के प्रणेता केशवदास और तीसरे हैं रासलीलाकार बैकुंठदास। भीम विट्ठलनाथ के शिष्य थे और केशवदास तथा वैकुंठदास गोकुलनाथ के। कवियों ने इस सत्य को विशेष श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है जो निम्नलिखित पंक्तियों से व्यक्त होती है—

ब्रजमां भगति घणी, अे सर्वे जाणे सही,

वलव अे रसीक जन तेणे लीलाकरी।

कीहां रस प्रीत न होती ब्रज थी परवरी,

जेणे विट्ठलेश जाण्या तेना पा थाअे अरी |

—रसिकगीता, बृ0 का0 दो0, भाग 7, पृ0 701

गुरु कल्याण कीधुं मम सार, कीधो वैश्य नाम अधिकार,

आपी वाणी कर्णे कृपाय, श्रीवल्लभ कुलमां गोकुलराय।

प्रथमि प्रणमूँ श्री गोकुलचंदनि, रसीकशिरोमणि आनंद कंदनि।

—प्राचीन काव्य सुधा, भाग 3, पृ0 141

कदाचित् इन्हीं केशवदास वैष्णव ने 'वल्लभवेल' का भी निर्माण किया है जिस पर गोपालदास के पूर्वोक्त 'वल्लभाख्यान' की छाया है। इस रचना में सं0 1646 में गोकुलनाथ द्वारा की गयी गुजराती यात्रा का उल्लेख है तथा वल्लभकुल के सम्बन्ध में अन्य अनेक सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं जिनका क्रमिक परिचय शास्त्री ने 'कविचरित' में दिया है। प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकृत उक्त दोनों कवियों के अतिरिक्त 17वीं शती में और भ्भी एक कवि हुए हैं जिन पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव मिलता है। उनका नाम है महावदास। एक काव्य में उन्होंने गुजराती वेणाभट्ट की पुत्री के साथ होने वाले गोकुलनाथ जी के विवाह का वर्णन किया है। गुजरात के प्रसिद्ध व्यंग्यकार वेदान्ती कवि अखा भगत ने भी गोकुलनाथ की शिष्यता स्वीकार की लेकिन वह स्थायी न रह सकी। कवि ने लिखा है **'गुरु कर्या में गोकुलनाथ, गुरुए मुजने घाली नाथ'**। अष्टछाप के कवियों के पद वैष्णव सम्प्रदाय के मंदिरों में गाये जाते रहे और गुजराती मध्ययुगीन भक्ति-काव्य के अन्तिम स्तम्भ दयाराम को उनसे पर्याप्त मिली। गुजराती कवि केशवदास के 'श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य' में एक गोपी जनवल्लभाष्टक दिया है वैसा ही अष्टक वल्लभ-सम्प्रदाय में हरिरायकृत माना जाता है। दोनों में प्रायः अभेद है, संभव है केशवदास तथा हरिराय दोनों ने किसी एक स्त्रोत से उसे ग्रहण किया हो। हरिराय जी का गुजरात से पर्याप्त सम्पर्क रहा। इस प्रकार गुजरात पर उस पुष्टिमार्ग का व्यापक प्रभाव मिलता है जिसका प्रधान केन्द्र ब्रज था। गुजरात ने पुष्टिमार्ग के विकास में उसे स्वीकार करके ही योग नहीं दिया वरन् तत्सम्बन्धी साहित्य निर्माण में भी भाग लिया जिसके कुछ प्रमाण ऊपर दिये जा चुके हैं। पर जो इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण योग है वह अष्टछाप के कवि कृष्णदास की रचनाओं के रूप में मिलता है। कृष्णदास गुजराती थे और उनका जन्म गुजरात में, राजनगर (अहमदाबाद) राज्य के चिलोतरा नामक एक गाँव में हुआ था। शूद्रकुल में उत्पन्न होने पर भी उन्हें पुष्टि मार्ग में पर्याप्त मान्यता मिली और ये 'अधिकारी' की उपाधि से विभूषित किये गये। इन्होंने अपने अधिकार से गोसाईं विट्ठलनाथ तक को श्रीनाथ जी की सेवा से निर्वासित कर दिया था। युगों पुरानी गुजरात और ब्रज की अभिन्नता पुष्टिमार्ग के प्रसार के साथ चरमसीमा पर पहुँच गयी। पुष्टिमार्ग से पहले के सम्प्रदायों का गुजरात पर जो प्रभाव पड़ा वह इतना पर्याप्त नहीं था कि साहित्य-सृजन को उस प्रकार प्रभावित कर सकता जैसा कि ब्रज में किया है। यही कारण है कि पुष्टिमार्ग के प्रवेश के पूर्व साम्प्रदायिक प्रेरणा से लिखा गया साहित्य गुजराती में उपलब्ध नहीं होता। इसके विरूद्ध ब्रज को प्रत्येक कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदाय ने अपना केन्द्र बनाया और परिणामतः ब्रज का समस्त कृष्ण-भक्ति-साहित्य प्रायः किसी न किसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से प्रेरणा लेकर लिखा गया।

जहाँ तक गुजरात के लोक-मानस का सम्बन्ध है वह धर्म के क्षेत्र में सहज श्रद्धावान्, विश्वासी, तर्कहीन, तुलसी-पीपल पूजनेवाला गो-ब्राह्मण की पूर्ण श्रेष्ठता स्वीकार करने वाला-स्मार्त एवं पौराणिक है। अपने इसी स्वाभाव के कारण गुजरात ने कृष्ण-काव्य में राधा को 'भक्ति' का स्वरूप माना जबकि ब्रज के विभिन्न सम्प्रदायों ने राधा को 'आदिप्रकृति' तथा आह्लादिनी भक्ति' आदि अनेक स्वरूपों में देखा है, तदनुरूप व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं। गुजरात के स्वभाव में राज- सत्ता तथा वैभव के प्रति विशेष आकर्षण मिलता है। इसका फल यह हुआ कि कृष्ण के राजसी जीवन के प्रति भी गुजराती कवियों ने पर्याप्त आकर्षण प्रदर्शित किया है। 'कृष्णविष्ट' अथवा 'पांडवविष्टि' नाम से जो अनेक रचनाएँ गुजराती कृष्ण-काव्य में मिलती हैं वे इसका प्रमाण हैं कि गुजराती कवियों ने ब्रज के कवियों की तरह अपने भाव-क्षेत्र को केवल गोकुल-वृन्दावन के कृष्ण तक ही सीमित नहीं रक्खा है। ब्रज के कवियों ने कृष्ण के राजसी स्वरूप को कहीं भी अपने काव्य का भाव-केन्द्र नहीं बनाया। सुदामाचरित और रुक्मिणीहरण सम्बन्धी काव्य अपवाद जैसे ही हैं। विष्टि ही नहीं द्वारकावासी कृष्ण के जीवन की कुछ अन्य घटनाओं को भी गुजराती कवियों ने रस के साथ अंकित किया है। उदाहरणार्थ सत्यभामा का विवाह तथा रूठना। भालण ने सत्यभामा के प्रसंग को विशेष भाव से चित्रित किया है। वस्तुतः मुख्यरूप से आख्यानकार होने के नाते गुजराती कवियों ने प्रायः कृष्ण के जीवन के किसी एक भाग तक ही अपने काव्य को सीमित नहीं रक्खा है प्रस्तुत समस्त कृष्ण-चरित के प्रति उनकी भक्ति थी। यही भक्ति पूर्णतया पौराणिक कही जा सकती है, केवल नरसी और मीरां को छोड़कर क्योंकि उनकी प्रेरणा पौराणिक न होकर वृन्दावनीय थी।

कुछ बातें गुजराती कृष्ण-काव्य में ऐसी मिलती हैं, जो सर्वथा प्रादेशिक प्रभाव से आती हैं जैसे रुक्मिणीहरण की कथा में प्रेमानंद द्वारा गुजरात से सम्बद्ध जैन तीर्थंकर नेमिनाथ का समावेश तथा नयर्षि और नरसी द्वारा किया गया द्वारका-रास का वर्णन। जैनधर्म मथुरा में भी प्रचलित था परन्तु बाद में विलुप्त हो गया। परन्तु गुजरात में आज तक वह एक प्रधान धर्म है। प्रेमानंद ने निश्चित रूप से गुजराती जैनधर्म के प्रभाव से ही नेमिनाथ का समावेश किया; ठीक उसी तरह जिस तरह जैन साहित्य में कृष्ण को स्थान दिया गया। द्वारका में रास की कल्पना भी प्रदेश-विशेष के वातावरण एवं प्रादेशिक परम्पराओं से प्रभावित मानस की उपज है। जैसे कृष्ण ने वृन्दवान में गोपियों के साथ रास किया वैसे ही द्वारका में भी रानियों के साथ किया होगा ऐसी कल्पना का गुजरात के लोक-मानस में उत्पन्न होना अत्यंत सहज एवं स्वाभाविक है| गुजरात की अपनी शैली तथा छन्दगत विशेषताएँ भी कृष्ण-काव्य में मिलती हैं जैसे कडवाबद्ध आख्यान-शैली और संस्कृत वृत्तों का प्रयोग। इसी तरह भाषा के क्षेत्र में भी कुछ बातें उल्लेखनीय हैं।

गुजारत और मध्यदेश की उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त बहुमुखी सांस्कृतिक एकता के साथ साथ कुछ विशेषताएँ और भी मिलती हैं जिन्हें प्रादेशिक, प्रांतीय अथवा क्षेत्रीय कुछ भी कहा जा सकता हैं। ब्रज-प्रदेश की लोक-संस्कृति ब्रज-काव्य में और गुजरात की लोक-संस्कृति गुजराती काव्य में प्रतिबिम्बित हुई है। यमुना के किनारे के लिए ब्रज में प्रमुख 'तट' या 'तीर' का प्रयोग न करके नरसी ने 'कांठे' का प्रयोग किया है जो गुजरात में सुप्रचलित है—

सुन्दर जमुना जी ने कांठे रे उग्यो शरदपुनम नो चंद।

—न0 कृ0 का0, पृ0 418

प्रेमानंद ने 'रुक्मिणीबाई' लिखा है जो गुजरात के लिए सहज प्रयोग है परन्तु ब्रज के लिए नहीं। गोपियाँ जो गीत गाती हैं उनको 'गरबी' की संज्ञा दी गयी है। गरबी गुजरात की एक प्रधान विशेषता है। यह प्रायः 'गरबा' नृत्य के साथ गायी जाती है—

ताल पखाज वेणा रस महुवर गरबी गाय रसीली रे।

—न0 कृ0 का0, पृ0 512

नरसी ने 'हमची' लेकर गाने का भी इसी तरह कई स्थालों का वर्णन किया है जिसका अभिप्राय मंडली-बद्ध गायन से है। कृष्णदास की 'रुक्मिणी हरण हमचडी' ऐसे ही गीतों का संग्रह है। प्रेमानंद ने कृष्ण को झुलाने के लिए सारी बाँध कर बनाई हुई झोली का वर्णन किया है यह भी गुजरात में बहु-प्रचलित है। गुजराती कवियों ने जहाँ आभूषणों और पकवानों की नामावालियाँ दी हैं वहाँ भी प्रांतीय विशेषता देखी जा सकती है। ब्रज के कवियों ने कलेवा या जेवनार में अनेक प्रादेशिक व्यंजनों का उल्लेख किया है। आभूषण तथा वेश-भूषा के वर्णन में भी प्रादेशिक प्रभाव स्वाभाविक रूप में मिलता है। सूर के कष्ण 'भौंरा चकडोरी' से खेलते हैं—

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।

कटि कछनी पीताम्बर ओढ़े हाथ लिये भौरां चकडोरी |

—सू0 सा0, पृ0 204

लाठी मार होली तो निश्चय ही ब्रज की अपनी वस्तु है सूर ने उसका भी वर्णन अपने कावय में किया है—

उत जेरी धरे ग्वाल बाँसन की परी मार यह छवि नाहि बारपार सोर झोर झोरी।

उत होरी पढ़त ग्वार इत गारी गावति ए नंद नाहिं जाये तुम महिर गुणन भोरी।

—सू0सा0, पृ0 558

इस उद्धरण में गाली गाने का भी वर्णन है। ब्रज के अन्य कवि गदाधर भट्ट ने गाली गाने का वर्णन किया है जो लोक-प्रचलित जीवन से लिया गया है—

देत परस्पर गारि द्वारे जाय खरे।

—वा0 श्रीगदा0,पृ0558

गुजराती कवियों ने गुजरात की मास-गणना के अनुसार कृष्ण का जन्म श्रावण में लिखा है परन्तु ब्रज के कवियों ने भादों में माना है। नरसी, प्रेमानन्द ओर वासणदास ने 'राही' को राधा से भिन्न एक सखी के रूप में चित्रित किया है। ऐसा चित्रण ब्रज में उपलब्ध नहीं होता। यह सामान्य बातें अपने आप में अधिक महत्व नहीं रखतीं किन्तु इनसे जिस सत्य की व्यंजना होती है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। और वह यह है कि समान परम्परा से कृष्ण-लीलाओं का ग्रहण करके भी दोनों भाषाओं के कवियों ने उनका विकास अपने अपने प्रदेश के संस्कारों, व्यवहारों, लोकाचारों, विचारों एवं भावनाओं के अनुरूप किया है, जो स्वाभाविक ही है। सभी कवियों ने अपने आराध्य को लोक-चेतना का केन्द्र बनाने के लिए अपने चारों ओर की भूमि के जीवन से

विविध तत्व संचित करके उनसे कृष्ण का श्रृंगार किया है। समस्त कृष्ण-काव्य वास्तव में अपने व्यक्त रूप में लोकोन्मुखी काव्य है। उसकी रचना भी ऐसे वर्ग के कवियों द्वारा हुई है जिन्होंने लोक-जीवन से अपना सम्बन्ध कभी विच्छिन्न नहीं किया। ब्रजभाषा के रीतिकालीन कवि अवश्य दरबारों में आश्रय ग्रहण करके लोक-जीवन से दूर जा पड़े परन्तु गुजराती के प्रायः सभी कवियों का लोक से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि भक्ति से हटकर गुजराती काव्य ब्रजभाषा की काव्य की तरह रीति -शैली की आलंकारिकता और कृत्रिम भावाभिव्यक्ति की ओर अग्रसर नहीं हुआ। श्रृंगार-प्रियता अवश्य गुजराती और ब्रजभाषा के काव्य में चरम रूप में मिलती है। दोनों भाषाओं के कवियों ने वैराग्य, ज्ञान और भक्ति युक्त सूक्ष्म भावनाओं के निरूपण के साथ ही राधा-कृष्ण की विलास-लीलाओं का स्थूलतम चित्रण किया है। आधुनिक मनोविज्ञान ऐसे वर्णनों के भक्ति-काव्य माने जाने पर गंभीर प्रश्नचिह्न अंकित करता है। प्राचीन सैद्धान्तिक व्याख्याओं के अनुसार इसका उत्तर अनेक प्रकार से दिया जाता है जो पूरी तरह संतोष नहीं देता। यहाँ केवल इतना ही अभिप्रेत है कि दोनो भाषाओं में 'उघाडो' या उघरे हुए श्रृंगार से युक्त काव्य-रचना प्रचुर मात्रा में हुई। 15वीं, 16वीं तथा 17वींशती के गुजराती और ब्रजभाषा में लिखे गये कृष्ण-काव्य और उसकी बहुमुखी पृष्ठभूमि पर दृष्टिगत करने से संक्षेप में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों की आत्मा एक है, जो कुछ अपेक्षाकृत गौण एवं वाह्य हैं और वे किसी प्रकार इस आत्मिक एकता का विभेद है वे अपघात नहीं करते। यह एकता और भेद साम्य और वैषम्य, वर्ण्यवस्तु, सिद्धान्त, भाव, कला, छंद तथा भाषा प्रभृति काव्य के सभी अंगों में लगभग समान रूप् से परिलक्षित होता है।

किसी भी तुलनात्मक अध्ययन में प्रभाव के सम्बन्ध में निश्चित रूप से हठात् किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाना उचित नहीं कहा जा सकता फिर भी काव्य-धाराओं की गति देखकर दिशा का निर्देषन संभव है। पिछले पृष्ठों में देखा जा चुका है कि गुजरात और ब्रज की बहुत सी परम्पराएँ अभिन्न रही हैं इसीलिए दोनों के काव्य में बहुत से समान तत्व उपलब्ध होते हैं। उनके लिए कदापि नहीं कहा जा सकता कि वे इस भाषा के साहित्य के प्रभाव से उस भाषा के साहित्य में आये हैं पर कुछ बातें ऐसी हैं जिनके विषय में किसी भ्रान्ति की संभावना नहीं हैं। गुजरात में जो साहित्य पुष्टिमार्ग की प्रेरणा से रचा गया उस पर निश्चय ही ब्रज की विचारधारा का प्रभाव है क्योंकि सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र ब्रज ही बना रहा। इसी तरह गुजराती के भालण, नरसी, केशवदास, लक्ष्मीदास, ब्रेहदेव आदि की रचनाओं में जो ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है वह भी निश्चित रूप से ब्रज का प्रभाव कहा जा सकता है। इनमें से सब प्रक्षेप नहीं है और फिर किसी गुजराती कवि के नाम से रचकर ब्रजभाषा की रचनाओं को प्रक्षिप्त करने की प्रवृत्ति भी तो प्रभाव को ही सिद्ध करती है। भाषा और सम्प्रदाय इन दो बिन्दुओं को मिलाकर एक रेखा खींची जा सकती है जिसकी गति स्पष्टतया ब्रज से गुजरात की ओर है। वृन्दावन के कृष्ण-भक्ति के मुख्य केन्द्र होने के कारण प्रभाव का प्रवाह मथुरा से द्वारका की ओर प्रवाहित हुआ ऐसा गुजराती विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका प्रमाण है।

"12वीं, 13वीं, तथा 14वीं शती में राजपूताना और गुजरात की भाषा में बहुत अन्तर नहीं था और मथुरा एवं वृन्दावन की कीर्ति के पद इस काल की भाषा में थे और रचे गये यह स्पष्ट लगता है। इतना ही नहीं द्वारका कृष्ण का धाम होने के कारण ऐसा दीखता है मानो कृष्णकीर्तन का प्रवाह गुजराती में बहा आ रहा हो।'' (थोडंक रसदर्शनो,पृ0148)

इसीलिए प्रारंभ में कृष्ण के मथुरा से द्वारका-गमन की दोनों प्रान्तों के सांस्कृतिक सम्बन्ध का प्रतीक कहा गया है।

दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य के बीच मीरां की स्थिति उस पयस्विनी जैसी है जो गुजरात और ब्रज प्रदेश का अमर संयोग कराती है।

सहायक ग्रंथों की सूची

ग्रंथ-नाम विशेष विवरण

1. अलंकार मंजूषा —लेखक : ला0 भगवानदीन, प्रकाशक : रामनारायण लाल,इलाहाबाद, नवीं बार, सं0 2004 वि0 ।
2. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग-1,2 —लेखक : डॉ.दीनदयालु गुप्त प्रकाशक : हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग |प्रथम संस्करण सं02004 वि0 ।
3. अष्टछाप परिचय —लेखक : प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक : अग्रवाल प्रेस, मथुरा प्रथम संस्करण सं02004 वि0 ।
4. उत्तरी भारत की संत परम्परा —लेखक : परशुराम चतुर्वेदी; प्रकाशक : भारत दर्पण ग्रंथमाला, प्रथम संस्करण सं02008 वि0 ।
5. कबीर ग्रंथावली —सम्पादक : श्यामसुंदरदास प्रकाशक : नागरी प्रचारणी सभा, काशी, 1947 ई0 ।
6. कवित्तरत्नाकर —लेखक : सेनापति; प्रकाशक : हिंदी परिषद, प्रयाग, विश्वविद्यालय,
7. कविप्रिया —लेखक : आचार्य केशवदास, लखनऊ 1924 ई0 ।
8. कृष्णचरित —लेखक : वंकिमचंद्र
9. काव्यदर्पण —लेखक : पं0 रामदहिन मिश्र, प्रकाशक : ग्रंथमाला कार्यालय बाँकीपुर, प्रथम संस्करण, 1947 ई0 ।
10. छंदःप्रभाकर —बाबू जगन्नाथप्रसाद, मुद्रक : जगन्नाथ प्रेस विलासपुर, पाँचवा संस्करण सं01979 वि0 ।
11. तुलसी रचनावली (कृष्ण गीतावली) —सम्पादक : बजरंगबली 'विशारद'; प्रकाशक : श्री सीताराम प्रेस बनारस, प्रथम संस्करण, सं01996 वि0 ।
12. देव और उनकी कविता —लेखक : डॉ0 नगेंद्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली ।
13. देव दर्शन —सम्पादक : श्री हरदयालु सिंह; प्रकाशक; इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, 1941 ई0 ।
14. ध्रुव सर्वस्व —सम्पादक : रामकृष्ण वर्मा; प्रकाशक; भारत जीवन प्रेस काशी, प्रथम संस्करण 1904 ई0 ।
15. नंददास, भाग प्रथम तथा द्वितीय —संपादक : पं0 उमाशंकर शुक्ल; प्रकाशक; प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1942 ई0 ।
16. निम्बार्क माधुरी —संपादक : बिहारी शरण, वृन्दावन ।
17. प्रकृति और काव्य, (हिंदी खंड) —लेखक : डॉ0 रघुवंश; प्रकाशक; साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद; प्रथम संस्करण ।

18. पिंगल प्रकाश —लेखक: पं0 रघुबरदयाल मिश्र; प्रकाशक : रत्नाश्रम आगरा, प्रथम संस्करण, 1933 ई0 ।
19. ब्रजभाषा व्याकरण —लेखक: डॉ0 धीरेंद्र वर्मा, प्रकाशक; रामनारायण लाल, प्रयाग, 1937 ई0 ।
20. ब्रजभषा साहित्य में नायिका-निरूपण —लेखक: प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक; प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, परिवर्द्धित संस्करण, सं0 2001 वि0 ।
21. ब्रजमाधुरीसार —संपादक; वियोगी हरि, प्रकाशक ; हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पंचम संस्करण, 2002 वि0 ।
22. बिहारीरत्नाकर —संपादक ; जगन्नाथदास रत्नाकर; प्रकाशक; दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ, चतुर्थावृत्ति सं0 2007 वि0 ।
23. भक्तनामावली —लेखक : ध्रुवदास; संपादक : आर0 दास, प्रयाग 1928 ।
24. भक्तमाल —लेखक : नाभादास, लखनऊ, 1908 ई0 ।
25. भावविलास —लेखक : देवदत्त, भारतजीवन प्रेस, काशी 1892 ई0 ।
26. मतिराम ग्रंथावली —संपादक कृष्ण बिहारी मिश्रा प्रकाशक; गंगा ग्रंथाकार, लखनऊ, तृतीय संस्करण, सं0 1996 वि0 ।
27. मथुरा परिचय —लेखक: कृष्ण दत्त बाजपेयी, लोक साहित्य सहयोगी प्रकाशन, मथुरा, प्रथम संस्करण 1950 ई0 ।
28. मिश्रबन्धु विनोद, भाग 1 —लेखक : मिश्रबन्धु, लखनऊ, 1991 वि0 ।
29. मीरां —लेखक : श्री महावीर सिंह गहलोत, प्रकाशक; शक्ति कार्यालय, दारागंज, प्रयाग, द्वितीय संस्करण सं0 2006 वि0 ।
30. मीरां : एक अध्ययन —लेखक : पद्मावती 'शबनम', प्रकाशक; लोक सेवक प्रकाशन, बनारस, प्रथम संस्करण 2007 वि0 ।
31. मीराबाई की पदावली —संपादक परशुराम चतुर्वेदी; प्रकाशक; हिंदी साहित्य सम्मेलन, द्वितीय संस्करण, 2001 वि0 ।
32. मीरा स्मृति ग्रंथ — संपादक : ललिताप्रसाद शुक्ल, प्रकाशक : बंगीय हिंदी परिषद, कलकत्ता, प्रथमवृत्ति सं0 2006 वि0 ।
33. मोहनी वाणी —लेखक : श्री गदाधर भट्ट, प्रकाशक; कृष्णदास कुसुम गोवर्धन, सं0 2000 वि0 ।
34. रसखान पदावली —लेखक; हिंदी प्रेस, प्रयाग ।
35. रसिकप्रिया —लेखक : आचार्य केशवदास; प्रकाशक; खेमराज कृष्णदास, सं0 1971 वि0 ।
36. रहीम रत्नावली —लेखक : रहीम; सं0 मायाशंकर याज्ञिक ।
37. वाणी श्री वल्लभ रसिक जी —लेखक : कृष्णदास; कुसुम सरोवर प्रथमावृत्ति ।
38. वाणी श्री सूरदास मदनमोहन —प्रकाशक : कृष्णदास; कुसुम सरोवर, सं0 2000 वि0 ।
39. विद्यापति पदावली —संपादक : रामवृक्ष बेनीपुरी, लहरिया सराय, कदम कुआं, पटना ।
40. श्रीमद्भागवतगीता रहस्य —लेखक लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक; प्रकाशक; राअमचंद्र और श्रीधर बलवंत तिलक, चतुर्थ मुद्रण, 1924 ई0 ।

41. श्री माधुरी वाणी —लेखक : माधवदास; प्रकाशक ; बाबा कृष्णदास; कुसुम सरोवर प्रथमावृत्ति ।
42. श्री व्यास वाणी, भाग 1,2 —प्रकाशक : अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधा वल्लभीय वैष्णव महासभा, वृन्दावन, प्रथम संस्करण, 1991 वि0 |
43. श्री सूरसागर —प्रकाशक : खेमराज श्री कृष्णदास सं0 1991 वि0 ।
44. श्री हितचौरासी सेवक वाणी —गोस्वामी श्री हितहरिवंश तथा सेवक जी, प्रकाशक; गोस्वामी श्री वनमाली लाल जी, तृतीय संस्करण, सं0 1992 वि0 ।
45. श्री राधावल्लभीय भक्तमाल —लेखक : पं0 रसिकअनन्यहित प्रियादास शुक्ल; प्रकाशक; पं0 प्रियादासात्मज ब्रजवल्लभदास मुखिया, मथुरा, प्रथम संस्करण सं0 1986 वि0 ।
46. श्री हित स्फुट वाणी —श्रीमद्धित हरिवंश चंद्र; प्रकाशक : बद्रीदास वंशीदास स्वर्णकार, प्रथम संस्करण ।
47. सूरदास — डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा, प्रकाशक : हिंदी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1946 ई0 ।
48. सूर निर्णय —लेखक : द्वारिकादास परीख प्रभुदयाल मीतल; प्रकाशक; अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्रथम संस्करण2006 वि0 ।
49. हरिवंश भाषा —ज्वालाप्रसाद मिश्र, बम्बई 1953 वि0 ।
50. हिंदी काव्य धारा लेखक : राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद ।
51. हिंदी साहित्य की भूमिका — लेखक : पं0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक; हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, प्रथम संस्करण 1940 ई0 ।
52. हिंदी साहित्य का इतिहास —लेखक : पं0 रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशक: नागरी प्रचारणी सभा काशी, छठा संस्करण 2007 वि0 ।
53. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —लेखक : डॉ0 रामकुमार वर्मा; प्रकाशक; रामनारायण लाल, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, 1948 ई0 ।

पत्र-पत्रिकाएँ

हिंदी

1. कल्याण (उपनिषद् अंक) —वर्ष 23, अंक 1, सम्पादक: हनुमान प्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम0ए0 शास्त्री, प्रकाशक: घनश्याम्दास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
2. नागरी प्रचारिणी पत्रिका— नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
3. नाममाहात्म्य, ब्रजांक —अगस्त 1940, वृन्दावन ।
4. ब्रजभारती — ब्रजभारती कार्यालय, मथुरा ।
5. सम्मेलन पत्रिका —हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
6. हिन्दी अनुशीलन —वर्ष 3, अंक 4, प्रकाशक; भारतीय हिंदी परिषद, प्रयाग, सं0 2007 वि0 ।
7. विश्वभारती —शांती निकेतन, खंड 3, अंक 4, 1944 ।